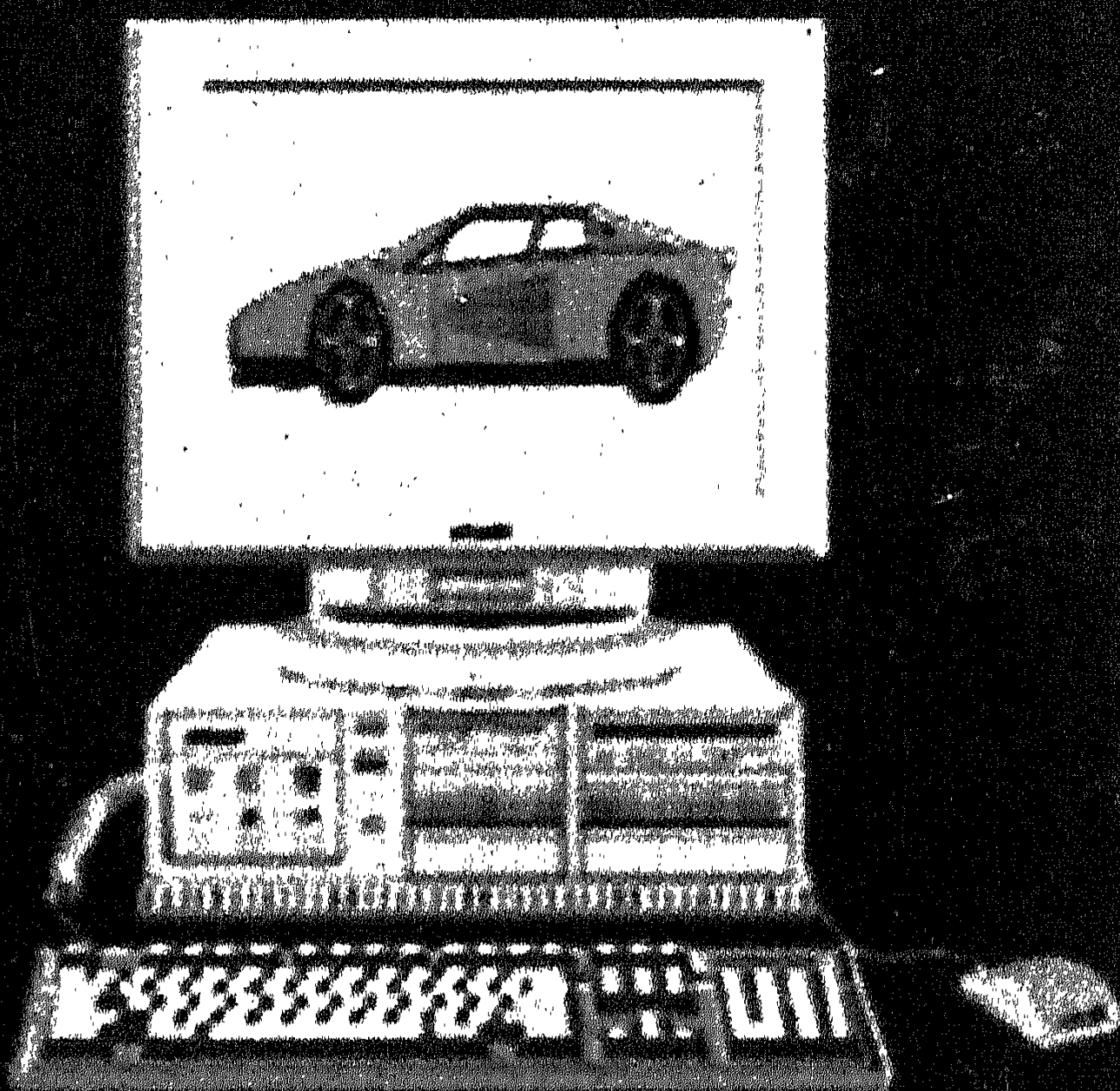
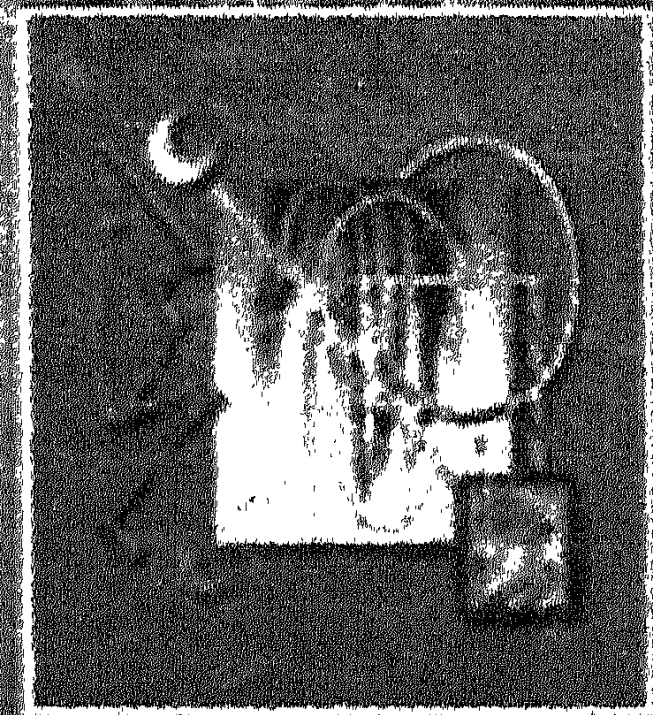
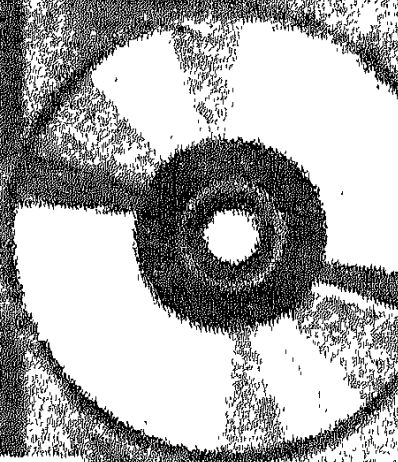


# आविष्कार

## जिन्होंने जीवन बदला



मैल्विन बर्गर



# आविष्कार जिन्होंने जीवन बदला

मेल्विन बर्गर

अनुवादक

मदनमोहन जोशी

ISBN : 81-86437-06-7

सर्वाधिकार : सुरक्षित

प्रकाशक : संचार प्रकाशन  
I/10781, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा  
दिल्ली-110032

संस्करण : 2002

मूल्य : 150.00

मूद्रक : पवन प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

## दो शब्द

मनुष्य के जीवन को समृद्ध और सुखमय बनाने हेतु आधुनिक विज्ञान का महान योगदान रहा है। विज्ञान के आविष्कारों का अनवरत सिलसिला जारी है। हिन्दी के पाठकों को इन आविष्कारों का समुचित ज्ञान कराने हेतु हिन्दी में विज्ञान लेखन को प्रोत्साहित करना जरूरी है। अंग्रेजी पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद भी इस दिशा में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

इस महादेश की अधिकांश आबादी हिन्दीभाषी है। स्वाधीनता के बयालीस वर्ष बाद भी विज्ञान का श्रेष्ठ लेखन अंग्रेजी में ही उपलब्ध है। मात्र भाषा के व्यवधान के कारण ही देश की जनता का अधिकांश हिस्सा विज्ञान की उच्चतम शिक्षा से वंचित रह जाता है। विशेष रूप से उच्चतर माध्यमिक तक के किशोर विद्यार्थी तथा देश के भावी नागरिक हिन्दी में विज्ञान की पुस्तकों के अभाव के कारण बड़ी हानि उठाते हैं। इस प्रकार हिन्दी में विज्ञान की पुस्तकें तैयार करना हमारा एक महान राष्ट्रीय दायित्व है।

निष्ठावान विज्ञान-लेखक मेल्विन बर्गर की पुस्तक 'Triumphs of Modern Science' का 'आधुनिक विज्ञान की महान सफलताएं' शीर्षक से हिन्दी अनुवाद इसी दायित्व के निर्वाह का एक कदम है।

मेल्विन बर्गर ने 'आधुनिक विज्ञान की महान सफलताएं' पुस्तक में उन वैज्ञानिक खोजों का विवेचन किया है जिन्होंने आज के मनुष्य के जीवन सही को मायनों में आधुनिक बनाया है। लेखक ने प्रत्येक खोज के इतिहास तथा उससे संबंधित सभी महत्वपूर्ण तथ्यों को अत्यन्त सुरुचिपूर्ण और सहज रूप में प्रस्तुत किया है। पुस्तक में बाल तथा किशोर आयु वर्ग के विद्यार्थियों की मानसिकता का विशेष ध्यान रखा गया है।

पुस्तक में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं से संबंधित आविष्कारों की चर्चा की गयी है, यथा—जीव विज्ञान (एंटी बायोटिक ओषधियां, रोगनाशक रासायनिक द्रव, विटामिनें और वायरस, डी० एन० ए०), मनोविज्ञान (अचेतन मन का आविष्कार), भौतिक विज्ञान (आपेक्षिकता का सिद्धांत, परमाणु-संरचना, एक्स-



किरणें तथा रेडियोधार्मिता, परमाणु ऊर्जा) एवं नवीन खगोल । एक ही स्थान पर विज्ञान से संबंधित वैविध्यपूर्ण सामग्री इस पुस्तक की महत्त्वपूर्ण विशेषता है ।

आशा है कि विज्ञानप्रेमी पाठकों को यह पुस्तक उपयोगी तथा ज्ञानवर्द्धक सिद्ध होगी ।

—अनुवादक

## क्रम

एन्टीबायोटिक (जीवाणुद्वेषी) ओषधियां	9
रोगनाशक रासायनिक द्रव्य	21
विटामिनें	29
विषाणु (वाइरस)	37
डी० एन० ए० : जीवन का मुख्य आयोजक	45
अचेतन मन का आविष्कार	57
आपेक्षिकता सिद्धांत	71
परमाणु-संरचना	77
एक्स-किरणें तथा रेडियोधर्मिता	101
परमाणु-ऊर्जा	111
नवीन खगोल	129



## एन्टीबायोटिक (जीवाणु-ह्नेषी) ओषधियां

अलैक्जेन्डर फ्लेमिंग (1881-1955) प्रथम चमत्कारी ओषधि के आविष्कर्ता थे। वे आकस्मिक और सांयोगिक घटनाओं से सदा लाभ उठाते थे।

मेडिकल स्कूल में प्रवेश के लिए सारे इंग्लैंड में 1901 में जो परीक्षा हुई थी उसमें उन्हें सबसे अधिक अंक मिले थे। वे जिस मेडिकल स्कूल में चाहते, उसी में प्रवेश पा सकते थे। उन्होंने एक जगह लिखा है—‘लंदन में ऐसे बारह स्कूल हैं और उनमें से तीन स्कूलों से मैं लगभग बराबर दूरी पर रहता था। परन्तु सेंट मैरी स्कूल के मुकाबले में मैं वाटर पोलो खेल चुका था, अतः मैं उसी स्कूल में चला गया।’

इस प्रकार, वाटर पोलो खेलने के संयोग के कारण उन्होंने सेंट मैरी स्कूल को चुना। जब वे वहां पढ़ते थे उन्हीं दिनों एक मित्र ने उन्हें सुझाव दिया कि वे शल्य चिकित्सा की प्राथमिक फेलोशिप परीक्षा में बैठें। परीक्षा की रजिस्ट्रेशन फीस पांच पौंड थी। फ्लेमिंग परीक्षा में बैठे और फेलोशिप पा गये परन्तु उन्होंने अनुभव किया कि वास्तव में शल्य चिकित्सा में उनकी रुचि नहीं थी। ‘परन्तु’, उन्होंने लिखा है, ‘स्काटलैंड का निवासी होने के कारण व्यर्थ में पांच पौंड खोने का खेद मुझे सदा बना रहा।’ अतः शल्य चिकित्सा के रायल कॉलेज की सदस्यता, जो शल्य चिकित्सक के लिए सबसे बड़ा सम्मान है, उन्होंने प्राप्त कर ही ली।

जीवाणु विज्ञान के अध्ययन में उनके लीन होने का भी एक ऐसा ही विचित्र कारण है। राइफल से निशाना लगाने में वे दक्ष थे और सेंट मैरी स्कूल में एक बहुत अच्छा राइफल क्लब था जिसे नये सदस्यों की आवश्यकता थी। अतः उस स्कूल की जीवाणु विज्ञान वाली प्रयोगशाला में काम करने के लिए वे निमंत्रित किए गए ताकि वे स्कूल की टीम के लिए सदा उपलब्ध हो सकें। उन्होंने इस निमंत्रण को 1906 में स्वीकार किया और आजीवन वहां काम करते रहे।

इस प्रकार वाटर पोलो के कारण वे सेंट मैरी स्कूल से, पांच पौंड के कारण शल्य चिकित्सा से और अंत में राइफल क्लब के कारण जीवाणु विज्ञान से सम्बन्धित हुए। निश्चय ही यह एक ऐसे निष्ठावान वैज्ञानिक की कहानी नहीं है

जो आरम्भ ही से अपने लक्ष्य से अवगत था ।

जो भी हो, घटना-क्रम फ्लेमिंग को उनके उस सबसे महत्वपूर्ण संयोग के लिए तैयार करने लगा जो हम सबके लिए महत्वपूर्ण आविष्कार सिद्ध होने वाला था । 1908 में 'तीव्र जीवाणु संक्रमण' शीर्षक से उन्होंने एक शोध-निबन्ध लिखा जिसने जीवाणुओं के विरुद्ध उस युद्ध की रूप-रेखा निश्चित की जिसे उन्होंने जीवन भर लड़ा था । इसमें उन्होंने उन उपायों का उल्लेख किया था जिनकी सहायता से उस समय (1908) के डॉक्टर बीमारी उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं का सामना कर सकते थे । (उन्हें क्या पता था कि बीस साल बाद वे जीवाणुओं से बचाव के एक ऐसे उपाय का आविष्कार करेंगे जो उन सारे उपायों से बाजी मार जायेगा ।

फ्लेमिंग की सूची में प्रथम स्थान टीके का था । टीके द्वारा शरीर में मृत या कमजोर किये गए जीवाणुओं को प्रविष्ट किया जाता है । यह क्रिया शरीर को प्रतिरक्षात्मक व्यवस्था के लिए प्रेरित करती है और बीमारी से रक्षा करती है । टीके द्वारा चेचक, रेबीज (पागल कुत्ते के काटने से उत्पन्न), टायफाइड ज्वर, डिप्थीरिया तथा अन्य बहुत-सी बीमारियों से बचाव हो सकता है । (हाल में सैल्क और सैबिन नामक टीकों का आविष्कार हुआ है जो पोलियो से बचाते हैं । एन्डैर्स, खसरा से बचाता है ।)

इसके साथ ही सीरम या प्रतिजीवविष (एन्टी-टॉक्सिन) थे जैसे डिप्थीरिया का प्रतिजीवविष और टेटनस (धनुस्तम्भ) का प्रतिजीवविष । वे ऐसे प्राणियों के रक्त से तैयार किए जाते थे जिन्हें कुछ जीवाणुओं से उत्पन्न विषों (टॉक्सिनों) का टीका लगा होता था । प्राणी के रक्त में एक ऐसा पदार्थ उत्पन्न हो जाता था जो विष का विरोध करता था और टीके द्वारा जब वह पदार्थ रोगी मनुष्य के शरीर में प्रवेश कराया जाता था तब वह उन विषों के दमन में उसकी सहायता करता था । शल्य चिकित्सा भी होती थी जिससे जीवाणु संक्रमण के स्रोत को शरीर से निकाल दिया जाता था । रोगाणुरोधक (एन्टीसेप्टिक) पदार्थ भी थे, जैसे कार्बोलिक अम्ल । ये सतही जीवाणुओं को मार देते थे परन्तु ओषधि के तौर पर पीने से शरीर के स्वस्थ अवयवों (ऊतकों, टिस्सुओं) को भी नष्ट कर देते थे । आराम और अच्छे आहार द्वारा रोगी की प्राकृतिक प्रतिरोध-शक्ति को बढ़ाने की सामान्य विधियां भी थीं । क्विनिन (क्वनीन) और इपीकाक जैसी ओषधियां भी थीं जो विशेष प्रकार के जीवाणुओं के विरुद्ध कारगर थीं ।

आने वाले वर्षों में, फ्लेमिंग जीवाणुओं का सामना करने वाले नये तरीकों की खोज में पूर्णतः लीन हो गये । 1922 में उन्हें आंसुओं और लार में एक ऐसा पदार्थ, लाइसोजाइम, मिला जो जीवाणुओं को मारने में समर्थ था । दुर्भाग्यवश जिन जीवाणुओं को वह नष्ट कर सकता था, वे बीमारी उत्पन्न करने वाले जीवाणु नहीं थे, जिन्हें नष्ट करना उनका लक्ष्य था ।

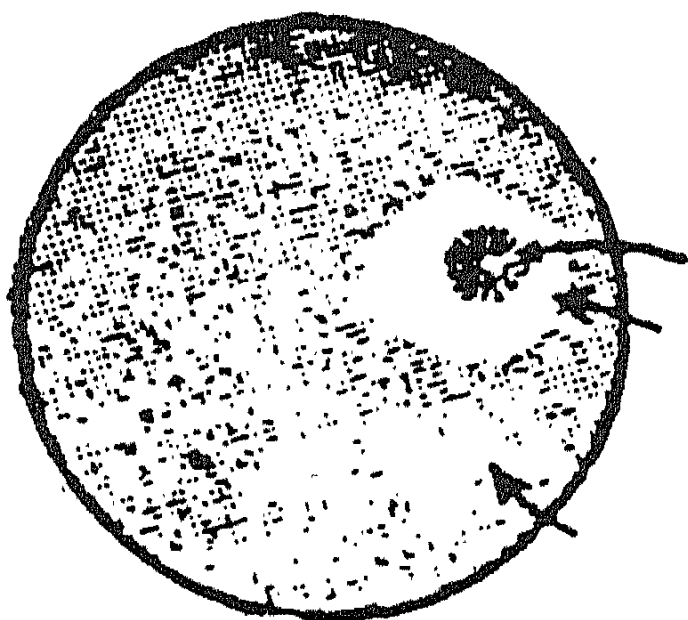


फ्लेमिंग 1928 में स्टैफिलोकोकाई नाम के जीवाणुओं का अध्ययन किसी विशेष अनुसंधान के लिए कर रहे थे। (इस बैक्टीरिया की कुछ जातियां फोड़े-फुंसियां तथा अन्य अनेक छूत की बीमारियां उत्पन्न करती हैं) वे इन जीवाणुओं की बस्तियां ऐसी तश्तरियों में बना रहे थे जिनमें पोषक ऐगार नाम का जिलैटिन जैसा एक पदार्थ था। रह-रह कर वे किसी न किसी तश्तरी का ढक्कन हटाते रहते और अपने सूक्ष्मदर्शी से उनका निरीक्षण करते रहते, अन्यथा तश्तरियां ढकी रहती थीं।

1928 की ग्रीष्म ऋतु में लंदन में गरमी और आर्द्रता थी। मौसम सितम्बर तक गरम बना रहा। हर आदमी खिड़कियां खुली रखता था ताकि हवा के झोंके भीतर आ सकें। सितम्बर में एक दिन सेंट मैरी स्थित फ्लेमिंग की प्रयोगशाला की खिड़कियां भी खुली थीं। वह दिन ऐतिहासिक सिद्ध हुआ। धूल का एक छोटा-सा दीखने वाला कण उड़कर भीतर आ गया था। इस आकस्मिक घटना के भाग्य में आधुनिक विज्ञान की एक सबसे महत्वपूर्ण सफलता का मार्ग प्रशस्त करना लिखा था।

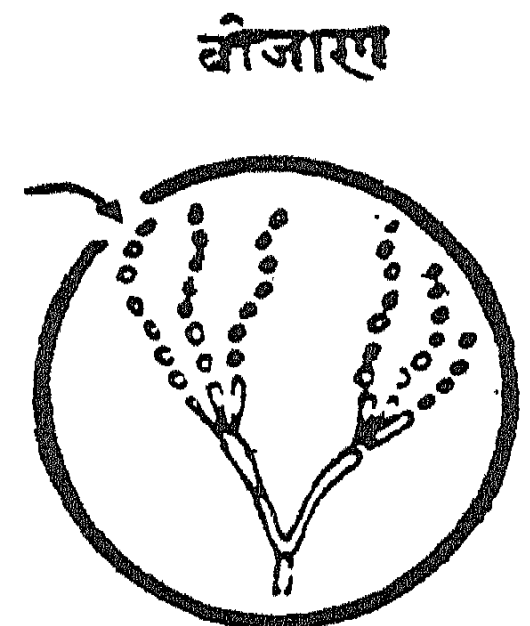
कुछ दिनों बाद फ्लेमिंग ने देखा कि पोषक पदार्थयुक्त तश्तरियों में से एक नीला-हरा फफूंद उग रहा है। ऐगार, वस्तुतः फफूंदमय होता जा रहा था। फ्लेमिंग को मालूम था कि फफूंद के छोटे कण (स्पोर या बीजाणु) वायु द्वारा सब जगह पहुंचाये जाते रहते हैं। आप भी जानते हैं कि बासी फल या रोटी पर फफूंद कितनी तेजी से वृद्धि करने लगता है। अतः उन्होंने अनुमान लगाया कि किसी फफूंद का बीजाणु संयोगवश खिड़की में से होकर भीतर आया होगा और पोषक द्रव्य में उस समय पड़ गया होगा जब तश्तरी खुली रही होगी।

बहुत से लोग, यहां तक कि वैज्ञानिक भी ऐसा सोचते कि फफूंद के कारण जीवाणुपोषक पदार्थ खराब हो गया होगा। वे उसे फेंक देते और नये सिरे से फिर जीवाणु संवर्धन करते। परन्तु फ्लेमिंग, किसी कारणवश, ऐसा करने में हिचकिचाये। उनमें वह तीव्र जिज्ञासा जागृत हुई जो प्रत्येक वैज्ञानिक की



हरा फफूंद  
स्वच्छ क्षेत्र

स्टैफिलोकोकाई बस्तियां



सूक्ष्मदर्शी द्वारा फफूंद

विचारधारा का अग है। उन्होंने अनुसंधान करने का निश्चय किया। उनके उस आश्चर्याघात की कपलना कीजिये जो उन्हें यह देखकर लगा कि फफूंद के चारों ओर का क्षेत्र स्वच्छ था और स्टैफिलोकोकाई की बस्तियों की तरह पीला नहीं था। ऐसा प्रतीत होता था कि फफूंद में की कोई खास चीज जीवाणुओं को विघटित करती जा रही है। बाद में फ्लेमिंग ने लिखा, 'यह आश्चर्य की बात थी कि फफूंद के चारों ओर काफी दूर तक स्टैफिलोकोकाई बस्तियों का संलयन हो रहा था (वे नष्ट हो रही थीं)। इस मामले में मेरी इतनी दिलचस्पी थी कि मैंने उसका अध्ययन जारी रखा।'

अब फ्लेमिंग ने अनुसंधान-विषयक अपनी सारी योग्यता को, धूल के उस छोटे कण के अध्ययन में लगा दिया जो संयोगवश उड़कर उनकी प्रयोगशाला में आ गया था। सर्वप्रथम उस फफूंद का एक शुद्ध नमूना प्राप्त करना था ताकि वे अधिक सावधानी के साथ उसका अध्ययन कर सकें। प्लैटिनम के तार के एक छोटे फंदे से उन्होंने कुछ फफूंद उठाया और उसे एक ऐसी जेली में रखा जिसमें वे जानते थे कि उसकी वृद्धि होगी। उसकी वृद्धि बहुत तेजी से हुई। आरंभ में वह रोएंदार सफेद पदार्थ की शकल में बढ़ा और बाद में गहरे हरे रङ्ग का हो गया। वृद्धि होते-होते उसमें से पेंसिल जैसी शाखाएं फूट पड़ीं जिससे फ्लेमिंग को पता चला कि वह फफूंदों के पेनिसीलियम परिवार का सदस्य है। (वास्तव में पेनिसीलियम नाम की उत्पत्ति उसी शब्द से हुई है जिससे पेंसिल शब्द की।)

इस दिशा में दूसरा चरण यह था कि और फफूंद की वृद्धि की जाए ताकि विभिन्न जीवाणुओं पर उसका परीक्षण किया जा सके। फ्लेमिंग को मालूम हुआ कि फफूंद या यों कहिये कि फफूंद का रस केवल स्टैफिलोकोकाई बैक्टीरिया को ही नष्ट नहीं करता, जैसाकि प्रारम्भिक तस्तरी में देखा गया था, बल्कि बीमारी पैदा करने वाले अन्य कई प्रकार के जीवाणुओं को भी वह बहुत प्रभावकारी रूप में नष्ट करता है। फफूंद-रस के क्रमशः कमजोर घोलों के साथ उन्होंने परीक्षण किया। उन्होंने उसे पांच सौ में एक भाग तक हक्का कर डाला। लेकिन वह बैक्टीरिया को नष्ट करने में हर बार समर्थ पाया गया।

अब फ्लेमिंग ने यह जानना चाहा कि क्या प्रत्येक फफूंद इस जीवाणु-विरोधी पदार्थ को उत्पन्न करता है? उन्होंने पांच पूर्णतः भिन्न फफूंदों तथा पेनिसीलियम फफूंद के आठ भिन्न प्रकारों की परीक्षा की। इनमें से पेनिसीलियम का केवल एक प्रकार जीवाणु-विरोधी कार्य करता था और वह वही प्रारम्भिक फफूंद था। यह जानने के बाद कि इस विशेष फफूंद-रस में कुछ प्रकार के बैक्टीरिया को नष्ट करने की बहुत क्षमता है, फ्लेमिंग अगले प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए अग्रसर हुए। वह प्रश्न था—क्या वह जरूरत से अधिक शक्तिशाली है? क्या वह मनुष्यों के लिए अनिष्टकर है? उन्होंने मानव-रक्त की थोड़ी-सी मात्रा में



फफूंद-रस डाला । उत्तर की परीक्षा के दौरान वे यह जांचते रहे कि क्या फफूंद-रस रक्त के सफेद कणों को नष्ट करता है । मिनट बीते, फिर घंटे बीते परन्तु फफूंद-रस का रक्त पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा ।

इन परिणामों से उत्साहित होकर फ्लेमिंग ने इस रस का किसी सजीव प्राणी पर परीक्षण करने का निश्चय किया । प्रयोगशाला के कुछ चूहों और खरगोशों को उन्होंने जीवाणुओं का इंजेक्शन दिया । बाद में उन प्राणियों को फफूंद-रस का इंजेक्शन दिया । इसमें भी सफलता हुई । जीवाणु नष्ट हो गए और प्राणियों पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ा ।

मन में तनाव और उत्तेजना बढ़ रही थी । अब फ्लेमिंग शायद सबसे महत्वपूर्ण परीक्षण के लिए तैयार थे—रोगी मनुष्य पर फफूंद-रस का परीक्षण । इसकी व्यवस्था करना बहुत आसान सिद्ध हुआ । स्टुअर्ट क्रेडक, जो प्रयोगशाला में उनका सहायक था, संक्रमित नासूर का मरीज था । वह तैयार हो गया कि फ्लेमिंग उस पर फफूंद-रस का परीक्षण करें ।

फ्लेमिंग ने क्रेडक के नासूर में पाए जाने वाले जीवाणुओं की गणना की । उन्हें स्टैफिलोकोकाई जीवाणुओं की 100 बस्तियां मिलीं । इसके अतिरिक्त और भी बहुत से जीवाणु थे । उन्होंने नासूर को फफूंद-रस के हलके घोल से साफ किया । तीन घंटे बाद फ्लेमिंग ने फिर गणना की । स्टैफिलोकोकाई जीवाणुओं की केवल एक जीवित बस्ती बची थी तथा अन्य जीवाणुओं की संख्या कम हो गई थी और क्रेडक पर भी फफूंद-रस का कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ा था ।

शीघ्र ही फ्लेमिंग ने फफूंद-रस का नामकरण करने का निश्चय किया । चूंकि वह पेनिसिलियम फफूंद के रस से प्राप्त किया गया था अतः उन्होंने उसका नाम पेनिसिलिन रखा । जून 1929 में फ्लेमिंग ने पेनिसिलिन पर प्रथम रिपोर्ट प्रकाशित की । उन्हें आशा थी कि इसका उन्मत्त अभिवादन होगा परन्तु हुआ यह कि किसी के कान पर जूं तक नहीं रेंगी । इससे फ्लेमिंग को बहुत निराशा हुई ।

इस उदासीनता के कुछ कारण थे । सम्भवतः मुख्य कारण यह था कि फ्लेमिंग के साथ जो रसायनशास्त्री काम कर रहे थे वे पेनिसिलिन का विशुद्ध नमूना नहीं प्राप्त कर सके थे । फफूंद-रस में उसके साथ ऐसे पदार्थ मिले हुए थे जो रोगियों के लिए हानिकर सिद्ध हो सकते थे और जिनके कारण पेनिसिलिन का अध्ययन और ठीक-ठीक मापन असम्भव था । रसायनशास्त्रियों ने फफूंद-रस को इतना शुद्ध किया था कि वह एक गाढ़ी, भूरी चासनी बन गया था और पिघले हुए चाकलेट जैसा दिखाई देता था । प्रारम्भिक फफूंद-रस से यह शायद पचास गुना अधिक शुद्ध था । परन्तु इसके पूर्व कि उसका उपयोग खतरे से खाली हो, यह आवश्यक था कि उसे इतना शुद्ध किया जाए कि उसके ऐसे स्फटिक बन जाएं जिनमें कोई अन्य पदार्थ बिलकुल न हो ।

पेनिसिलिन के साथ एक दूसरी समस्या यह थी कि इससे काम लेना बहुत कठिन था। यदि इस चाशनी को प्रशीतक में रखा जाता था तो एक ही सप्ताह के भीतर वह लुप्त होने लगता था। इन समस्याओं के अतिरिक्त, जिस फफूंद से पेनिसिलिन प्राप्त किया जा सकता था उसे संवर्धित करना बहुत कठिन और लम्बा काम था। यद्यपि फ्लेमिंग की आस्था बनी रही और वे एक ऐसे रसायन शास्त्री की खोज में लगे रहे जो पेनिसिलिन को शुद्ध रूप में बनाने में समर्थ हो, फिर भी पेनिसिलिन के आविष्कार के बाद के दस वर्षों में लोग उसे लगभग भूल चुके थे।

1938 में फ्लेमिंग की रिपोर्ट आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के दो वैज्ञानिकों हेराल्ड फ्लोरे (जन्म 1898) और अर्नस्ट चेन (जन्म 1906) के हाथ लगी और उन्होंने उस पर अनुसंधान करने का निश्चय किया। चेन यह मालूम करने में लग गया कि क्या वे पेनिसिलिन को शुद्ध कर सकते हैं। नयी तकनीकों की सहायता से वे कुछ ऐसी पेनिसिलिन प्राप्त करने में समर्थ हुए जो असाधारणतया शुद्ध थी। अपने प्रारम्भिक प्रयोगों में फ्लेमिंग ने जिस अशुद्ध फफूंद-रस का उपयोग किया था उससे यह पेनिसिलिन लगभग दस लाख गुना अधिक प्रभावकारी थी।

फ्लोरे और चेन ने फ्लेमिंग के बहुत से परीक्षणों को दोहराया। उन्हें वैसे ही सफल परिणाम प्राप्त हुए। उसके बाद वे उस काम को एक कदम और आगे ले गये। उन्होंने पचास चूहों को जीवित जीवणुओं के भारी और घातक इंजेक्शन दिए। उनमें से पचीस चूहों को पेनिसिलिन दिया गया। शेष पचीस चूहों को तुलना के लिए वैसे ही रहने दिया गया। फ्लोरे ने अपनी अनुभूतियों का वर्णन इस प्रकार किया है—‘कहना न होगा कि वह बहुत ही उत्तेजनापूर्ण क्षण था जब प्रातःकाल हमने पाया कि जिन पचीस चूहों को पेनिसिलिन दिया गया था वे सब जीवित थे और शेष सब चूहे मर गये थे।’ अन्य प्रयोगों में और चूहों को दूसरे जीवणुओं के इंजेक्शन दिए गये। बाद में पेनिसिलिन से उनका इलाज किया गया। प्रत्येक मामले में, रोगमुक्त करने की शक्ति के लिहाज से, पेनिसिलिन प्रायः चमत्कारपूर्ण सिद्ध हुई।

अब फ्लोरे और चेन, मनुष्यों पर पेनिसिलिन का परीक्षण करने के लिए तैयार थे। समस्या थी प्रचुर मात्रा में पेनिसिलिन को प्राप्त करने की। जीवणुपोष-पदार्थ से भरी हर तरह की बोतलों और तसलों में उन्होंने फफूंद लगा दिया। यहां तक कि उन्होंने अस्पताल के शौचदानों (बेडपैनों) में भी फफूंद बो दिया और फिर फफूंद से पेनिसिलिन निकालने और उसे शुद्ध करने का लम्बा काम आरम्भ हुआ।

दो साल के प्रयत्न के बाद, फरवरी 1941 में उनके पास पेनिसिलिन के केवल एक चम्मच भर शुद्ध पीले स्फटिक थे। उनका विश्वास था कि इस चूर्ण का

घोल एक रोगी के उपचार के लिए पर्याप्त होगा। एक रोगी को चुना गया। आक्सफोर्ड के एक पुलिस के सिपाही को दाढ़ी बनाते समय खरोंच लग गई थी जिसके संक्रमित हो जाने के कारण उसका सारा शरीर दूषित हो गया था और वह मर रहा था। जीवाणु उसके रुधिर-प्रवाह में प्रवेश कर गये थे। उसको बचाने में डॉक्टर असमर्थ थे और ऐसा लगता था कि वह कुछ दिनों का ही मेहमान है। फ्लोरे ने सोचा कि उसके बचने की कोई आशा तो है नहीं; यदि वह पेनिसिलिन से अच्छा हो गया तो यह इसकी उपयोगिता का सबसे बड़ा निर्विवाद प्रमाण सिद्ध होगा।

उसका उपचार आरम्भ हुआ। प्रत्येक तीन घंटे के बाद उसकी शिराओं में पेनिसिलिन का इंजेक्शन दिया जाने लगा। बारह घंटों के बाद सिपाही सम्भल गया। दूसरे दिन उसकी हालत में सुधार हो गया। दो दिन के बाद अस्पताल के डॉक्टर ने कहा कि एक सप्ताह के उपचार के बाद वह पूर्णतः स्वस्थ हो जाएगा। परन्तु पेनिसिलिन की जो अति सीमित मात्रा थी, वह समाप्त हो गई। रोगी कुछ और दिनों तक जीवित रहा और तब मर गया।

फ्लोरे और चेन को इस बात से बहुत दुःख हुआ कि वे रोगी को नहीं बचा सके, परन्तु उन्होंने अनुभव किया कि पेनिसिलिन की उपयोगिता सिद्ध करने वाला प्रयोग सफल रहा। यदि पेनिसिलिन की पर्याप्त मात्रा होती तो वे रोगी का जीवन बचाने में सफल हो जाते।

पेनिसिलिन की और मात्रा निर्मित की गई और एक दूसरे रोगी का उपचार आरम्भ किया गया। इस बार भी रोगी की हालत में तुरन्त सुधार हुआ। इसके पूर्व कि रोगी पूर्णतः अच्छा हो सके, पेनिसिलिन फिर समाप्त हो गई।

अन्त में, मई 1941 में पेनिसिलिन ने एक आदमी की जान बचा ही ली। अड़तालीस वर्ष के एक व्यक्ति को बड़े भारी फोड़े (कार्बकल) से स्टैफिलोकोकाई जीवाणुओं की छूत बुरी तरह लग गई। एक सप्ताह के पेनिसिलिन-उपचार से वह बिलकुल अच्छा हो गया।

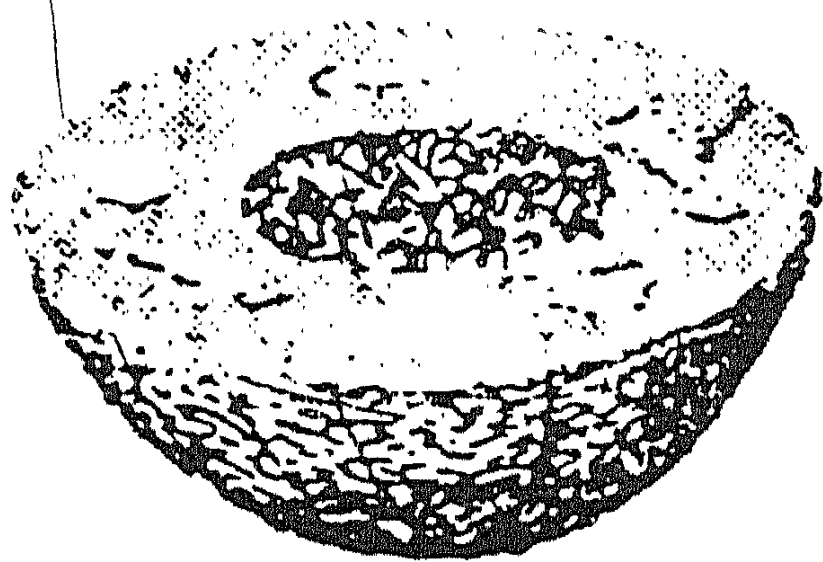
इन प्रयोगों से सिद्ध हो गया कि बीमारी पैदा करने वाले जीवाणुओं के विरुद्ध पेनिसिलिन बहुत प्रभावकारी है। एक समस्या शेष थी—प्राप्ति की। चालीस गैलन फफूंद-रस से केवल इतनी पेनिसिलिन प्राप्त होती थी कि उससे एक रोगी का एक दिन उपचार किया जा सके! फ्लोरे ने अमरीका के उत्पादन-विशेषज्ञों से सहायता लेने का निश्चय किया। उन्होंने संयुक्त राज्य में अपने मामले की जो पैरवी की उसके आश्चर्यजनक परिणाम निकले। कुछ ही महीनों के भीतर कृषि विभाग, मेयो क्लिनिक, चिकित्सा-अनुसंधान समिति तथा संयुक्त राज्य के बड़े-बड़े ओषधि-निर्माता, इस समस्या के समाधान में जुट गए। उन्होंने फफूंद के लिए भिन्न प्रकार के पोषक पदार्थों को जांचा। उन्होंने भिन्न प्रकार के पात्रों का प्रयोग किया।



फफूंद से पेनिसिलिन निकालने के तरीकों का परीक्षण किया। हर ज्ञात हस्तलाघव वे काम में लाए। लेकिन एक साल के बाद उन्होंने रिपोर्ट दी कि वे कुछ भी वास्तविक प्रगति नहीं कर सके।

इस समय तक संयुक्त राज्य द्वितीय विश्वयुद्ध में कूद चुका था। मोर्चों पर तथा स्वदेश में रोगों से मुक्ति पाने के लिए पेनिसिलिन की जोरदार मांग हो रही थी। परन्तु जितनी मांग हो रही थी उससे बहुत कम पेनिसिलिन उपलब्ध थी। तभी कुछ शुभ अरुणोदय हुए। उस समय तक सारी पेनिसिलिन फ्लेमिंग के मूल फफूंद से बनाई जाती थी। फफूंद की विभिन्न किस्मों पर परीक्षण किये गये थे परन्तु उनमें से कोई भी वैसा सफल सिद्ध नहीं हुआ था। कृषि विभाग की पिओरिया प्रयोगशाला ने तो एक महिला को इस काम के लिए दैनिक मजदूरी पर भी रखा था कि वह पिओरिया के फल-बाजार से फफूंद वाले फल खरीदकर लाए। उसको लोग मजाक में 'फफूंदी मेरी' कहा करते थे। एक दिन उस महिला को सड़ा हुआ एक ऐसा विलायती खरबूजा मिला जिस पर एक भिन्न प्रकार का पेनीसीलियम फफूंद उगा हुआ था। इस फफूंद को प्रयोगशाला में संवर्धित किया गया और पाया गया कि मूल प्रभेद की अपेक्षा इससे पेनिसिलिन की अधिक मात्रा प्राप्त होती है।

पेनिसिलिन का काम हाथ में लेने से पूर्व पिओरिया प्रयोगशाला की एक प्रमुख प्रयोजना थी कि मक्का के निशास्ते (स्टार्च) के निर्माण से बचे द्रव का उपयोग मालूम किया जाए। अनुसंधान की एक दिशा यह थी कि पेनीसीलियम परिवार की एक अन्य फफूंद से उस द्रव को किण्वित किया जाता था। इस शुभ संयोग के



फफूंद युक्त विलायती  
खरबूजा

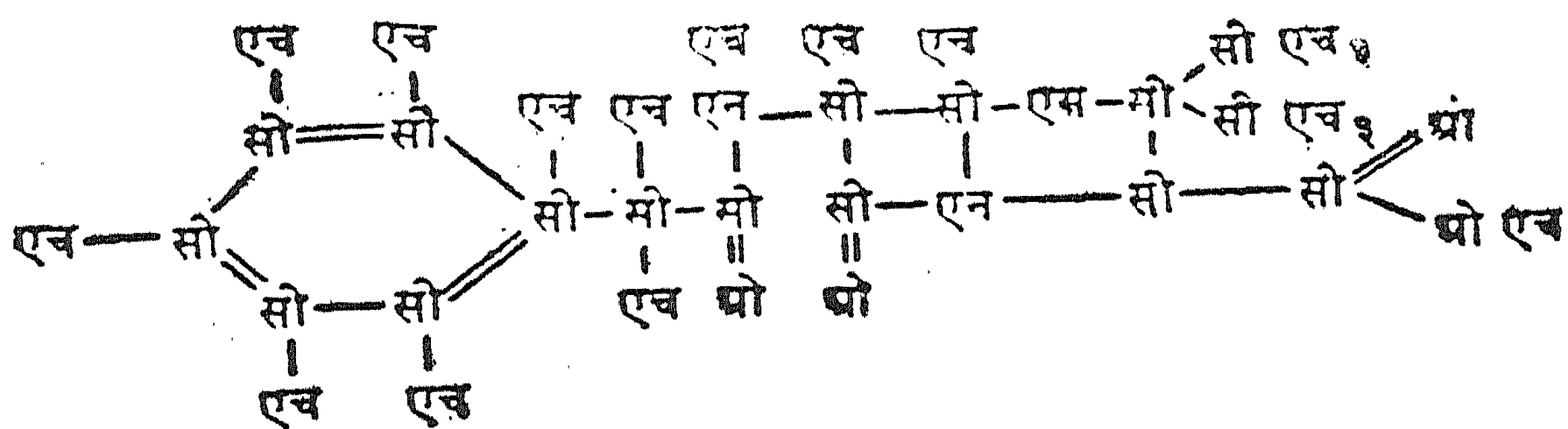
परिणाम के विषय में शायद आप भी अनुमान लगा सकते हैं। पेनिसिलिन फफूंद को संवर्धित करने के लिए वह द्रव आदर्श पोषक सिद्ध हुआ। पहले के पोषक से जितनी पेनिसिलिन उत्पन्न होती थी उससे बीस गुनी पेनिसिलिन इस द्रव से उत्पन्न होती थी।

अब अधिक पेनिसिलिन का उत्पादन सम्भव हो गया था। जनवरी 1943 में दो औन्स मात्रा उपलब्ध हो सकी थी। मई तक चार औन्स का उत्पादन हो गया था। सितम्बर में पूरे दो पाँड का उत्पादन हुआ था। उसके बाद तो उत्पादन की रफ्तार आसमान छूने लगी। 1945 तक प्रति मास 1,000 पाँड से अधिक

पेनिसिलिन का उत्पादन होने लगा था। जैसे-जैसे अधिक पेनिसिलिन उपलब्ध होने लगी वैसे-वैसे उसके अधिक उपयोग मालूम होने लगे। न्यूमोनिमा, मैनिन्जाइटिस, स्कालेंट ज्वर, डिप्थीरिया तथा रक्त का विषमय हो जाना—ये सब बीमारियां, जो एक-दूसरे से इतनी भिन्न हैं, पेनिसिलिन द्वारा ठीक की जाने लगीं। 1952 तक तीन करोड़ दस लाख व्यक्तियों का उपचार पेनिसिलिन से होने लगा था।

पेनिसिलिन की उपयोगिता अच्छी तरह से सिद्ध हो चुकी थी। परन्तु वैज्ञानिकों को उससे और भी आशा थी। वे उसे इस तरह परिवर्तित करना चाहते थे जिसमें वह अन्य कठोरतर जीवाणुओं के विरुद्ध भी प्रभावशाली सिद्ध हो सके। यदि रसायनशास्त्री प्रयोगशाला में पेनिसिलिन के निर्माण की कोई युक्ति मालूम कर सके तो वे शायद पेनिसिलिन-अणु को आंशिक रूप से परिवर्तित कर सकें। यदि ऐसा हो सके तो शायद पेनिसिलिन को और शक्तिशाली ओषधि बनाया जा सके।

इस दिशा में प्रथम चरण था पेनिसिलिन की रासायनिक संरचना को मालूम करना। सबसे अधिक उपयोग में आने वाली पेनिसिलिन की एक किस्म, पेनिसिलिन-जी का रासायनिक सूत्र (फार्मूला) मालूम किया गया। इसका सूत्र है—सी<sub>16</sub> एच<sub>18</sub> ओ<sub>4</sub> एन<sub>2</sub> एस। इसका सीधा अर्थ है कि पेनिसिलिन-जी के प्रत्येक अणु में कार्बन के सोलह, हाइड्रोजन के अठारह, आक्सीजन के चार, नाइट्रोजन के दो और गंधक का एक परमाणु होता है।



#### पेनिसिलिन-जी का आरेख

एच = हाइड्रोजन, सी = कार्बन, ओ = आक्सीजन,

एन = नाइट्रोजन, एस = सल्फर (गंधक)

1958 में रसायनशास्त्रियों ने एक ऐसा उपाय मालूम किया जिससे पेनिसिलिन की वृद्धि ठीक उस क्षण रोकी जा सकती थी जब पेनिसिलिन अणु के मूलांश का निर्माण होता था। इससे वे पेनिसिलिन के मूलांश के साथ, परमाणुओं के परिवर्तित समूहों को जोड़कर पेनिसिलिन की ऐसी किस्में बना सके हैं जो प्रकृति में नहीं मिलतीं। पेनिसिलिन की ये विभिन्न किस्में और बहुत तरह के जीवाणुओं

को नष्ट करने में समर्थ हुई। एक अन्य प्रश्न का उत्तर जानने के लिए दूसरे प्रयोग किये गये। यह प्रश्न था—पेनिसिलिन किस तरह काम करती है अर्थात् वह जीवाणुओं पर किस प्रकार आक्रमण करती है? यह मालूम होने पर कि पेनिसिलिन केवल संवर्धमान जीवाणुओं के विरुद्ध कार्य करती है, उत्तर का प्रथम भाग तो प्राप्त हो गया। यदि बैक्टीरिया वृद्धि नहीं कर रहे तो उन पर पेनिसिलिन का प्रभाव नहीं पड़ता। इसके बाद यह मालूम हुआ कि वह पदार्थ जिसका उपयोग जीवाणुओं की कोशिका-भित्ति के निर्माण के लिए होता है, पेनिसिलिन की उपस्थिति में संचित होता रहता है और नये जीवाणु की वृद्धि के काम नहीं आता। पेनिसिलिन के प्रहार के बाद जीवाणुओं की आकृति कैसी हो जाती है, इस सम्बन्ध में जो प्रयोग किए गये उनसे अन्तिम रूप से यह स्पष्ट हो गया कि पेनिसिलिन किस प्रकार कार्य करती है।

जीवाणु एकाकी कोशिका वाले पौधे हैं जो कोशिका-भित्ति से घिरे रहते हैं। इन दीवारों के निर्माण में पेनिसिलिन बाधा डालती है। उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पेनिसिलिन के आक्रमण के बाद दीवार बनाने वाला द्रव्य जीवाणुओं के पास क्यों बेकार पड़ा मिलता है। इन दीवारों के बिना नये जीवाणु नहीं बन सकते। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पेनिसिलिन, मानव-शरीर के अवयवों को हानि पहुंचाये बिना, जीवाणुओं के विरुद्ध क्यों कारगर होती है। मानव-कोशिकाएं, जीवाणु-कोशिकाओं की तरह दीवारों से घिरी नहीं होती हैं। केवल एक पतली झिल्ली से घिरी होती है जिसे कोशिका-झिल्ली कहते हैं। अतः कोशिका-भित्ति के निर्माण में पड़ने वाली बाधा का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

चिकित्सा-विज्ञान में पेनिसिलिन एक महत्त्वपूर्ण समारम्भ सिद्ध हुई। उसका महत्त्व केवल इसलिए नहीं था कि वह बहुत कारगर थी, बल्कि इसलिए भी कि रोग का सामना करने के एक नये दृष्टिकोण की वह प्रतिनिधि थी। पेनिसिलिन का उत्पादन एक ऐसी जीवित वस्तु (फफूंद) से होता था जो अन्य जीवित वस्तुओं (जीवाणुओं) को नष्ट कर सकती थी। ऐसे पदार्थ का नाम एन्टीबायोटिक या प्रतिजीव (जीव के विरुद्ध) होता है। इस नाम का इतिहास 1889 से आरम्भ होता है जब कि फ्रांसीसी विद्वान विलेमिन ने, एक जीवित वस्तु द्वारा दूसरी वस्तु के मारे जाने को प्रतिजीविता (एन्टीबायसिस) की संज्ञा दी थी। इसे दृष्टि में रखते हुए, किसी जीवित वस्तु से उत्पन्न ऐसे पदार्थ को, जो दूसरी जीवित वस्तुओं को मार सके, प्रतिजीव (एन्टीबायोटिक) पदार्थ कहना मामूली बात थी। आजकल 'प्रतिजीव' (एन्टीबायोटिक) प्रायः ऐसे पदार्थ को कहा जाता है जो किसी जीवित वस्तु (जैसे फफूंद) से उत्पन्न होता है और जो बीमारी पैदा करने वाले जीवाणुओं को मार सकता है या उनकी वृद्धि को रोक सकता है।

पेनिसिलिन, जो प्रथम व्यावहारिक प्रतिजीवाणु ओषधि थी, बीसवीं शताब्दी



के विज्ञान की एक बहुत बड़ी विजय थी। फ्लेमिंग की प्रयोगशाला में जो 'आकस्मिक घटना' घटी थी और उसके बाद बीसियों अन्य वैज्ञानिकों ने उस विषय में जो शानदार कार्य किया, उसके फलस्वरूप वास्तव में एक चमत्कारी ओषधि उपलब्ध हुई।

पेनिसिलिन की व्यापक स्वीकृति के बाद शीघ्र ही यह भविष्यवाणी की जाने लगी कि 'ओषधि और रोगाणुओं के बीच हो रहे युद्ध में, पेनिसिलिन से सन्नद्ध मानव शीघ्र ही विजयी हो जाएगा। परन्तु पाया यह गया कि यद्यपि पेनिसिलिन जीवाणुओं को मार भगाती थी, वे शीघ्र ही जवाबी हमला कर देते थे। 1948 में एक आस्ट्रेलियन अस्पताल ने एक महाहारी की रिपोर्ट दी जो ऐसे जीवाणुओं से पैदा हो रही थी जिन पर पहले तो पेनिसिलिन कारगर थी परन्तु अब नहीं हो रही थी। प्रश्न उठा कि जीवाणुओं के ये नये कठोरतर प्रभेद, जिन पर अब पेनिसिलिन का प्रभाव नहीं पड़ रहा था, कैसे पैदा हो गए।

अब यह माना जाता है कि जीवाणुओं को मारने के दौरान, पेनिसिलिन ने जीवाणुओं के इन नये शक्तिशाली प्रभेदों को उत्पन्न कर दिया था जिन पर पेनिसिलिन का प्रभाव नहीं होता। उदाहरणार्थ, पेनिसिलिन जब स्टैफिलोकोकाई जीवाणुओं पर आक्रमण करती है तब उनमें से अधिकांश को मार देती है। परन्तु उनमें कुछेक ऐसे शक्तिशाली होते हैं जो पेनिसिलिन का प्रतिरोध करते हैं। ये कठोरतर जीवाणु प्रतियोगिता न रहने पर अपनी संख्या बढ़ाते हैं और कमजोर जीवाणुओं द्वारा खाली किये गये स्थान को भर देते हैं। चूंकि ये नये जीवाणु ऐसे जीवाणुओं से उत्पन्न होते हैं जिन पर पेनिसिलिन का प्रभाव नहीं पड़ता अतः इन पर भी पेनिसिलिन का प्रभाव नहीं पड़ता। चूंकि एक घंटे के भीतर स्टैफिलोकोकाई जीवाणुओं की एक नयी पीढ़ी उत्पन्न हो जाती है अतः उनकी संख्या तेजी के साथ बढ़ती है और पेनिसिलिन-प्रतिरोधी जीवाणुओं की नयी बस्तियां बसनी आरम्भ हो जाती हैं।

पेनिसिलिन से सम्बन्धित और भी समस्याएं सामने आयीं। कुछ लोग पेनिसिलिन के प्रति अतिसंवेदनशील (ऐलर्जिक) थे अर्थात् पेनिसिलिन की उन पर कष्टकारी प्रतिक्रिया हो जाती थी। साथ ही, ऐसे बहुत से जीवाणु और बीमारियां थीं जिनका उपचार पेनिसिलिन द्वारा सम्भव नहीं था। अतः नये और बेहतर एन्टीबायोटिकों की खोज जारी रही। हाल के वर्षों में प्रतिजीवाणु पदार्थों की सूची में स्ट्रेप्टोमाइसिन, क्लोरोमाइसेटिन, आरियोमाइसिन, टेरामाइसिन तथा अन्य बहुत-सी ओषधियों का समावेश हुआ है। ऐसे प्रतिजीवाणु पदार्थ बन गए हैं जो उन जीवाणुओं पर प्रहार करते हैं जो प्रारम्भिक प्रतिजीवाणुओं से काबू में नहीं आते थे, जो अतिसंवेदनात्मक (ऐलर्जिक) प्रतिक्रियाएं नहीं उत्पन्न करते, जिन्हें मुह द्वारा भी शरीर में प्रवेश कराया जा सकता है, केवल इंजेक्शन द्वारा नहीं।

इनके अतिरिक्त संश्लेषणात्मक प्रतिजीवाणु ओषधियां हैं जिनका निर्माण मानव विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कर रहा है, संयुक्त प्रतिजीवाणु जीवाणुओं की व्यापक श्रेणियों के विरुद्ध कार्य करते हैं, अधिक शक्तिशाली प्रतिजीवाणु उन जीवाणुओं से लड़ते हैं जो पुराने प्रतिजीवाणुओं का प्रतिरोध करते हैं।

जब पेनिसिलिन का उपयोग आरम्भ हुआ तब ऐसा प्रतीत होता था कि बीमारी पैदा करने वाले जीवाणुओं के विरुद्ध युद्ध में हम बिलकुल सफल हो गए हैं। वे जीवाणु कुछ अंश तक सम्भल गए हैं और जवाबी हमला करने लगे हैं। परन्तु चूंकि शत्रु से हमारा सामना हो चुका है और उसकी आदतों से हम परिचित हो चुके हैं, अतः हम युद्ध में अन्तिम विजय प्राप्त करने के लिए तैयार हो रहे हैं।

## रोगनाशक रासायनिक द्रव्य

इस शताब्दी के आरम्भ में जर्मनी की चिकित्सा-अनुसंधान की प्रयोगशालाएं देखने योग्य थीं। परीक्षण-नलिकाएं और बीकर चमकीले रंगों वाले द्रव से भरे रहते थे। वैज्ञानिकों के प्रयोगशाला-चोंगों पर पीले, लाल और नीले रंग की धारियां पड़ी होती थीं। यहां तक कि वैज्ञानिकों के हाथों और नोटबुकों पर कई प्रकार के रंगों के धब्बे होते थे।

सारे जर्मनी की प्रयोगशालाओं में रंगों का बाहुल्य केवल संयोग की बात नहीं थी। रंगों और रासायनिक पदार्थों का उत्पादन करने वाले विशाल कारखाने, इस आशा से कि उनके उत्पादनों के नये उपयोग मालूम हो सकेंगे, हर तरह के अनुसंधान-कार्य को प्रोत्साहन दे रहे थे और इस मामले में उनका नेतृत्व आई० जी० फार्बैन उद्योग कर रहा था जो सबसे बड़ा उद्योग था।

पाल अर्लिच (1854-1915) रंजक द्रव्यों के प्रति उसी समय आकर्षित हो गए थे जब वे मेडिकल स्कूल के छात्र थे। उनके शिक्षक यह देखकर निराशा से सिर हिलाया करते थे कि वे शवच्छेदन करके शरीर के विभिन्न भागों का अध्ययन करने के बजाय, अवयवों (ऊतकों) के टुकड़ों को रंगकर सूक्ष्मदर्शी से उसका निरीक्षण करते थे। वे सोचते कि ऐसा आदमी किस प्रकार का डॉक्टर बनेगा जो अपने रंगों के साथ इतना व्यस्त रहता है कि उसे उन बीमारियों और ओषधियों की लम्बी सूची को याद करने का समय ही नहीं मिलता जिन्हें जानना डॉक्टरों के लिए जरूरी है।

परन्तु जैसे-तैसे अर्लिच डॉक्टर तो बन गए, लेकिन उनकी मुख्य रुचि अभी रंगों, और विशेषतः जानवरों और मनुष्यों के ऊतकों (टिस्सुओं) पर उनके प्रभाव में थी। एक प्रयोग में, जो अब प्रसिद्ध हो चुका है, उन्होंने एक जीवंत चूहे को मेथिलीन ब्लू का इंजेक्शन दिया। बाद में उन्होंने चूहे का शवच्छेदन किया और पाया कि रंजक ने चूहे की केवल तंत्रिकाओं के सिरों को नीला रंग दिया है। केवल तंत्रिकाओं पर ही रंग क्यों चढ़ा? पेशियों या हड्डियों आदि पर क्यों नहीं चढ़ा? अर्लिच ने तर्क किया कि रंजक और तंत्रिकाओं के बीच किसी प्रकार का



आकर्षण उपस्थित है।

वैज्ञानिक की जिज्ञासा किसी सीमा को स्वीकार नहीं करती। उन्होंने सोचा कि यदि रंजक का स्थान ओषधि ले ले तो बीमारी पैदा करने वाले जीवाणुओं को नष्ट किया जा सकता है। उन्हीं के शब्दों में 'वे उन जादुई गोलियों से जीवाणुओं को नष्ट करना चाहते थे जो केवल उन लक्ष्यों पर प्रहार करें जिनके विनाश के लिए उनका निर्माण किया गया हो।'

आरम्भ में अलिच ने लक्ष्य के रूप में ट्राइपेनोसोम की एक किस्म को चुना। ट्राइपेनोसोम एक तरह के प्रोटोजोआ होते हैं—बीमारी पैदा करने वाले सूक्ष्मदर्शीय जीव। ट्राइपेनोसोम घातक सूक्ष्म जीव होते हैं। उनकी एक किस्म, अफ्रीका के निद्रालु रोग की जनक है। यह बीमारी, जिससे अफ्रीका में लाखों आदमी हर साल मर जाया करते थे, सेसे मक्खी द्वारा फैलाई जाती है। इस बीमारी की प्राथमिक अवस्था में रोगी को तेज बुखार होता है और उसकी नाड़ी तेज चलती है। फिर, रोगी को चलने में कठिनाई होती है और उसकी आवाज बहुत कमजोर हो जाती है। अन्त में, वह बिल्कुल हिलडुल नहीं सकता। बीमारी की इसी अवस्था के कारण इसका यह नाम पड़ गया है। हर रोगी शीघ्र ही मर जाता है। ट्राइपेनोसोम की अन्य किस्मों से घोड़ों और मवेशियों को विभिन्न बीमारियां होती हैं।



ट्राइपेनोसोम

अलिच और उनके साथियों ने पुराने और नये रासायनिक रंजकों के परीक्षण का लम्बा कार्य आरम्भ किया। इसका उद्देश्य था एक ऐसे रंजक की खोज जो ट्राइपेनोसोमों को रंग सके और सम्भव हो तो मार भी सके। अन्त में, 1904 में उन्हें ट्राइपैन्ट रेड नामक एक ऐसा रंजक मिला जो प्रयोगशाला के चूहों में उपस्थित ट्राइपेनोसोमों को मार सकता था। परीक्षण नली में वह काम नहीं करता था। ट्राइपेनोसोम से संक्रमित घोड़ों को भी वह स्वस्थ नहीं कर सकता था। अतः उसे उपयोगी और व्यावहारिक ओषधि नहीं कहा जा सकता था। फिर भी रासायनिक पदार्थों से बीमारी का सामना करने की दिशा में यह एक उत्साहवर्धक शुरुआत थी।

अलिच ने उन प्रयोगों के बारे में पढ़ा जिनमें ऐटाकिस नामक ओषधि से ट्राइपेनोसोमों को नष्ट किया गया था। ऐटाकिस एक रासायनिक यौगिक है जिसमें संख्या होता है जो हत्यारों का चिरपरिचित विष है। ऐटाकिसल ट्राइपेनोसोमों को मारता तो था परन्तु साथ ही वह प्राणियों को अंधा कर देता था। अलिच ने ऐटाकिसल पर परीक्षण करने का निश्चय किया। वे ऐटाकिसल अणु को इस तरह परिवर्तित करना चाहते थे कि वह ट्राइपेनोसोम जीवाणुओं को नष्ट करे परन्तु अन्य हानिकार प्रभाव न उत्पन्न करे।

अगले वर्षों में अलिच, ऐटाकिसल अणु को परिवर्तित करते रहे—वे उनके परमाणुओं की व्यवस्था बदलते रहे, उनमें परमाणुओं को जोड़ते, हटाते और दूसरे परमाणुओं से बदलते रहे। 600 से अधिक विभिन्न अणु, मूल ऐटाकिसल से बनाये गए और उन सबसे परीक्षण किए गए। प्रत्येक मामले में, अलिच को पहले यह मालूम करना होता था कि नये रासायनिक पदार्थ की कितनी मात्रा इन सूक्ष्म जीवों को मारने के लिए आवश्यक है। फिर, उन्हें यह मालूम करना होता था कि कितनी मात्रा देने से प्राणी पर बुरा प्रभाव पड़ना आरम्भ होता है। ऐटाकिसल की बहुत-सी किस्मों के प्रभाव में चूहे अविराम नाचने लगते हैं। हम प्रयोगशाला के भीतर के उस दृश्य की कल्पना कर सकते हैं जिसमें दर्जनों चूहे अपने पिंजड़ों में पागलों की तरह नाच रहे हों।

इस खोज में हजारों चूहों और गिनीपिगों का बलिदान करना पड़ा। अंत में, 1909 में अलिच 606वीं संख्या तक पहुंच गए और उन्होंने एक ऐसा सूत्र ढूंढ ही निकाला जो सफल प्रतीत हुआ। वह अंधापन या नाचनेवाली बीमारी पैदा किये बिना चूहों और घोड़ों के ट्राइपेनोसोमों को मारने में समर्थ था।

अलिच ने महसूस किया कि 606 का और अधिक परीक्षण करना चाहिए परन्तु उन्होंने अनुसंधान के इस पथ का अनुसरण नहीं किया। उन्होंने हाल ही में एक रिपोर्ट पढ़ी थी कि मानव में होने वाली बीमारी, सिफिलिस (आतशक, उपदंश), एक ऐसे सूक्ष्म जीव से उत्पन्न होती है जो ट्राइपेनोसोम से सम्बन्धित है। आतशक (सिफिलिस) एक ऐसा यौन रोग है जिसके बहुत से लोग शिकार हो रहे थे। इसका प्राथमिक लक्षण यह था कि शरीर के भिन्न-भिन्न भागों पर व्रण हो जाते थे। उसके बाद पागलपन, अंधापन, हृदय रोग और यहां तक कि मृत्यु भी हो जाती थी। एक बड़ा प्रश्न यह था—क्या 606 आतशक को नष्ट कर सकता है?

अलिच को पुनः प्रयोगशाला की शरण लेनी पड़ी ताकि वे आतशक पर 606 के प्रभावों का परीक्षण कर सकें। सब प्राणियों को आतशक नहीं लगाया जा सकता था अतः अलिच को सर्वप्रथम खरगोशों पर प्रयोग करना पड़ा। उन्होंने पाया कि 606 के उपयोग से तीन सप्ताह में आतशक के व्रणों को दूर किया जा सकता है। उसके बाद चिपैजियों पर जो प्रयोग किये गए उनसे भी वही अच्छे परिणाम प्राप्त

हुए। 606 सफल प्रतीत हुआ। अब वे मानव पर परीक्षण करने के लिए तैयार हुए। उन्होंने ओषधि के नमूनों को डॉक्टरों और अस्पतालों के पास भेजा। अप्रैल 1910 तक प्रथम रिपोर्ट आ गयी। यदि बीमारी की आरम्भिक अवस्था में 606 का उपयोग किया जाए तो वह लाभ पहुंचा सकती है।

अलिच का स्वप्न सत्य सिद्ध हुआ। आतशक से लड़ने के लिए उन्हें एक 'जादुई गोली' मिल गयी। उन्होंने उसका नाम सैल्वर्सन रखा अर्थात् वह पदार्थ जो आर्सेनिक (संख्या) द्वारा जीवन की रक्षा करता है। रासायनिक दृष्टि से वह डाई-आक्सीडाई ऐमिडो-आर्सेनोबेन्जोल के रूप में ज्ञात था। अधिकांश लोग अब भी उसे 606 कहते थे। नाम जो भी हो, उसने रसायनी-चिकित्सा (रासायनिक पदार्थों से बीमारी का उपचार) को सम्भव बना दिया।

606 की सफलता से उत्साहित होकर बहुत से वैज्ञानिकों ने रसायनी-चिकित्सा में रुचि लेना आरम्भ कर दिया। आई० जी० फार्बन उद्योगों ने जीवाणुनाशक अन्य रासायनिक पदार्थों की खोज का अभियान आरम्भ कर दिया। उनकी प्रयोगशालाओं में एक के बाद एक, रासायनिक पदार्थों का परीक्षण, परीक्षण-नलियों में रखे गए जीवाणुओं पर किया गया। यदि रासायनिक पदार्थ नली में जीवाणुओं को मार देता था तो उसे उन प्राणियों पर प्रयुक्त किया जाता था जो जीवाणुओं से संक्रमित किए जाते थे। प्रत्येक मामले में, रासायनिक पदार्थ जीवाणुओं को ही नहीं मारता था, परीक्षणाधीन प्राणियों को भी मार डालता था।

आई० जी० फार्बन लगभग बीस वर्ष तक निष्फल प्रयोग करते रहे। तब, 1930 में गेर्हार्ड डोमक (1895-1964) को एक बात सूझी जो आज हमें बिल्कुल मामूली प्रतीत होती है। डोमक ने सोचा कि चूंकि एक ऐसे रासायनिक पदार्थ की तलाश है जो जीवित प्राणियों के शरीर में उपस्थित जीवाणुओं को मार सके अतः प्रथम परीक्षण जीवित प्राणी पर होना चाहिए, न कि परीक्षण-नली में।

डोमक ने उन रासायनिक पदार्थों के पुनर्परीक्षण से कार्य आरम्भ किया जो परीक्षण-नली वाले जीवाणुओं के विरुद्ध मामूली सक्रिय रहे थे। उन्होंने उन रासायनिक पदार्थों के इंजेक्शन प्रयोगशाला के उन चूहों को दिए जो स्ट्रेप्टोकोकाई जीवाणुओं से संक्रमित किए हुए थे। ये भयंकर जीवाणु, मनुष्य को होने वाली ये बीमारियां पैदा कर सकते हैं—रक्त-विषाक्तता, स्कालेंट ज्वर, सूतिका ज्वर। स्ट्रेप्टोकोकाई की मात्रा इतनी दी जाती थी कि चूहा पांच दिन के भीतर मर सकता था। यदि पांच दिन के बाद चूहा जीवित रहता तो रासायनिक पदार्थ का पुनः परीक्षण होता। आप भी मानेंगे कि यह प्रयोग बहुत समय तक चलता रहा होगा क्योंकि प्रत्येक रासायनिक पदार्थ से परीक्षण किया गया था। बैक्टीरिया को नष्ट



करने वाले रासायनिक पदार्थ की इस खोज में अनेकानेक बार असफलता का सामना करना पड़ा था ।

आखिरकार, प्रोन्टासिल रेड नाम के लाल रंजक के साथ परीक्षण किया गया । संक्रमित चूहा स्ट्रेप्टोकोकाई जीवाणुओं से जीवित बच निकला । उस पर कोई अन्य बुरा प्रभाव भी नहीं पड़ा । क्या यह वही रासायनिक पदार्थ था जिसकी खोज डोमक कर रहा था ? उसने इसका नाम प्रोन्टासिल रखा और 1932 के बड़े दिन के अवसर पर उसने चुपचाप उसका पेटेंट ले लिया । उसने बहुत साधारण शब्दों में उसका वर्णन 'जीवाणु-नाशक' के रूप में किया था ।

मनुष्य पर प्रोन्टासिल के परीक्षण का अवसर बहुत शीघ्र ही—डोमक की इच्छा से भी अधिक तेजी से—उपस्थित हो गया । सूई से खरोंच लग जाने के कारण उनकी पुत्री को स्ट्रेप्टोकोकाई का बहुत गम्भीर संक्रमण हो गया । संक्रमण उसके सारे शरीर में फैल गया । डॉक्टरों ने संक्रमण दूर करने का हर सम्भव उपाय किया, यहां तक कि शल्य-चिकित्सा भी की । किसी से कोई लाभ नहीं हुआ । उसकी दशा चिंताजनक हो गयी थी । डोमक के सामने एक वास्तविक द्विविधा थी । दुर्भाग्यवश, अभी तक मनुष्य पर प्रोन्टासिल के परीक्षण का अवसर नहीं मिल सका था । उनकी पुत्री मरणासन्न थी और उन्हें शीघ्र ही कुछ करना चाहिए था । तो क्या उन्हें प्रोन्टासिल का प्रथम परीक्षण अपनी ही बेटी पर करना होगा ? उन्हें आशा थी कि प्रोन्टासिल स्ट्रेप्टोकोकाई जीवाणुओं को नष्ट कर देगा; परन्तु क्या वह उनकी बेटी को भी मार देगा ?

उन्होंने प्रोन्टासिल के परीक्षण का निश्चय कर डाला । कल्पना कीजिये डोमक की मानसिक यंत्रणा की । अनेक घंटों तक वे ओषधि के प्रभाव की प्रतीक्षा करते रहे । अंत में परिणाम सामने आया । पुत्री की दशा में सुधार होना आरम्भ हुआ । संक्रमण दूर करने में प्रोन्टासिल जितना कारगर हुआ उतनी और कोई ओषधि कारगर नहीं हुई थी । सबसे बड़ी बात यह थी कि उसका कोई दूसरा बुरा प्रभाव भी नहीं पड़ा था । प्रोन्टासिल प्रथम मानव-परीक्षण में बहुत सफलता के साथ पास हो गया ।

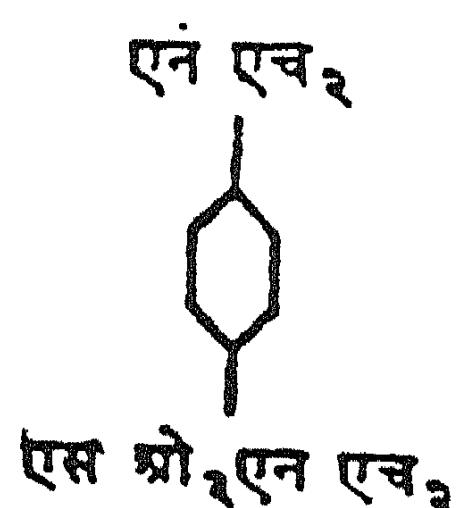
लगभग तीन वर्ष तक, बिना किसी प्रचार के प्रोन्टासिल का परीक्षण होता रहा । एक-दो आदमियों पर नहीं, सैकड़ों व्यक्तियों पर उसका परीक्षण करना था । और प्रोन्टासिल द्वारा उपचरित रोगियों की तुलना उन्हीं रोगों से पीड़ित ऐसे रोगियों की समान संख्या से करनी थी जिनका उपचार प्रोन्टासिल से नहीं किया गया था । अंत में, फरवरी, 1935 में प्रथम सार्वजनिक घोषणा की गयी । आई० जी० फार्बन ने प्रोन्टासिल द्वारा नीरोग हुए रोगियों के प्रायः पूरे रिकार्ड का विवरण प्रकाशित कर दिया । जैसे-जैसे सारे संसार में यह ओषधि बिकने लगी वैसे-वैसे अधिकाधिक आश्चर्यजनक परिणाम सामने आने लगे । लंदन के एक

अस्पताल ने सूचना दी कि रक्त-विषाक्तता में होने वाली मृत्यु-संख्या 75 से कम होकर 5 हो गयी थी। बाल्टीमोर में एक आठ वर्ष की लड़की त्वचा पर हुए संक्रमण से मर रही थी और उसका ज्वर 106 अंश पर था। प्रोन्टासिल ने संक्रमण को दूर कर दिया और छत्तीस घंटों के भीतर तापमान को उतारकर सामान्य स्तर पर ला दिया। राष्ट्रपति रूजवेल्ट के पुत्र, फ्रैंकलिन डेलैनो रूजवेल्ट की हालत स्ट्रेप्टोकोकाई के कारण चिन्ताजनक हो गई थी। ये जीवाणु एक संक्रमित नासूर से सारे शरीर में फैल गये थे। प्रोन्टासिल के इलाज से वे स्वस्थ हो गए।

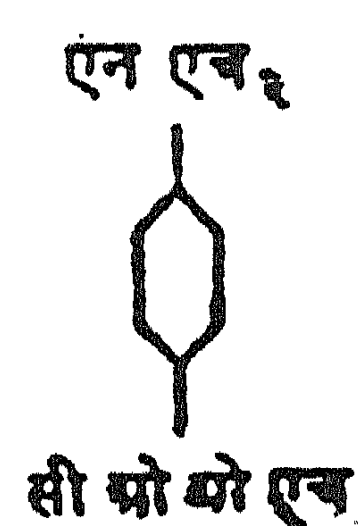
पेरिस के पास्चुर संस्थान के कुछ वैज्ञानिक, जो कि वोन्टासिल के गुणकारी प्रभाव के कायल थे, यह भी जानना चाहते थे कि वह किस तरह कार्य करता है और क्यों उस तरह कार्य करता है। उन्होंने प्रोन्टासिल की जटिल रासायनिक संरचना का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि ओषधि का एक भाग एक अपेक्षाकृत सरल यौगिक था जिसका नाम सल्फानिलेमाइड था और वह 1908 से ही ज्ञात था। यही भाग, सल्फानिलेमाइड था जो कि जीवाणुओं के विरुद्ध सक्रिय था। प्रोन्टासिल के शेष भाग का जीवाणुओं से लड़ने में कोई हाथ नहीं था।

परन्तु वैज्ञानिकों को अभी इस रहस्य का उद्घाटन करना था कि सल्फानिलेमाइड किस तरह काम करता है। बाद में मालूम हुआ कि यदि सल्फानिलेमाइड के साथ पैरा-ऐमिनो-बेन्जोइक अम्ल मिलाया जाए तो वह जीवाणुओं के विरुद्ध कम सक्रिय हो जाता है। पैरा-ऐमिनो-बेन्जोइक अम्ल के विषय में जो दो तथ्य ज्ञात थे उनके कारण यह जानकारी बहुत उपयोगी सुराग सिद्ध हुई : प्रथम यह कि जीवाणु पैरा-ऐमिनो-बेन्जोइक अम्ल की सहायता से फोलिक अम्ल बनाते हैं और वैक्टीरिया की वृद्धि के लिए फोलिक अम्ल अनिवार्य है। दूसरा यह कि पैरा-ऐमिनोबेन्जोइक अम्ल की रासायनिक संरचना

सल्फानिलेमाइड



पैरा-ऐमिनो-बेन्जोइक अम्ल



एच = हाइड्रोजन

ओ = ऑक्सीजन

एस = गंधक

एन = नाइट्रोजन

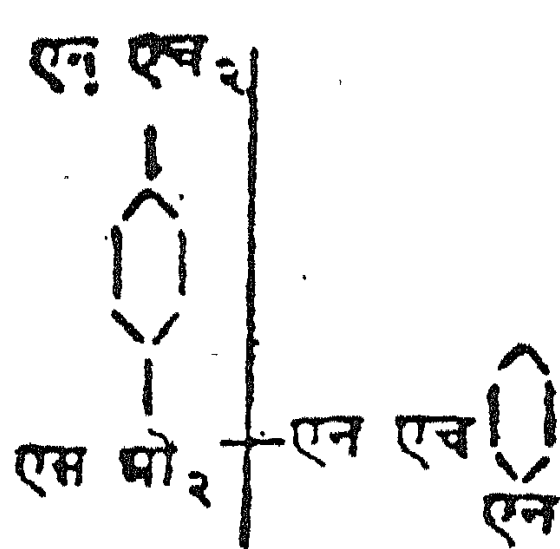
सी = कार्बन

सल्फानिलेमाइड से बहुत मिलती-जुलती है। क्या आप इन दोनों सुरागों की सहायता से अनुमान लगा सकते हैं कि सल्फानिलेमाइड किस तरह काम करता है? क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि सल्फानिलेमाइड के साथ पैरा-ऐमिनो-बेन्जोइक अम्ल मिलाने से सल्फानिलेमाइड की शक्ति क्यों कम हो जाती है? अपनी वृद्धि के लिए जीवाणुओं को पैरा-ऐमिनो-बेन्जोइक अम्ल की आवश्यकता होती है क्योंकि इसके बिना वे फोलिक अम्ल नहीं बना सकते जो उनकी वृद्धि के लिए अनिवार्य रासायनिक पदार्थ है। सल्फानिलेमाइड, पैरा ऐमिनो-बेन्जोइक से इतना मिलता-जुलता है कि जीवाणु गलती से सल्फानिलेमाइड को ग्रहण कर लेते हैं। चूंकि जीवाणु सल्फानिलेमाइड की सहायता से फोलिक अम्ल नहीं बना सकते अतः उनकी वृद्धि नहीं हो पाती और रोगी शीघ्र ही उनसे छुटकारा पा जाता है।

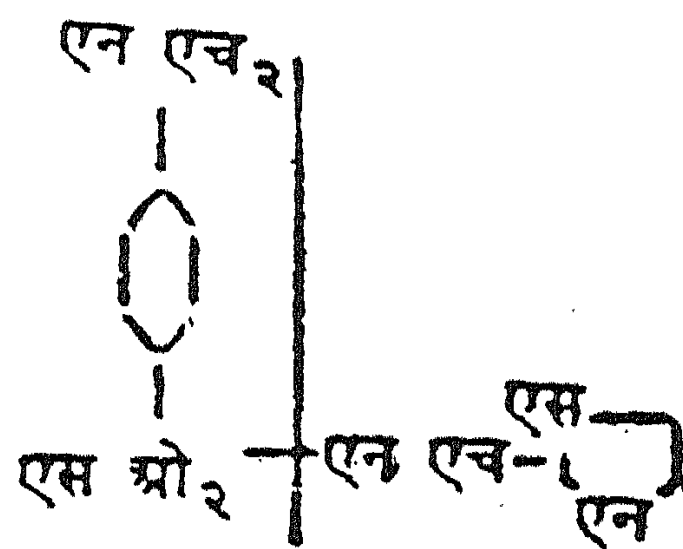
यदि सल्फानिलेमाइड और पैरा-ऐमिनो-बेन्जोइक अम्ल दोनों जीवाणुओं को उपलब्ध हों तो कुछ जीवाणु संयोगवश पैरा-ऐमिनो-बेन्जोइक अम्ल को चुन लेंगे और उनकी वृद्धि जारी रहेगी। जो जीवाणु सल्फानिलेमाइड को चुनेंगे वे नष्ट हो जायेंगे, परन्तु जो पैरा-ऐमिनो-बेन्जोइक अम्ल को चुनेंगे वे स्वस्थ बने रहेंगे और इतने नये जीवाणु पैदा करेंगे कि नष्ट हुए जीवाणुओं की कमी भी पूरी हो जाएगी।

हमारा शरीर जिस ढंग से काम करता है उसके कारण सल्फानिलेमाइड मानव के लिए हानिकर नहीं है। जीने के लिए हमें फोलिक अम्ल की आवश्यकता होती है। परन्तु हमारा शरीर उसे बना नहीं सकता और भोजन से उसे बने-बनाये रूप में प्राप्त करना पड़ता है। अतः पैरा-ऐमिनो-बेन्जोइक अम्ल या उससे मिलते-जुलते सल्फानिलेमाइड में शरीर की कोई दिलचस्पी नहीं है। दोनों की समानता के कारण केवल बैक्टीरिया धोखा खा जाते हैं, हम नहीं।

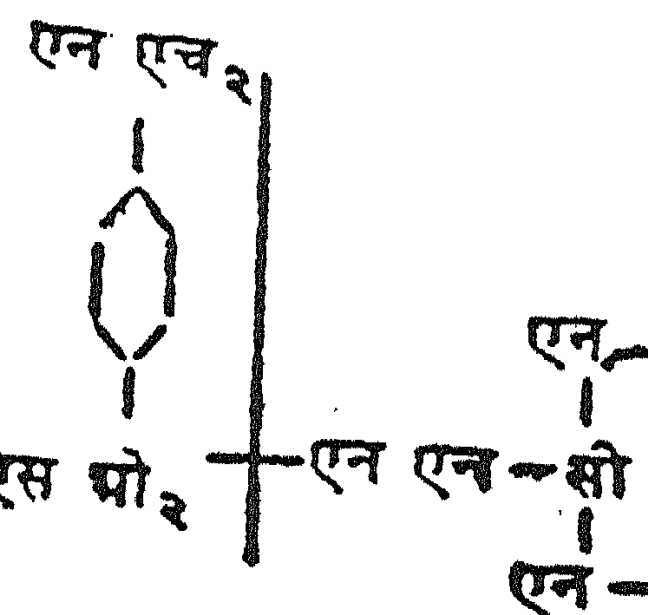
आगे चलकर, आधारभूत सल्फानिलेमाइड अणु के साथ भिन्न-भिन्न परमाणुओं को जोड़कर अन्य सल्फा ओषधियां, जैसे सल्फापाइरिडीन, सल्फाथायोजोल तथा सल्फाडायोजीन आदि बनाई गयीं। परिष्कृत सल्फा ओषधियां सल्फानिलेमाइड से अधिक शक्तिशाली निकलीं जिन जीवाणुओं पर सल्फानिलेमाइड



सल्फापाइरिडीन



सल्फाथायोजोल



सल्फाडायोजीन



आक्रमण करता था उनके अतिरिक्त अन्य जीवाणुओं पर भी वे धावा बोल सकती थीं। सल्फ़ानिलेमाइड के उपयोग से कुछ लोगों पर जो दूसरे खतरनाक प्रभाव पड़ते थे उनसे भी वे मुक्त रहीं।

रोग के विरुद्ध युद्ध में बीसवीं शताब्दी में हमें दो महान सफलताएं प्राप्त हुई हैं। एक है रसायनी चिकित्सा अर्थात् रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं का सामना मानव-निर्मित सल्फ़ा ओषधियों जैसे रासायनिक पदार्थों से करना। दूसरी है प्रतिजीवाणु-पदार्थों का आविष्कार; ये वे पदार्थ हैं जिन्हें जीवाणु उत्पन्न करते हैं और जिनकी सहायता से अन्य जीवाणुओं को नष्ट किया जाता है; पेनिसिलिन, आरियोमाइसिन आदि इनके उदाहरण हैं। इनके कारण बहुत-सी बीमारियों का प्रायः उन्मूलन हो गया है और लाखों लोग भयंकर रोगों से मुक्त हो चुके हैं।

## विटामिन

टकागी कैनेहिरो, 1880वें दशक में जापानी नौ-सेना के डाइरेक्टर जेनरल थे। उनकी यह आदत थी कि वे लम्बी समुद्री यात्राओं से वापस आने वाले जहाजों के स्वागत के लिए डाक (गोदी) पर जाया करते थे। उन अवसरों पर सदा एक ही दृश्य दिखायी देता था। पहले कुछ नाविक जहाज से दौड़कर आते थे, उसके बाद कुछ नाविक धीरे-धीरे और विचित्र ढंग से पैर रगड़ते हुए आते थे। कुछ नाविक ऐसे भी होते थे जो लकवा के शिकार होते थे और उन्हें उठाकर तट पर लाया जाता था। किसी भी लम्बी यात्रा के बाद वापस आने वाले हर तीन नाविकों में से एक या तो बीमार होता था या मरणासन्न।

टकागी कोई वैज्ञानिक नहीं थे। उन्हें कुछ पता नहीं था कि नाविकों की बीमारी का क्या कारण है। उन्हें केवल यह मालूम था कि बीमार नाविक बेरीबेरी के शिकार थे। यह एक ऐसा रोग था जिसमें तंत्रिका-तंत्र प्रभावित होता था और जिससे सुदूर पूर्व में प्रतिवर्ष लाखों लोगों की मृत्यु होती थी। आरम्भिक अवस्था में रोगी को चलने-फिरने में कठिनाई होती थी। फिर, शीघ्र ही उसे लकवा मार जाता था और उसकी मृत्यु हो जाती थी।

अपने नाविकों को इस खतरनाक बीमारी से बचाने के लिए टकागी बेरीबेरी के उन्मूलन का उपाय ढूँढ़ने लगे। उन्होंने देखा कि जब चावल की सामान्य खुराक के साथ-साथ जौ दिया जाता था तब बेरीबेरी के रोगियों की संख्या में बहुत कमी हो जाती थी। यद्यपि उनकी समझ में यह नहीं आया कि जौ से क्यों लाभ होता था फिर भी उन्होंने आज्ञा दे दी कि प्रत्येक जहाज अपने साथ जौ ले जाए।

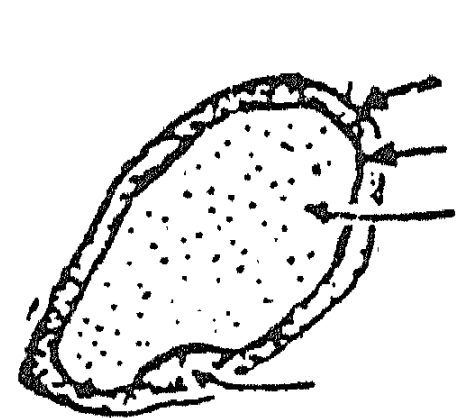
उनकी खोज महत्वपूर्ण थी और उसने वैज्ञानिकों को इस बीमारी का और अधिक अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। परन्तु सारे सुदूर पूर्व में बेरीबेरी एक खतरनाक और घातक बीमारी बनी ही रही। पचास वर्ष बाद कहीं जाकर बेरीबेरी से निबटने का उपाय मालूम किया जा सका और वह भी कई शानदार परीक्षणों के फलस्वरूप। तब वैज्ञानिकों को केवल इस बीमारी के कारण और उपचार की ही जानकारी नहीं हुई बल्कि उन्हें विटामिनों तथा शरीर में उनकी

क्रिया का भी प्रथम ज्ञान प्राप्त हुआ ।

इस शताब्दी के आरम्भ में डच सरकार ने बेरीबेरी के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए डच ईस्ट इंडीज में चिकित्सकों का एक दल भेजा । दो वर्ष तक यह दल बेरीबेरी पैदा करने वाले जीवाणुओं की बेकार तालाश करता रहा । लेकिन दल के एक डॉक्टर, क्रिस्चियन इज्कमैन (1858-1930) के प्रेक्षण ध्यान देने योग्य हैं ।

इज्कमैन जावा के बंदीगृह में बंदियों के स्वास्थ्य और आहार का अध्ययन कर रहे थे । जेल के अहाते में रखे गये चूजों में उन्होंने एक खास बात देखी । ये चूजे विचित्र ढंग से पैर घसीट कर चलते थे और उनके सिर अजीब तरह से घूमे हुए थे । इस बात ने उन्हें बेरीबेरी के रोगियों की याद दिलायी । क्या चूजे भी किसी प्रकार के बेरीबेरी रोग से पीड़ित थे ? क्या कारण है कि जेल के भीतर वाले चूजों में बेरीबेरी के लक्षण प्रकट होते हैं परन्तु जेल के बाहर वाले चूजों को यह बीमारी प्रायः नहीं होती ?

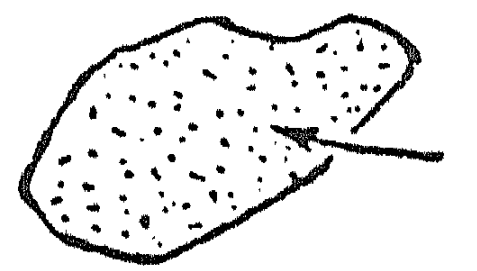
इज्कमैन की जिज्ञासा जाग्रत हो गयी । उन्होंने जेल वाले चूजों के आहार का अध्ययन करके मालूम किया कि उनको कैदियों की जूठन खिलाई जाती है । इन कैदियों तथा एशिया के अधिकांश लोगों का मुख्य आहार पालिश किया हुआ चावल था । चूंकि समूचा चावल शीघ्र ही सड़ जाता था अतः उसे पालिश किया जाता था । पालिश करने का अर्थ है चावल के बाहरी छिलके तथा भीतरी खोल (रजत चर्म या क्यूटिकल) को हटा देना । स्वस्थ चूजे, जो जेल के बाहर देहात में रहते थे, भिन्न-भिन्न प्रकार के आहार खाते थे । वे बीज, कीट तथा जूठन भी खाते थे ।



समूचा चावल

छिलका  
रजत चर्म  
स्टार्च  
बीजांकुर

स्टार्च



पालिश किया हुआ  
चावल

इज्कमैन को संदेह हुआ कि बेरीबेरी के रहस्यपूर्ण कारण की खोज में पालिश किया हुआ चावल एक महत्वपूर्ण सुराग है । अपने सिद्धान्त के परीक्षण के लिए उन्होंने प्रयोगों की व्यवस्था की । उन्होंने कुछ स्वस्थ चूजों को लिया और उन्हें तीन समूहों में विभक्त किया । प्रथम समूह को समूचा चावल, जिससे छिलका और रजत चर्म नहीं हटाया गया था, खिलाया गया । दूसरे समूह को ऐसा चावल दिया गया जिस पर से केवल बाहरी छिलका हटाया गया था । तीसरे समूह को पालिश किया हुआ चावल दिया गया जिस पर से छिलका और रजत चर्म दोनों हटाए गए



थे । कुछ दिनों के बाद प्रथम और द्वितीय समूह के सारे चूजे स्वस्थ पड़े गए, परन्तु तीसरे समूह के अनेक चूजों में बेरीबेरी के लक्षण प्रकट हो रहे थे ।

इज्कमैन को अब संदेह हो गया कि बेरीबेरी का एक कारण तो 'चावल को पालिश करना' है । इस संदेह ने उन्हें प्रेरणा दी कि वे अपने प्रयोगों को एक कदम और आगे ले जाएं । उन्होंने तीसरे समूह के बीमार चूजों को पालिश किए हुए चावलों से उतरे हुए छिलके और रजत चर्म खिलाये । कुछ ही घंटों के भीतर उन सबकी हालत सुधर गयी ।

इज्कमैन के कार्य को दृष्टि में रखकर आजकल हम ठीक-ठीक समझ सकते हैं कि मामला क्या था । रजत चर्म में थायामिन होता है जिसे विटामिन-बी कहते हैं । जब चावल की पालिश की जाती है तब थायामिन निकल जाता है । आहार में थायामिन के न होने से बेरीबेरी हो जाती है । जब इज्कमैन ने चूजों को छिलका और रजत चर्म खिलाया तो वास्तव में उन्होंने उन्हें थायामिन दिया जिससे बेरीबेरी की बीमारी दूर हो गयी ।

परन्तु इज्कमैन ने ये प्रयोग लगभग सत्तर वर्ष पूर्व किये थे और उन्हें वे बातें नहीं मालूम थीं जो आज हम सबको ज्ञात हैं । अपने बहुमूल्य प्रयोगों से उन्होंने निष्कर्ष गलत निकाला । उन्होंने लिखा है, 'इन प्रयोगों से मैं यह निष्कर्ष निकालता हूं कि क्यूटिकलों में शायद एक या अधिक ऐसे पदार्थ हैं जो निशास्तायुक्त पोषकों के हानिकारक प्रभाव का निराकरण करते हैं ।' दूसरे शब्दों में, उनका विश्वास था कि चावल में कोई ऐसा पदार्थ है जो बेरीबेरी पैदा करता है और क्यूटिकल या रजत चर्म में कोई ऐसा पदार्थ है जो बेरीबेरी को रोक या दूर कर सकता है । वे विटामिनों के ज्ञान के इतना निकट होते हुए भी उससे बहुत दूर थे ।

फिर भी उनका कार्य विज्ञान के मार्ग पर मील का एक पत्थर बन गया, उसका प्रमुख महत्त्व इस बात में नहीं था कि उन्होंने बेरीबेरी को दूर करने का एक उपाय मालूम किया । (टकागी ने बेरीबेरी को, जो का सेवन करा के, पन्द्रह वर्ष पूर्व ही दूर कर लिया था ।) महत्त्व इस बात में था कि बेरीबेरी को वैज्ञानिक एवं प्रायोगिक नियंत्रण के अधीन उत्पन्न और नष्ट करना, प्रथम बार सम्भव हो सका था । अब अन्य वैज्ञानिक इस आधार पर आगे कार्य करके इस बीमारी का वास्तविक कारण और उपचार ज्ञात कर सकते थे ।

विटामिन-अनुसंधान की प्रगति तेज हो गई । 1906 में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में सर फ्रेडरिक गोलैण्ड ने एक प्रसिद्ध प्रयोग किया । उन्होंने चूहे के बच्चों का एक दल लिया और दूध में पाये जाने वाले सब पोषक तत्वों के आहार पर उन्हें रखा । उन्होंने उन्हें प्रोटीन, वसा, शर्करा और लवण शुद्ध रूप में खाने को दिया । बीस दिन बाद भी चूहों के वजन में कोई वृद्धि नहीं हुई । उन्होंने चूहों के एक दूसरे दल को वही आहार दिया परन्तु उसमें समूचे दूध की कुछ बूंदें

डालत रहे। उतने ही काल में उनका वजन लगभग दुगुना हो गया। इसका अर्थ यह हुआ कि दूध में कोई ऐसी अज्ञात वस्तु है जो वृद्धि के लिए आवश्यक है। चूहों को जब दूध में पाये जाने वाले केवल ज्ञात पोषक तत्त्व शुद्ध रूप में खिलाए जाते थे तब यह अज्ञात पदार्थ उन्हें नहीं मिलता था। परन्तु जब उन्हें समूचा दूध दिया गया तब वह अज्ञात पदार्थ उन्हें मिला। आजकल हम इस अज्ञात पदार्थ को विटामिन 'ए' के रूप में जानते हैं।

1911 में कैसिमिर फन्क ने लन्दन में इज्कमैन के प्रयोग को दोहराया। उन्होंने चूहों को पालिश वाला चावल खिलाकर उनमें बेरीबेरी उत्पन्न किया और बाद में चावल के बाहरी छिलकों को खिलाकर उन्हें स्वस्थ किया। इसके बाद उन्होंने बाहरी छिलकों से वह पदार्थ निकालने का कार्य आरम्भ किया जो अकेला ही बेरीबेरी को अच्छा कर सके। आज हम जानते हैं कि वह पदार्थ कई बी विटामिनों का मिश्रण है और उसे विटामिन बी काम्प्लेक्स कहते हैं। चूंकि वह पदार्थ, जिसे फन्क ने प्राप्त किया, कई रासायनिक पदार्थों का मिश्रण था अतः वे उसके बारे में अधिक जानकारी नहीं प्राप्त कर सके। परन्तु वे इस निष्कर्ष पर जरूर पहुंचे कि वह पदार्थ एक प्रकार का कार्बनिक यौगिक है जो सभी प्रोटीनों में पाया जाता है और जिसे 'ऐमाइन' कहते हैं। चूंकि वह जीवन के लिए बहुत आवश्यक (वाइटल) था। अतः उसका नाम उन्होंने 'वाइटमाइन' रखा। बाद में पता चला कि सभी विटामिन 'ऐमाइन' नहीं होते अतः आइन प्रत्यय हटा दिया गया। लेकिन 'विटामिन' शब्द तो अब रुढ़ हो चुका है।

बेरीबेरी के उपचार की खोज में अगला कदम जावा की उसी प्रयोगशाला में उठाया गया जिसमें स्वयं इज्कमैन ने काम किया था। दो वैज्ञानिक, बी० सी० पी० जैन्सन और डब्ल्यू० एफ० डोनैथ, 1925 में उस वस्तु का प्रथम शुद्ध नमूना प्राप्त करने में सफल हुए जिसका नाम उन्होंने 'बेरीबेरी-रोधक विटामिन' रखा। आजकल हम इस पदार्थ को विटामिन बी या थायामिन के रूप में जानते हैं।

अपने प्रयोगों के लिए उन्होंने बांडाल नाम के कई सौ छोटे-छोटे चावल-पक्षियों का तथा लगभग 700 पौण्ड चावल के छिलके का उपयोग किया। आरम्भ में देखा गया कि यदि चावल-पक्षियों को केवल पालिश किया हुआ चावल खिलाया जाए तो लगभग ग्यारह दिन में उन्हें बेरीबेरी हो जाता है। अनेक लम्बे और जटिल रासायनिक प्रयोगों द्वारा वे छिलकों की ढेरी से भिन्न-भिन्न पदार्थों को पृथक् करते गए। पालिश किए हुए चावल के साथ प्रत्येक पदार्थ की भिन्न-भिन्न मात्रा पक्षियों को खिलायी गयी। यदि बांडालों को बीस दिन के भीतर बेरीबेरी नहीं होता था तो वे समझते थे कि जिस वस्तु की खोज वे कर रहे हैं वह उस पदार्थ में है। अंत में असंख्य प्रयोगों के बाद छिलकों की उस बड़ी ढेरी में से वह पदार्थ भी प्राप्त कर लिया गया जो अकेला ही बेरीबेरी को अच्छा कर सकता था। वह थोड़ा-सा चूर्ण

था जिसका वजन 1/300 औंस था ! शुद्ध विटामिन का वह प्रथम नमूना था ।

जैन्सन और डोनेथ के कार्य ने वह मार्ग प्रशस्त कर दिया जिस पर चलकर अन्य वैज्ञानिकों ने और बहुत से विटामिनों का आविष्कार किया । पहले परीक्षाधीन प्राणियों को अपूर्ण आहार दिये जाते थे और बीमारी के लक्षणों के प्रकट होने का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया जाता था । फिर ऐसा भोजन मालूम किया जाता था जो उन लक्षणों को दूर कर सके । अंत में, भोजन के उस पदार्थ-विशेष को पृथक् प्राप्त किया जाता था जिससे बीमारी के लक्षण दूर होते थे । इस विधि से एक दर्जन से भी अधिक भिन्न विटामिन मालूम किये गये । आगे चल कर विटामिनों की रासायनिक रचना भी मालूम कर ली गयी और प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से विटामिनों के बनाने का तरीका भी ज्ञात किया गया ।

प्रत्येक मामले में विटामिन ऐसा पदार्थ सिद्ध हुआ जो शरीर को स्वस्थ अवस्था में रखने के लिए आवश्यक है । यह भी मालूम हुआ कि विभिन्न विटामिनों की केवल सूक्ष्म मात्राएँ ही आवश्यक हैं । परन्तु यदि ये सूक्ष्म मात्राएँ न मिलें तो त्रुटिजन्य बीमारियाँ उत्पन्न होती जाती हैं, जैसे, बेरीबेरी, स्कर्वी, पेलाग्रा और रिकेट्स । ये बीमारियाँ तथा बुरे स्वास्थ्य के अन्य मामूली लक्षण तब आरम्भ होते हैं जब आहार में से एक या अनेक विटामिन अनुपस्थित रहते हैं । यदि बेहतर आहार या गोलियों के रूप में विटामिनों द्वारा उपचार शीघ्र ही आरम्भ कर दिया जाए तो बीमारी या बुरा स्वास्थ्य प्रायः ठीक हो जाता है ।

आरम्भ में ऐसा माना जाता था कि विटामिन केवल दो हैं—विटामिन ए, जो वसा में घुलता है और विटामिन बी, जो जल में घुलता है । जल में घुलने वाले अन्य विटामिन जैसे-जैसे ज्ञात होते गये वैसे-वैसे उनका नाम बी<sub>1</sub>, बी<sub>2</sub> आदि पड़ता गया, उन सबका सम्मिलित नाम बी काम्प्लेक्स है । बाद में विटामिनों की सूची अंग्रेजी वर्णमाला के 'के' अक्षर तक-पहुँच गयी । ए, बी काम्प्लेक्स, सी, डी और के महत्त्वपूर्ण विटामिन हैं जो मानव के लिए आवश्यक हैं ।

---

विटामिन ए	सी <sup>20</sup> एच <sup>30</sup> ओ <sup>1</sup>	सी = कार्बन
थायामिन	सी <sup>12</sup> एच <sup>18</sup> ओ <sup>1</sup> एन <sup>4</sup> एस <sup>1</sup> क्लो <sup>2</sup>	एच = हाइड्रोजन
नियासिन	सी <sup>6</sup> एच <sup>5</sup> ओ <sup>2</sup> एन <sup>1</sup>	ओ = ऑक्सीजन
रिबोफ्लेविन	सी <sup>17</sup> एच <sup>20</sup> ओ <sup>6</sup> एन <sup>1</sup>	एन = नाइट्रोजन
ऐस्कार्बिक अम्ल	सी <sup>6</sup> एच <sup>8</sup> ओ <sup>6</sup>	एस = गंधक
विटामिन डी	सी <sup>28</sup> एच <sup>44</sup> ओ <sup>1</sup>	क्लो = क्लोरीन
विटामिन के	सी <sup>21</sup> एच <sup>42</sup> ओ <sup>2</sup>	

---

रात्रि में या अंधेरे में देखने के लिए विटामिन ए आवश्यक है । विटामिन ए



के अच्छे स्रोत गाजर जैसी पीली सब्जियां और मक्का हैं। उनमें स्वयं यह विटामिन तो नहीं होता परन्तु उनमें एक ऐसा पदार्थ (कैरोटीन) होता है जिसे शरीर विटामिन ए में परिवर्तित कर सकता है।

शरीर में विटामिन ए की आवश्यकता दृष्टि-पटल (रेटिना) के लिए होती है। रेटिना में दो प्रकार की कोशिकाएं होती हैं—शंकु जैसी, जिनसे तेज रोशनी में देखते हैं और शलाका जैसी, जिनसे मंद प्रकाश में देखते हैं। शलाकाओं के भीतर एक ऐसा रासायनिक पदार्थ होता है जो अंशतः विटामिन ए से बनता है। इसलिए विटामिन ए की कमी से अंधेरे में या रात में नहीं दिखायी देता है। (रतौंधी हो जाती है।)

यह भी मालूम किया गया कि चूहों के आहार की वसा के रूप में जब सुअर की चर्बी या जैतून का तेल दिया गया तब उनकी वृद्धि अच्छी तरह से नहीं हुई। परन्तु जब उन्हें अंडे की जर्दी, मक्खन या काँड मछली का तेल दिया गया तब उनकी वृद्धि सामान्य रूप में हुई। इसका कारण यह है कि इस दूसरे समूह की वसाओं में विटामिन ए होता है और प्रथम समूह की वसाओं में वह नहीं होता। इस प्रकार हमें यह भी पता चला कि शरीर की सामान्य वृद्धि के लिए विटामिन ए अनिवार्य है।

इस समय तक हम बी काम्प्लेक्स के लगभग एक दर्जन विटामिनों को जानते हैं। अब हम उन्हें उनके रासायनिक नामों से पुकारते हैं, संख्याओं से नहीं, जैसा कि पहले होता था। थायामिन (जो बेरीबेरी को रोकती और हटाती है), नियासिन और रिबोफ्लैविन शायद सबसे प्रसिद्ध हैं। इन नामों से आप भी परिचित होंगे क्योंकि खाद्यान्नों के बक्सों पर तथा प्रचलित डबल रोटियों के वेष्टनों पर उनके नाम लिखे रहते हैं। इन आहारों में वे इसलिए मिलाए जाते हैं ताकि उनको पकाते समय जो विटामिन नष्ट हो गये हैं उनकी स्थानपूर्ति हो जाए तथा रोटी या अन्न की पोषण-शक्ति भी बढ़ जाय।

थायामिन केवल बेरीबेरी को ही रोकता और हटाता हो, ऐसी बात नहीं। स्वस्थ तंत्रिकाओं, अच्छी भूख और हाजमे के लिए भी वह आवश्यक है। समूचे अन्न से बनाई गयी रोटियों, दूध और जिगर में यह पाया जाता है। शरीर को प्रति

दिन  $\frac{1}{2,000}$  औंस नियासिन की आवश्यकता होती है। यदि उसे इससे कम

नियासिन मिले तो त्वचा की एक गम्भीर बीमारी—पेलाग्रा—हो सकती है। नियासिन के अच्छे स्रोत हैं—यीस्ट, मांस, अंडे और समूचे अन्न। रिबोफ्लैविन की आवश्यक मात्रा इससे भी कम है। त्वचा और आंखों को स्वस्थ रखने के लिए

केवल  $\frac{1}{20,000}$  औंस रिबोफ्लैविन की आवश्यकता होती है। इसके अच्छे स्रोत

हैं—दूध और बिना चर्बी के मांस।

शरीर के भीतर बी-विटामिन, प्रकिण्व (एन्जाइम) तंत्र के अंग के रूप में काम करते हैं। शरीर में जो रासायनिक परिवर्तन निरंतर होते रहते हैं लगभग उन सबके लिए प्रकिण्व उत्तरदायी हैं। जो भोजन हम करते हैं उसके कुछ भाग का उपयोग कर और उसे जला कर शरीर के लिए ऊर्जा उत्पन्न करने में बी-विटामिन विभिन्न भूमिकाएं अदा करते हैं। विटामिन सी या ऐस्कार्बिक अम्ल सबसे रहस्यपूर्ण विटामिनों में से एक है। हम जानते हैं कि नींबू जाति के फल, जैसे नारंगी और छोटा चकोतरा, इस विटामिन के अच्छे स्रोत हैं। हम यह भी जानते हैं कि विटामिन सी की कमी से स्कर्वी रोग हो जाता है जिससे मसूढ़े, दांत और छोटी रक्त-शिरायें प्रभावित होती हैं। परन्तु यह बात अब भी नहीं ज्ञात है कि ऐस्कार्बिक अम्ल शरीर में किस तरह काम करता है।

विटामिन डी 'धूप की विटामिन' के रूप में प्रसिद्ध है। स्वयं धूप में विटामिन डी नहीं होता है परन्तु धूप सेंकने से त्वचा का एक यौगिक विटामिन डी में परिवर्तित हो जाता है। इसीलिए इनका नाम धूप की विटामिन पड़ गया। कैल्शियम और फास्फेट जिस प्रक्रिया द्वारा हड्डी के निर्माण में भाग लेते हैं उसका नियंत्रण विटामिन डी द्वारा होता है। विटामिन डी की कमी से हड्डियों के परिवर्धन में बाधा पड़ती है और एक तरह की बीमारी (रिकेट्स) हो सकती है। विटामिन डी के अच्छे स्रोत हैं—मछलियों के तेल, मक्खन, अंडे की जर्दी।

कट जाने या खरोच लग जाने पर रक्त-स्राव होने की हालत में रक्त को जमाने में विटामिन-क महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यह विटामिन हरी पत्तीदार सब्जियों में पाया जाता है और इसका आहार में होना आवश्यक नहीं है। यह प्रायः अंतर्द्वियों में जीवाणुओं द्वारा बना लिया जाता है।

विटामिनों के विषय पढ़ते समय आपको चिन्ता हो सकती है कि शायद आपको विभिन्न विटामिनों की पर्याप्त मात्रा न मिल रही हो। परन्तु सच्चाई यह है कि यदि आप अच्छी तरह से संतुलित भोजन करें तो आपको वे सभी विटामिन मिल जायेंगी जिनकी शरीर को आवश्यकता होती है। हमें विटामिनों की इतनी कम मात्रा की आवश्यकता होती है कि यदि एक पूरे दिन के लिए आवश्यक सारे विटामिनों की गोली बनायें तो वह मटर से भी छोटी होगी। फिर भी, अपने को स्वस्थ रखने के लिए विटामिनों की यह अत्यल्प मात्रा आपके लिए अनिवार्य है।





## विषाणु (वाइरस)

आपके माता-पिता आपको यह विश्वास दिलाना चाहेंगे कि वे जब बच्चे थे तब वाइरसों जैसी कोई चीज नहीं थी। वे कहते हैं, 'आजकल जब कोई बीमार पड़ता है तब कारण विषाणु (वाइरस) बतलाया जाता है। परन्तु जब हम बच्चे थे तब विषाणु हमें तंग नहीं करते थे।' उनकी बात सुनकर ऐसा लगता है मानो विषाणुओं का आविष्कार दस-बीस वर्ष पूर्व ही हुआ हो। परन्तु विषाणु तो तभी से इस पृथ्वी पर हैं जब से मानव। कुछ वैज्ञानिकों का मत तो यह है कि पृथ्वी पर जीवन का प्रथम अस्तित्व वाइरसों के रूप में था। परन्तु केवल सत्तर वर्ष पूर्व वे पहचाने जा सके और केवल पिछले तीस वर्षों के भीतर यह समझने में वास्तविक प्रगति हो सकी है कि वाइरस क्या हैं और वे किस प्रकार कार्य करते हैं।

आज हम जानते हैं कि मनुष्य की सौ से अधिक बीमारियों के लिए वाइरसों के आक्रमण उत्तरदायी हैं। इन बीमारियों में कुछ ये हैं—छोटी माता (काकड़ा), (पागल कुत्ते से) रेबीज, पोलियो (बाल पक्षाघात), चेचक, खसरा, पम्प्स (कनपेड़े), फ्लू और जुकाम। वास्तव में, आधुनिक मनुष्य को होनेवाली कुल बीमारियों में से आधी से अधिक वाइरसों से उत्पन्न मानी जाती है। आधुनिक अनुसंधान ने यह भी संकेत दिया है कि वाइरस और कैंसर में कुछ सम्बन्ध है परन्तु अभी तक यह सम्बन्ध स्पष्ट सिद्ध नहीं किया जा सका है।

वाइरस विद्या अर्थात् वाइरसों के अध्ययन के जनक एक डच वैज्ञानिक, मार्टिनस विलेम बिजर्क (1851-1931) थे जो प्रतिभाशाली मगर अप्रिय स्वभाव के थे। वे डेल्टा पॉलिटेक्निकल स्कूल में अध्यापक थे और वहां की प्रयोगशाला में उनका बहुत आतंक था। छात्रों के प्रति उनका व्यवहार कठोर और आलोचनात्मक था। उनके जीवनवृत्त से पता चलता है कि वे एकाकी और दुखी व्यक्ति थे। साथ ही वे स्थायी रूप से अविवाहित थे। कहा जाता है कि एक बार उन्होंने अपने एक सहायक को इसलिए बर्खास्त कर दिया क्योंकि उसने विवाह कर लिया था। क्रुद्ध होकर उन्होंने कहा था, 'वैज्ञानिक को विवाह से क्या प्रयोजन?' वास्तव में वे इतने स्त्री-विरोधी थे कि किवदन्ती के अनुसार, वे अपना भाषण इस

तरह आरम्भ करते थे—

‘भद्र पुरुषो और महिलाओ !’

अपने सेवा-काल के आरम्भ में ही तम्बाकू के चित्ती-रोग में उनकी दिलचस्पी हो गई । इस रोग का आक्रमण होने पर तम्बाकू की पत्तियों पर चित्रवर्ण खरोचें-सी बन जाती थीं । इस रोग में दिलचस्पी के कारण बिज्रिक का प्रवेश वाइरसों की दुनिया में हो गया जहां उन्होंने अपना शेष जीवन बिताया ।

अगले बीस वर्षों में रह-रहकर तम्बाकू के चित्ती-रोग के कारण का पता लगाने के प्रयत्न का नेतृत्व करते रहे । उन्होंने यह मालूम करने की कोशिश की कि क्या यह रोग जीवाणुओं के कारण होता है ? जितने भी प्रयोग किए गये वे सब जीवाणुओं की उपस्थिति सिद्ध करने में असफल रहे । उनकी अनुसंधान-योजना के एक भाग का उद्देश्य था रोग उत्पन्न करने वाली वस्तु के आकार को मालूम करना । रोग-ग्रस्त कुछ पत्तियों को उन्होंने पीसा, उन्हें निचोड़कर रस निकाला और इस रस को उन्होंने छाना । फिल्टर (छननी) के छिद्र इतने सूक्ष्म थे कि जीवाणुओं के आकार की चीज भी उनमें से होकर नहीं निकल सकती थी । उन्होंने इस छने हुए द्रव का सूक्ष्मदर्शी से निरीक्षण किया । यह स्वच्छ था । फिर भी, जब वह तम्बाकू के स्वस्थ पौधों पर छिड़का गया तब वे शीघ्र ही चित्ती-रोग से ग्रस्त हो गये । जीवाणु से छोटी होकर भी रोग पैदा करने वाली यह कौन-सी वस्तु थी ? क्या यह कोई द्रव-विष था ? नहीं । कोई भी विष अपना प्रजनन उस तरह नहीं कर सकता था, जिस तरह यह वस्तु करती थी । यह पदार्थ पत्तियों पर फैलने और अपनी वृद्धि करने में समर्थ था और इसका नवनिर्मित स्वरूप भी स्वस्थ पत्तियों को संक्रमित करने में समर्थ था ।

बहुत प्रयोग और सोच-विचार के बाद बिज्रिक ने 1898 में रिपोर्ट दी कि एक ‘जीवित छूतवाला द्रव’ तम्बाकू के चित्ती-रोग का कारण है । उन्होंने उसे विषाणु (वाइरस) नाम दिया । चूंकि यह विषाणु फिल्टर से होकर निकल जाता था अतः यह छाना जा सकने वाला विषाणु कहलाया ।

बिज्रिक प्रायः वाद-विवाद में उलझे रहते थे और विषाणु-विषयक अपनी रिपोर्ट के कारण भी वे एक विवाद में पड़ गये । ऐसा प्रतीत होता है कि एक रूसी वैज्ञानिक, मित्री इवानोस्की ने यह दावा किया कि उन्हीं प्रयोगों को बिज्रिक से पहले करने का श्रेय उसे मिलना चाहिए । अप्रत्याशित विनय के साथ बिज्रिक ने स्वीकार कर लिया कि इवानोस्की ने ही सबसे पहले विषाणु का पता लगाया था ।

परन्तु आजकल बिज्रिक को प्रथम विषाणु (वाइरस) विज्ञानी होने का श्रेय दिया जाता है । यद्यपि इवानोस्की ने इन प्रयोगों को कुछ वर्ष पूर्व किया था फिर भी यह श्रेय बिज्रिक को ही प्राप्त है कि उसने विषाणुओं के वास्तविक महत्त्व को

समझा। उसे मालूम था कि उसने एक ऐसे पदार्थ का पता लगाया है जो तम्बाकू का चित्ती-रोग फैला सकता है। तब तक ऐसा विश्वास था कि सब प्रकार के जीवन का आधार कोशिका है। बिज्रिक ने साहस के साथ सुझाव दिया कि यह पदार्थ जीवनयुक्त है लेकिन उसमें कोशिका जैसी रचना नहीं है। उसे मालूम था कि कोशिका जितनी बड़ी कोई भी वस्तु उसके फिल्टर में से नहीं गुजर सकती थी। उसने कहा कि यह असम्भव नहीं कि कोई वस्तु जीवनयुक्त हो, फिर भी कोशिका-रहित हो। इसीलिए बिज्रिक ने तम्बाकू के चित्ती-रोग को उत्पन्न करने वाले पदार्थ को 'जीवित द्रव' कहा था।

परन्तु वास्तव में विषाणु है क्या? क्या यह कोई रासायनिक द्रव है जो जीवन-युक्त है? या यह बिना कोशिका वाली कोई जीवित वस्तु है? विषाणु नामक इस रहस्यपूर्ण पदार्थ की वास्तविकता मालूम करने के लिए वैज्ञानिक जुट गये।

वेन्डेल स्टैनले (जन्म 1904) उन प्रमुख वैज्ञानिक जासूसों में से एक थे जिन्होंने विषाणु का रहस्य उद्घाटन करने में योगदान दिया। युवावस्था में ऐसा प्रतीत होता था कि वे फुटबाल के खिलाड़ी बनेंगे। वे अर्लहम कॉलेज की फुटबाल टीम के कैप्टेन थे और 1925 में उन्होंने इंडियाना के अखिल-राज्य-टीम का संगठन किया था। उनकी महत्वाकांक्षा फुटबाल का शिक्षक बनने की थी।

1926 की वसंत ऋतु में एक दिन उनके कॉलेज के रसायन शास्त्र के प्रोफेसर ने इलिनायस विश्वविद्यालय चलने के लिए उनसे कहा। फुटबाल के बहुत बड़े खिलाड़ी रेड ग्रेन्ज वहां के छात्र थे। उनसे मिलने की आशा से स्टैनले इलिनायस गए। परन्तु वहां जाने पर उन्हें रसायन शास्त्र के एक प्रोफेसर से बात करने का अवसर मिला। इस बातचीत से तथा रसायन शास्त्र के भवन में घूमकर वे इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने उसी ग्रीष्म ऋतु में इलिनायस विश्वविद्यालय के रसायन शास्त्र के स्नातक कोर्स में नाम लिखा लिया।

रसायन शास्त्र के एक प्रतिभाशाली छात्र के रूप में विख्यात होने पर वे शीघ्र ही अपने फुटबाल के दिनों को भूल गए। 1929 में, जब उनका विवाह रसायन की एक छात्रा से हो गया तो उनका कुंवारापन भी समाप्त हो गया। उनका सितारा बुलन्दी पर था। उन्हें एक सर्वोच्च सम्मान मिला—न्यूयार्क सिटी के महान् राक्फेलर संस्थान में अनुसंधान करने का उन्हें अवसर मिला। जब उनके परिवार में वृद्धि होने लगी तब उन्होंने शहर से बाहर, प्रिन्स्टन (न्यू जर्सी) के राक्फेलर संयंत्र प्रयोगशाला में भेजे जाने की प्रार्थना की। वहां जाकर उन्होंने विषाणु के रासायनिक पक्ष का आजीवन अध्ययन आरम्भ कर दिया।

उनका प्रथम विचार था कि वे अध्ययन के लिए किसी एक विषाणु को छांट लें। उन्होंने इसके लिए तम्बाकू के चित्ती-रोग के विषाणु को चुना क्योंकि उसको



प्राप्त करना और संवर्धित करना आसान था। वह एक स्थायी विषाणु था और प्रयोगों के दौरान उसको नष्ट करना कठिन था और चूंकि वह एक पौधे को प्रभावित करने वाला विषाणु था अतः प्रयोग के लिए प्राणियों के उपयोग की आवश्यकता नहीं थी। उनके अगले तीन वर्ष के अत्यन्त श्रमपूर्ण कार्य का यह आरंभ था। उनका उद्देश्य था, 'रासायनिक विधियों से इस वस्तु को शुद्ध करना, गाढ़ा करना और अंत में पृथक् कर लेना।'

उन्होंने तम्बाकू के पौधों का रोपण किया और उनकी वृद्धि का अवलोकन किया। पौधे अभी छोटे ही थे कि उन्होंने चित्ती-रोग से उन्हें संक्रमित कर दिया। तब पौधों को काटा गया, ठंडा किया गया और मांस पीसने की चक्की में पीसा गया। बाहर जो लुगदी आयी उसे निचोड़कर रस प्राप्त किया; उन्हें यह तो पता ही था कि इसमें विषाणु थे। तब उन्होंने इस रस पर सब प्रकार की रासायनिक क्रियाएं कीं। प्रत्येक क्रिया के बाद उन्हें जांच करनी पड़ती थी। उन्हें मालूम करना पड़ता था कि क्या रस में अब भी विषाणु हैं। क्या रस अब भी पत्तियों को संक्रमित कर सकता है या कि क्रिया के दौरान वह विषाणु से हाथ धो बैठा है?

तम्बाकू का रस अधिकाधिक शुद्ध होता गया और कई वर्ष तक स्टैनले उसका प्रेक्षण करते रहे। तब एक दिन उन्होंने द्रव पर एक नयी चमक देखी। उन्होंने सूक्ष्मदर्शी से उसका निरीक्षण किया। उन्होंने जो कुछ देखा, वह तम्बाकू के चित्ती-रोग के विषाणु के शुद्ध स्फटिक थे। अगले प्रयोगों से पता चला कि संक्रमित पत्तियों से प्राप्त मूल रस जितना संक्रमणकारी था उससे सौ गुना संक्रमणकारी ये स्फटिक थे। संक्रमित पत्तियों से विषाणु प्राप्त करने का जो उद्देश्य उन्होंने अपने सामने रखा था उसमें वे सफल हुए। लगभग एक टन रोग-ग्रस्त तम्बाकू की पत्तियों को पीसने, निचोड़ने, रगड़ने तथा दर्जनों रासायनिक क्रियाओं के बाद उन्होंने एक बड़े चम्मच से भी कम बारीक सफेद चूर्ण प्राप्त किया। उन्होंने अपने प्रयास का वर्णन संक्षेप में इस तरह किया है, 'थोड़ा-सा भाग्य और बहुत अच्छा रासायनिक कार्य—बहुत उच्च कोटि का नहीं—साथ ही उचित दृष्टिकोण—कठोर परिश्रम का संकल्प।' ऐसी सफलता के बाद भी ऐसी विनम्रता।

लक्ष्य प्राप्त हो चुका था। परन्तु उसकी सार्थकता का स्पष्टीकरण अभी बाकी था। स्टैनले ने यह विचार प्रकट किया कि ये स्फटिक प्रोटीन थे और निर्जीव रासायनिक अणु थे। (प्रोटीन बहुत बड़े अणु होते हैं और उनमें कार्बन, आक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन और कभी-कभी फास्फोरस और गंधक होते हैं।) क्या किसी ने कभी ऐसी बात सुनी थी? निर्जीव पदार्थ से संक्रमणशील बीमारी कैसे हो सकती थी?

जिस शुद्ध विषाणु को उन्होंने पृथक् किया था वह सैकड़ों अन्य रासायनिक द्रवों की तरह बोतल में रखा जा सकता था। फिर भी जब इस चित्ती-रोग के

विषाणु को तम्बाकू की पत्ती जैसी किसी जीवित वस्तु पर रखा जाता है तब वह सजीव हो जाता है। अर्थात् जब तक वह सजीव वस्तु पर रहता है तब तक उसकी वृद्धि होती है—उसकी संख्या बढ़ती है।

दुखदायी प्रश्न—विषाणु क्या है?—का उत्तर अभी तक नहीं मिला था। यह सजीव पदार्थ है या रासायनिक पदार्थ? वैज्ञानिक सजीव और निर्जीव को एक-दूसरे से वैसे ही भिन्न मानते आ रहे थे जैसे काले को सफेद से। अब विषाणु की प्राप्ति, शोधन और मापन से वे समझ गए कि दोनों के बीच में एक स्लेटी रंग की पट्टी है जो न काली है न सफेद।

1930वें दशक तक यह बात स्वीकार की जाती रही कि आकार की दृष्टि से भी बड़े से बड़े रासायनिक अणुओं (भले ही उनमें हजारों परमाणु हों) और सूक्ष्मतम जीवित वस्तुओं के बीच एक रिक्त स्थान है। नये और अधिक बारीक फिल्टरों (छननियों) द्वारा वैज्ञानिक विषाणुओं को मापने में समर्थ हुए। सर्वप्रथम इन्फ्लुएंजा के विषाणु को मापा गया कि उसका आकार लगभग 100 मिलिमाइक्रान है। (एक मिलिमाइक्रान लगभग  $\frac{1}{25,00,000}$  इंच होता है।

बड़े से बड़े ज्ञात रासायनिक अणु का आकार लगभग 22 मिलिमाइक्रान है। परन्तु सूक्ष्मतम जीवित वस्तु का आकार लगभग 150 मिलिमाइक्रान है। फिल्टरों और नव आविष्कृत इलेक्ट्रान-सूक्ष्मदर्शी में जैसे-जैसे अधिकाधिक विषाणुओं को मापा गया वैसे-वैसे स्थिति स्पष्ट होने लगी। 16 मिलिमाइक्रान से लेकर 300 मिलिमाइक्रान तक आकार के विषाणु सामने आए। इस प्रकार बड़े-से-बड़े अणुओं और सूक्ष्मतम सजीव वस्तुओं के बीच आकार की दृष्टि से जो खाई थी उसे विषाणुओं ने पाट ही नहीं दिया बल्कि उसके दोनों किनारों पर भी वे फैल गये।

विषाणु क्या है; इस पहेली का उत्तर यही है कि वह सजीव भी है, निर्जीव भी है। जीवित कोशिका में वह सजीव पदार्थ की तरह व्यवहार करता है। परन्तु बोतल के भीतर वह एक निर्जीव रासायनिक द्रव के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अब हम ऐसा अनुभव करते हैं कि विषाणु आकार की दृष्टि से सजीव और निर्जीव वस्तुओं के बीच की खाई को ही नहीं पाटते हैं बल्कि वास्तव में वे जीवन और निर्जीवता को मिलाने वाले सेतु हैं।

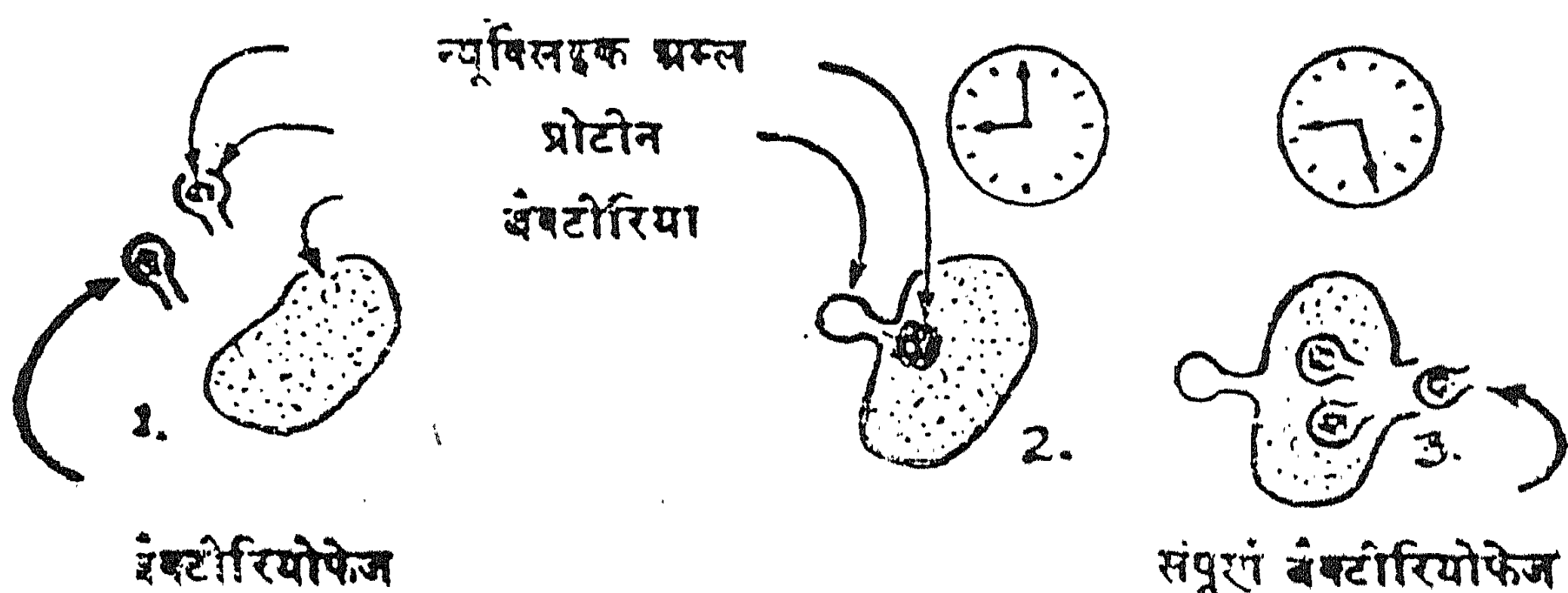
दो वर्षों के भीतर ही कुछ विषाणु-शास्त्रियों ने स्टैनले के अनुसंधान में दोष निकालने शुरू कर दिए। दो अंग्रेज वैज्ञानिकों, फ्रेडरिक सी० बाडन और नार्मन डब्ल्यू० पिरी को तम्बाकू के चित्तीरोग-विषाणु में कुछ ऐसी चीज मिली जो स्टैनले से छूट गई थी। उन्होंने देखा कि यद्यपि विषाणु का 94 प्रतिशत भाग प्रोटीन था लेकिन उसका 6 प्रतिशत न्यूक्लिइक अम्ल था। यह पदार्थ उस पदार्थ से मिलता-जुलता था जो कोशिका के केन्द्रक (न्यूक्लियस) में पाया जाता है।

इस विषाणु में न्यूक्लिडिक अम्ल की भूमिका का सूक्ष्म अध्ययन, एल्फ्रेड डी० हर्शे तथा मार्या चेज ने कोल्ड स्पिंग हार्बर (न्यूयार्क) की कार्नेगी संस्थान प्रयोगशाला में किया। 1952 में वे बैक्टीरियोफेज का अध्ययन कर रहे थे। यह वह विषाणु है जो जीवाणुओं पर आक्रमण करता रहता है, पौधों पर नहीं जैसा कि तम्बाकू के चित्ती-रोग का विषाणु करता है। उन्होंने जीवाणुओं पर विषाणु के आक्रमण की यथार्थ प्रक्रिया मालूम करने के लिए एक आकर्षक प्रयोग आयोजित किया।

उन्होंने बैक्टीरियोफेज की दो टोलियां संवर्धित कीं। उन्हें मालूम था कि फास्फोरस विषाणु के न्यूक्लिडिक अम्ल में ही पाया जा सकता है और गंधक केवल उसके प्रोटीन में। बैक्टीरियोफेज की एक टोली को रेडियोधर्मी फास्फोरस खिलाया गया और दूसरी को रेडियोधर्मी गंधक। (किसी तत्त्व को रेडियोधर्मी बनाना परमाणु वैज्ञानिकों की एक नवीन सफलता थी। रेडियोधर्मी तत्त्व निरन्तर ऐसी किरणें उत्सर्जित करता रहता है जिनका पता गाइगर-गणक जैसे उपकरणों से चल सकता है। (अध्याय 10 देखिए।)

इस प्रकार न्यूक्लिडिक अम्ल और प्रोटीन दोनों पर जो रेडियोधर्मी लेबल लगे थे उनके कारण कार्य में संलग्न विषाणु का 'अवलोकन' करना सम्भव हो सका। विषाणु द्वारा जीवाणुओं पर आक्रमण के दौरान प्रोटीन और न्यूक्लिडिक अम्ल जो भूमिकाएं अदा करते थे, उन्हें हर्शे और चेज ने मालूम कर लिया।

उनके द्वारा मालूम किए गये तथ्यों की कल्पना करने के लिए मान लीजिए कि बैक्टीरियोफेज किसी दवाई से भरा एक ड्रापर है। ड्रापर के कांच की नली और रबड़ वाले भाग प्रोटीन हैं। उसके भीतर जो दवाई है वह न्यूक्लिडिक अम्ल है। ड्रापर का मुंह जीवाणु की दीवार से जुड़ जाता है और लगभग एक इंच के करोड़वें भाग के बराबर चौड़ा छेद करता है। तब (रेडियोधर्मी फास्फोरस के लेबल से युक्त) न्यूक्लिडिक अम्ल कोशिका में प्रवाहित हो जाता है। खाली ड्रापर (लेबल से युक्त गंधक वाली प्रोटीन) बाहर रहता है।



लगभग तीस मिनट तक कुछ होता हुआ प्रतीत नहीं होता। तब धमाका— जीवाणु बिखर जाता है और उसमें से 200 से 300 तक नये विषाणु निकल आते हैं और उनमें से प्रत्येक, आक्रमण करने के लिए नये जीवाणुओं की तलाश करता है।

इस सबकी कल्पना से भी आश्चर्य होता है। यह बात और भी आश्चर्य की है कि यद्यपि जीवाणुओं में केवल न्यूक्लिइक अम्ल प्रवेश करता है और प्रोटीन बाहर रहता है फिर भी नये विषाणुओं में न्यूक्लिइक अम्ल और प्रोटीन आवरण दोनों होते हैं ! ऐसा लगता है कि यह रासायनिक द्रव्य, न्यूक्लिइक अम्ल, जीवाणुओं द्वारा न्यूक्लिइक अम्ल और प्रोटीन दोनों को बनवाने में समर्थ है।

आश्चर्य नहीं कि महान् विषाणुशास्त्री देन्डेल स्टैनले ने कहा था, 'न्यूक्लिइक अम्ल की संरचना हमारे सामने आज सबसे बड़ी वैज्ञानिक समस्या है।' विषाणु का न्यूक्लिइक अम्ल किस तरह केवल अपना ही नहीं बल्कि विषाणु के प्रोटीन-आवरण का भी प्रजनन करता है ?

इस प्रकार हमारी विषाणु-गाथा का अन्त एक प्रश्न के रूप में होता है। बिजर्रिक के 'छूतवाले सजीव द्रव' से आरम्भ कर स्टैनले द्वारा तम्बाकू के चित्ती-रोग विषाणु के स्फटिकीकरण से होते हुए हम हर्श और चेज के विषाणु-क्रिया के अध्ययन तक पहुंचे हैं। इन तथा अन्य बहुत से वैज्ञानिकों ने विषाणु से सम्बन्धित बहुत से प्रश्नों का उत्तर मालूम किया है। परन्तु जैसा कि विज्ञान के क्षेत्र में प्रायः होता है, इन उत्तरों ने नये प्रश्नों को जन्म दिया है। विषाणु के अध्ययन के फलस्वरूप जो सम्भवतः सर्वाधिक दिलचस्प प्रश्न उठा है, उसका उत्तर हम अगले अध्याय में प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे। यह प्रश्न है—न्यूक्लिइक अम्ल क्या है और वह किस तरह कार्य करता है ?





## डी० एन० ए० : जीवन का मुख्य आयोजक

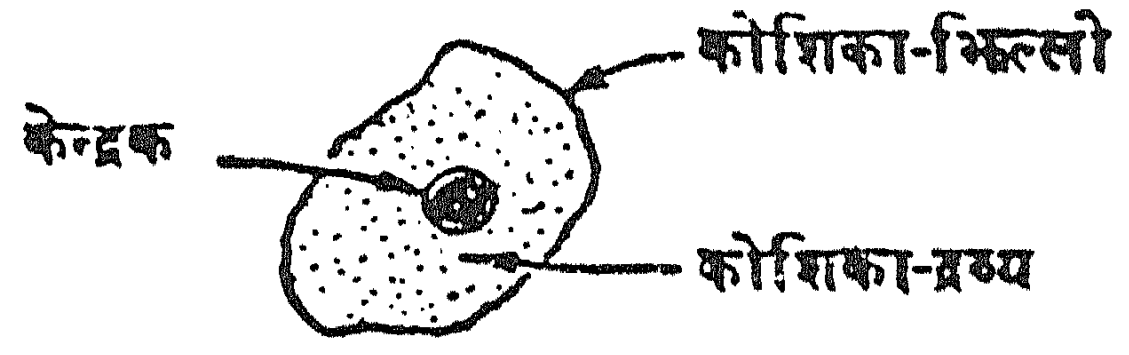
अधिकांश जासूसी कहानियों में एक जैसा कथानक होता है। कहानी के आरम्भ में ही सभी पात्रों का परिचय दे दिया जाता है। प्रमुख पात्रों में से एक की चर्चा काफी देर तक नहीं होती। बाद में यह पात्र धीरे-धीरे अधिकाधिक महत्वपूर्ण होने लगता है। कहानी का अन्त होते-होते यह स्पष्ट हो जाता है कि कहानी के अन्तर्गत जो रहस्यपूर्ण घटनाएं घटित हुई हैं उनके लिए यही पात्र उत्तरदायी है।

डी० एन० ए० की शानदार खोज एक जासूसी कहानी जैसी है। यह न्यूक्लिक अम्ल-जातीय और एक आनुवंशिकता की कुंजी है। इन दोनों कहानियों में मुख्य अंतर यह है कि एक में मुख्य हत्यारे की खोज होती है और दूसरे में जीवन के मुख्य आयोजक की खोज हुई है।

आइये, पहले हम अपने छलिया नायक से मिलें। हमारे मुख्य पात्र डी० एन० ए० को 1869 में एक स्विस् वैज्ञानिक फ्रेडरिक मिस्चर ने एक कोशिका के केन्द्रक में छिपकर बैठे पकड़ लिया था। मिस्चर, सब सजीव वस्तुओं की आधारभूत इकाई, कोशिका का अध्ययन कर रहे थे। उनकी दिलचस्पी विशेष रूप से कोशिका के न्यूक्लियस में थी; यह कोशिका का वह भाग था जिसे वृद्धि और प्रजनन से संबंधित समझा जाता था।

प्रत्येक मनुष्य या जानवर की कोशिका में तीन मुख्य भाग होते हैं। सबसे बाहर एक घेरा या पतली बाहरी दीवार होती है जिसे कोशिका-झिल्ली कहते हैं। कोशिका के भीतर एक छोटा-सा गोल पिण्ड होता है जिसे केन्द्रक (न्यूक्लियस) कहते हैं। कोशिका का शेष भाग (केन्द्रक के बाहर और झिल्ली के भीतर) एक पदार्थ से भरा होता है जिसे कोशिका-द्रव (साइटोप्लाज्म) कहते हैं।

केन्द्रक के भीतर द्रव्य के धागे होते हैं जिन्हें क्रोमोसोम (गुणसूत्र) कहते हैं। प्रजनन की प्रक्रिया में क्रोमोसोम प्रमुख भूमिका अदा करते हैं। प्रजनन के दौरान प्रत्येक क्रोमोसोम दो क्रोमोसोमों में परिवर्तित हो जाता है जो पृथक् हो जाते हैं।



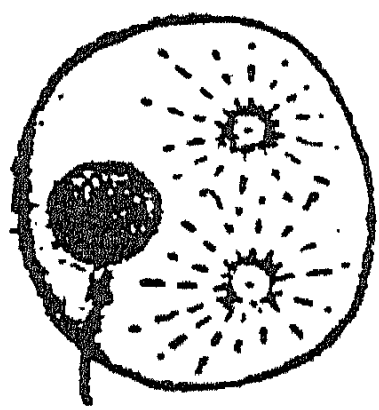
प्राणी-कोशिका

कोशिका दो कोशिकाओं में विभक्त हो जाती है जिनमें एक जैसे क्रोमोसोम होते हैं।

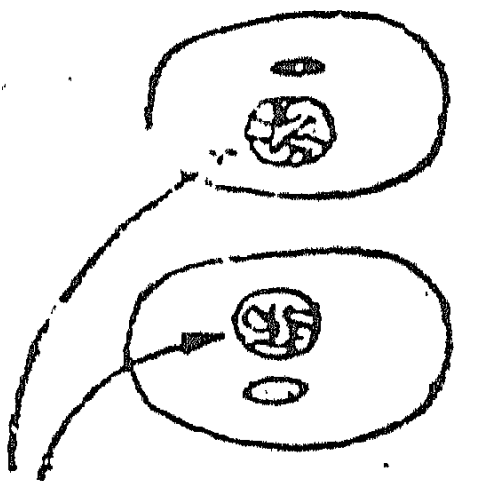
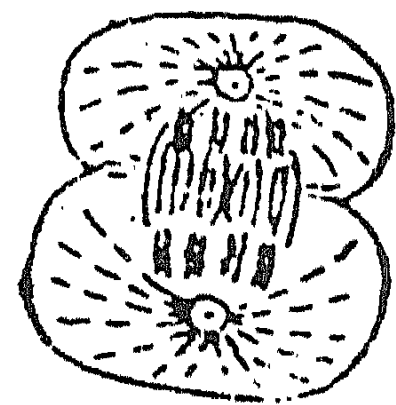
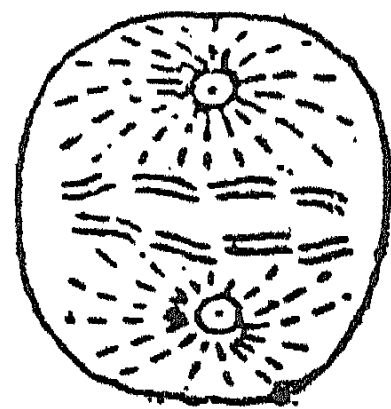
अपने प्रयोगों के लिए मिस्चर ने मवाद (पीप) को चुना जो रक्त की सफेद कोशिकाओं से निर्मित होता है। पास के एक चिकित्सालय से वे प्रतिदिन मवाद लगी हुई पट्टियां प्राप्त करते थे। विभिन्न अम्लीय घोलों की सहायता से केन्द्रकों को पृथक् करने के जितने भी प्रयत्न किए गये वे सब असफल सिद्ध हुए। सफलतम प्रयोगों में भी उन्हें केन्द्रकसामग्री इतनी कम मिली कि उसका विश्लेषण करके यह मालूम नहीं किया जा सकता था कि उसकी रासायनिक संरचना क्या है।

रक्त की सफेद कोशिका के द्रव से केन्द्रक को पृथक् करने का एक उपाय मिस्चर को सूझ गया। उन्हें मालूम था कि कोशिका-द्रव, प्रोटीन होता है। उन्हें यह भी मालूम था कि पेप्सिन, जो आमाशय के प्रकिण्वों में से एक है, प्रोटीन को पचाता है। अतः उन्होंने एक सुअर के आमाशय से कुछ पेप्सिन प्राप्त किया और उसे मवाद-कोशिकाओं के साथ मिला दिया। कुछ ही घंटों के भीतर स्वच्छ पीले द्रव में से एक बारीक स्लेटी चूर्ण नीचे बैठ गया। मिस्चर ने सूक्ष्मदर्शी से उसका निरीक्षण किया। स्लेटी चूरा मवाद-कोशिकाओं के केन्द्रकों का पुंज था। पेप्सिन ने प्रोटीन को विघटित कर दिया था और केन्द्रक को 'पूर्णतः नंगा' कर दिया था।

विभजनशील कोशिका



गुणसूत्र

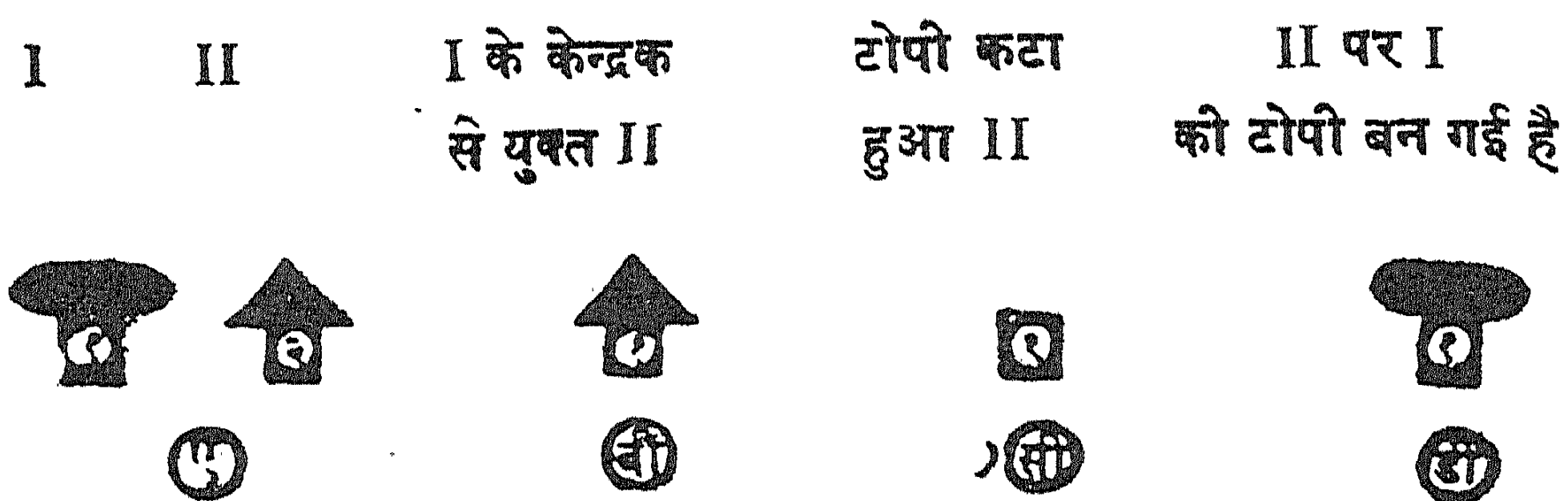


दो नयी कोशिकाओं में गुणसूत्र

मिस्चर ने केन्द्रकों का विश्लेषण किया। उन्होंने पाया कि उनमें कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन के साथ-साथ नाइट्रोजन और गंधक थे तथा उनमें फास्फोरस की प्रचुर मात्रा थी। न्यूक्लिडस के भीतर पाए जाने वाले इस पदार्थ का नाम उन्होंने न्यूक्लिडन रखा। बाद में मालूम किया गया कि वह अम्ल है अतः उसका नाम बदल दिया गया और उसे न्यूक्लिडक अम्ल कहा गया।

कोशिका-विश्लेषण का कार्य जारी रहा, परन्तु संसार की सभी प्रयोगशालाओं में न्यूक्लिडक अम्ल, जो महत्वहीन-सा दिखाई देने वाला गोंद जैसा स्लेटी चूर्ण था, उपेक्षित पड़ा रहा। चालीस से भी अधिक वर्षों के बाद, 1931 में जर्मन जीवशास्त्री जोकिम हैमलिग की प्रयोगशाला में उसकी ओर फिर ध्यान दिया जाने लगा। वे एक छोटे से एककोशिक पौधे—ऐसीटबुलेरिया का अध्ययन कर रहे थे। यह पौधा छोटे कुरुरमुत्ता की शक्ल का होता है। प्रत्येक ऐसीटबुलेरिया में एक तना और एक टोपी होती है और प्रत्येक प्रकार के ऐसीटबुलेरिया की अपनी विशेष आकृति की टोपी होती है। यह मालूम था कि यदि किसी ऐसीटबुलेरिया की टोपी काट दी जाए तो पुनः उसी आकृति की टोपी बन जाती है।

हैमलिग ने अपने प्रयोग में एक प्रकार के ऐसीटबुलेरिया (प्रकार I) के तने के केन्द्रक का दूसरे प्रकार के ऐसे ऐसीटबुलेरिया (प्रकार II) के तने में रोपण किया जिसकी टोपी काटकर अलग कर दी गयी थी। प्रश्न था कि क्या रोपित केन्द्रक टोपी की आकृति को प्रभावित करेगा। उत्तर था—हां! प्रथम प्रकार (I) के ऐसीटबुलेरिया की टोपी दूसरे प्रकार (II) के ऐसीटबुलेरिया के ऊपर बन गई। यह इस बात का प्रथम प्रमाण था कि केन्द्रक और केवल केन्द्रक, प्रजनन क्रिया में लाक्षणिकों को संचारित करता है। केन्द्रक ही आनुवंशिकता का निर्धारण करता है।



ऐसीटबुलेरिया का प्रारूप

फिर भी, न्यूक्लिडक अम्ल पर धूल जमती ही रही। 1944 में यह धूल झाड़ दी गयी। न्यूयार्क के राकफेलर संस्थान में आस्वाल्ड टी० ऐवरी तथा अन्य वैज्ञानिक, कुछ समय पूर्व फ्रेड ग्रिफिथ द्वारा किए गए कुछ प्रयोगों की समीक्षा कर



रहे थे। ग्रिफिथ ने न्यूमोनिया उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं के दो भिन्न-भिन्न प्रभेदों पर शोधकार्य किया था। एक प्रभेद का आवरण सुरदरा और दूसरे प्रकार का चिकना था। इस प्रयोग-विशेष के लिए ग्रिफिथ ने खुरदरे आवरण वाले कुछ ऐसे जीवाणुओं का उपयोग किया था जो इतने कमजोर बना दिए गए थे कि वे न्यूमोनिया उत्पन्न नहीं कर सकते थे। उनके साथ उन्होंने चिकने खोल वाले बहुत से मृत जीवाणुओं का उपयोग किया था। उन्होंने दोनों प्रभेदों का इन्जेक्शन एक चूहे को दिया। चूंकि खुरदरे बहुत कमजोर थे और चिकने मृत थे अतः उनका अनुमान था कि कुछ नहीं होगा। परन्तु उनके अनुमान के विपरीत, चूहे को न्यूमोनिया हो ही गया और उसके रक्त का परीक्षण किया गया तो उसमें जीवित चिकने जीवाणु भरे पड़े थे।

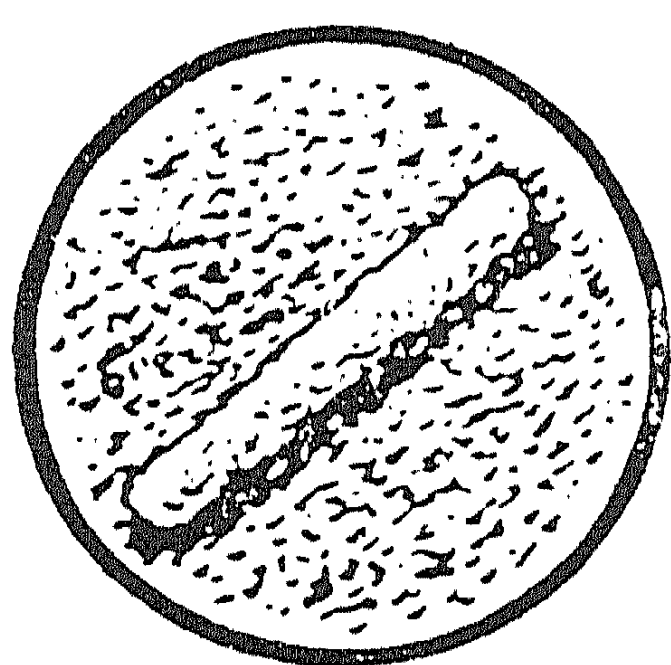
राकफेलर संस्थान के वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला कि निश्चय ही कोई पदार्थ है—रूपान्तर करने वाला पदार्थ—जो खुरदरे कमजोर जीवाणुओं और चिकने मृत जीवाणुओं को जीवित चिकने जीवाणुओं में परिवर्तित कर सकता है। जीवित चूहों के बजाय परीक्षण-नलियों का उपयोग करके ऐवरी ने दोनों प्रकार के जीवाणुओं पर कई रासायनिक परीक्षण किए। अंत में रूपान्तरकारी पदार्थ को पृथक् कर लिया गया। वह न्यूमोनिया के चिकने मृत जीवाणुओं से आया था। वह पदार्थ खुरदरे जीवाणुओं को चिकने जीवाणु बनाने का निर्देश देने की क्षमता रखता था। आप संभवतः अनुमान लगा सकते हैं कि वह पदार्थ क्या था। यह हमारा चिर-उपेक्षित नायक—न्यूक्लिडिक अम्ल—था। मृत चिकने जीवाणुओं का न्यूक्लिडिक अम्ल, खुरदरे जीवाणुओं की प्रजनन-क्रिया का भार किसी न किसी तरह अपने ऊपर ले लेने की क्षमता रखता था। वह खुरदरे जीवाणुओं को यह निर्देश दे सकता था कि वे मूल मृत चिकने जीवाणुओं के बिल्कुल समान चिकने जीवाणु बनावें।

बाद में एक अद्भुत प्रयोग में न्यूक्लिडिक अम्ल का अध्ययन किया गया और उसकी प्रकृति पर एक नया प्रकाश पड़ा। यह प्रयोग मार्च 1955 में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय-स्थित वेन्डेल स्टैनले की विषाणु प्रयोगशाला में किया गया था। प्रयोगशाला के एक सबसे प्रतिभाशाली वैज्ञानिक, हीन्ज फ्रैन्केल-कोनरेट (जन्म 1910), ने अपने सामने यह लक्ष्य रखा कि वे तम्बाकू के चित्ती-रोग-विषाणु को विखण्डित करेंगे, उसके उस भाग को मालूम करेंगे जो प्रजनन और वृद्धि के लिए उत्तरदायी है और फिर विषाणु को पुनः संश्लेषित करने का प्रयत्न करेंगे।

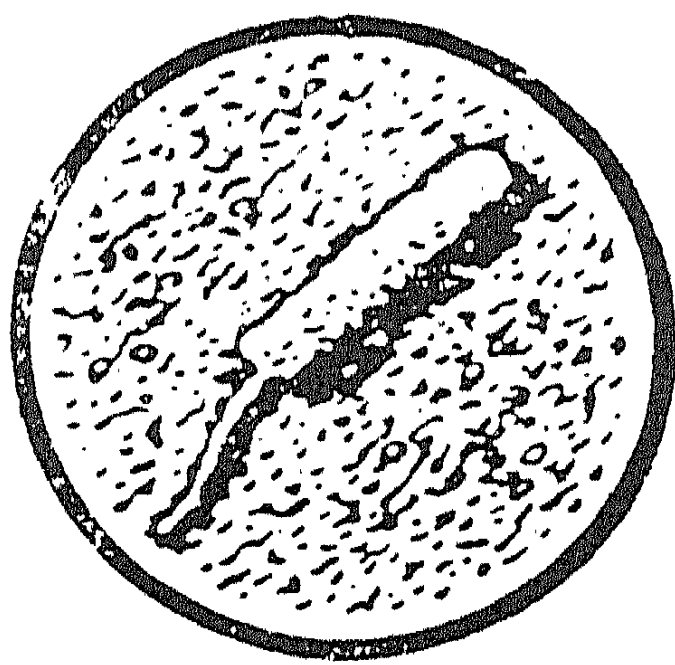
इस समय तक अच्छी तरह मालूम हो चुका था कि सब विषाणुओं में प्रोटीन का खोल होता है और न्यूक्लिडिक अम्ल वाला केन्द्रक। जिस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करना था वह यह था—वाइरस का कौन-सा भाग, न्यूक्लिडिक अम्ल या प्रोटीन, विषाणु की वृद्धि और प्रजनन के लिए उत्तरदायी है। जैसा कि फ्रैन्केल कोनरेट ने

स्वयं स्वीकार किया है, उनका विश्वास था कि विषाणु का क्रियाशील भाग न्यूक्लिक अम्ल नहीं बल्कि प्रोटीन है। उन्होंने कहा था, 'मुझे आशा थी कि प्रोटीन ही निर्धारक पदार्थ है। न्यूक्लिक अम्ल को अधिक महत्त्व देना मेरी व्यक्तिगत प्रवृत्ति के विरुद्ध था।' फिर भी उन्होंने रसायन शास्त्र की अपनी सारी योग्यता सत्य का पता लगाने में लगा दी।

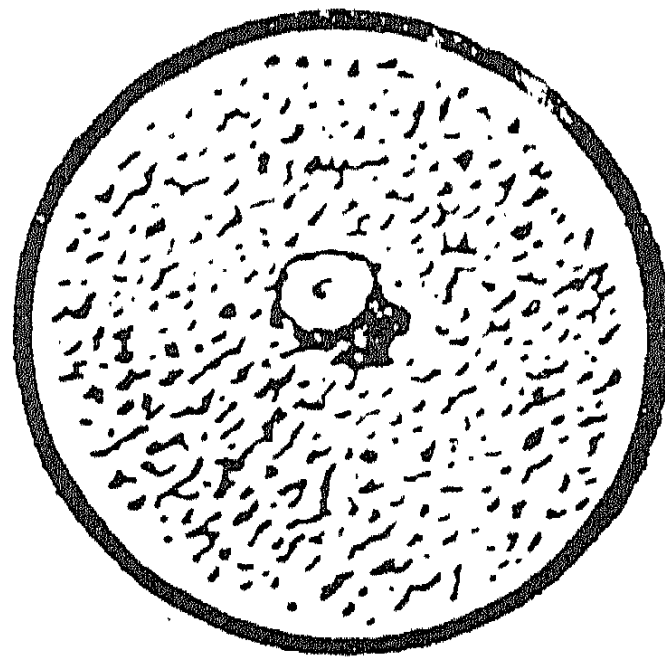
प्रोटीन घोल के पृष्ठ को विघटित करने के लिए उन्होंने घर के एक सामान्य प्रक्षालक का भिगोने वाली वस्तु के रूप में उपयोग किया। इस उपाय से वे तम्बाकू



तम्बाकू का चित्ती-रोग  
(1,50,000) गुना  
वर्द्धित रूप



न्यूक्लिक अम्ल से मुक्त  
प्रोटीन का भाग



प्रोटीन का छिद्र जिसमें  
न्यूक्लिक अम्ल था

के चित्ती-रोग-विषाणु के न्यूक्लिक अम्ल के साथ मृदु समाक्षार सोडियम कार्बोनेट को मिलाकर तम्बाकू के चित्ती-रोग-विषाणु के एक-दूसरे दल को न्यूक्लिक अम्ल से रहित करने में समर्थ हो गए। यह क्रिया कहने में बहुत आसान प्रतीत होती है, परन्तु वास्तव में वह बहुत कठिन और सूक्ष्म थी। इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी से देखने पर एक तरफ तो उन्हें न्यूक्लिक अम्ल के पतले-से धागे दीख रहे थे और दूसरी ओर एक पृथक् समूह में प्रोटीन के खाली खोल। सचमुच यह प्रयोग इतनी सफाई से किया गया था कि वे उस खाली छिद्र को भी देख सके थे जिसमें पहले न्यूक्लिक अम्ल था।

फ्रैन्केल कोनरेट दोनों वस्तुओं के कुछ भाग को छत पर बने पादप-गृह में ले गए जहां तम्बाकू के पौधे उगे हुए थे। उन्होंने शुद्ध न्यूक्लिक अम्ल की थोड़ी-सी मात्रा को एक पौधे की पत्तियों पर रगड़ा और प्रोटीन के खाली खोलों को दूसरे पौधे की पत्तियों पर। उन्होंने सोचा कि उन दोनों में से किसी भी तम्बाकू के चित्ती-रोग-विषाणु की संक्रामक शक्ति होगी तो पत्तियां दागी हो जाएंगी। दूसरे दिन फ्रैन्केल कोनरेट दोनों पौधों को देखने के लिए पादप-गृह में दौड़े-दौड़े गये। परन्तु वहां कुछ भी नहीं हुआ था। उन्हें ऐसा लगा कि अपने तई न्यूक्लिक अम्ल और प्रोटीन दोनों में से कोई भी ऐसा सक्रिय पदार्थ नहीं है कि तम्बाकू का चित्ती-रोग फैला सके।

वास्तव में फ्रैंकेल कोनरेट ने जीवन को विखण्डित कर दिया था। अब यह प्रश्न उपस्थित हुआ—क्या वे उन दोनों निर्जीव भागों को पुनः जोड़कर विषाणु प्राप्त कर सकते हैं? उन्होंने विषाणुओं के एक दल के न्यूक्लिडिक अम्ल के साथ दूसरे दल के प्रोटीन खोलों को मिलाने का काम हाथ में लिया। कुछ मिनट बाद उनके एक सहयोगी ने देखा कि मिश्रण पर एक चमक प्रकट हो रही है। यह वही चमक थी जिसे बीस वर्ष पूर्व वेन्डेल स्टैनले ने तम्बाकू के चित्ती-रोग-विषाणु का शोधन और स्फटिकीकरण करते समय देखा था। चमक इस बात का संकेत थी कि तम्बाकू के चित्ती-रोग-विषाणु के पूर्ण कण उपस्थित थे। तो क्या वे वास्तव में तम्बाकू के चित्ती-रोग-विषाणु थे? क्या वे तम्बाकू की पत्तियों में रोग को संक्रमित कर सकेंगे?

शुक्रवार का दिन था। तम्बाकू के चित्ती-रोग के, 'पुनर्गठित' विषाणुओं की जांच करने के लिए वे पुनः पादप-गृह में गये। शनिवार को तो पौधों पर कुछ नहीं दिखायी दिया। रविवार के दिन पौधे बिल्कुल ठीक दिखायी दिये। परन्तु सोमवार की सुबह तक रोग के दाग प्रकट हो चुके थे। इससे सिद्ध हो गया कि संश्लिष्ट विषाणु, जिस उन्होंने प्रयोगशाला में संघटित किया था, तम्बाकू के चित्ती-रोग को फैलाने में समर्थ है।

अगले खोज-कार्य के दौरान फ्रैंकेल कोनरेट को न्यूक्लिडिक अम्ल के विषय में और भी अधिक जानकारी प्राप्त हुई। उन्होंने मालूम किया कि प्रोटीन खोल से अलग हो जाना पर वह बहुत नाजुक हो जाता है। वह तम्बाकू के पौधों को तभी संक्रमित कर सकता था यदि उसे पृथक्-कारण के तुरंत बाद पौधों पर रगड़ दिया जाए। अब सारी बात स्पष्ट हो गयी। प्रयोग के प्रथम भाग में न्यूक्लिडिक अम्ल पौधों को संक्रमित नहीं कर सका, उसका कारण यह था कि उसे पादप-गृह तक ले जाना में उन्होंने बहुत देर लगा दी थी।

यह परीक्षण जादू का खेल लगता था। तम्बाकू के चित्तीरोग-विषाणु को शुद्ध न्यूक्लिडिक अम्ल और शुद्ध प्रोटीन, दो भागों में अलग किया गया। आरम्भ में समझा गया कि इन क्षेत्रों में से कोई भी तम्बाकू का चित्तीरोग उत्पन्न नहीं कर सकता। परन्तु जब दोनों भागों को इस तरह मिलाया गया कि न्यूक्लिडिक अम्ल के रेशों के सिरे विभिन्न प्रोटीन खोलों में लग जाएं तब यह मिश्रण तम्बाकू की पत्तियों में चित्ती-रोग को संक्रमित करने में समर्थ हो गया। बाद में मालूम हुआ कि अकेला न्यूक्लिडिक अम्ल, प्रोटीन खोल से अलग होने पर भी, रोग उत्पन्न कर सकता है।

बहुत-सी जासूसी कहानियों का अंत अदालत में होता है। पूछ-ताछ और जिरह से कहानी की बहुत-सी गुप्त बातें प्रकट हो जाती हैं। आइये, देखें इस तरह की परीक्षा से न्यूक्लिडिक अम्ल के विषय में और कौन-सी बातें मालूम हुईं।



सबसे पहले, शीघ्र ही यह मालूम हो गया कि न्यूक्लिडिक अम्ल दो भाई हैं—डिआक्सीरिबो-न्यूक्लिडिक अम्ल और रिबो-न्यूक्लिडिक अम्ल। वे अपने नाम के आरम्भिक अक्षरों से प्रसिद्ध हैं—डी० एन० ए० और आर० एन० ए०। उन दोनों में कुछ भिन्नताये हैं जो आगे चलकर सामने आयेंगी।

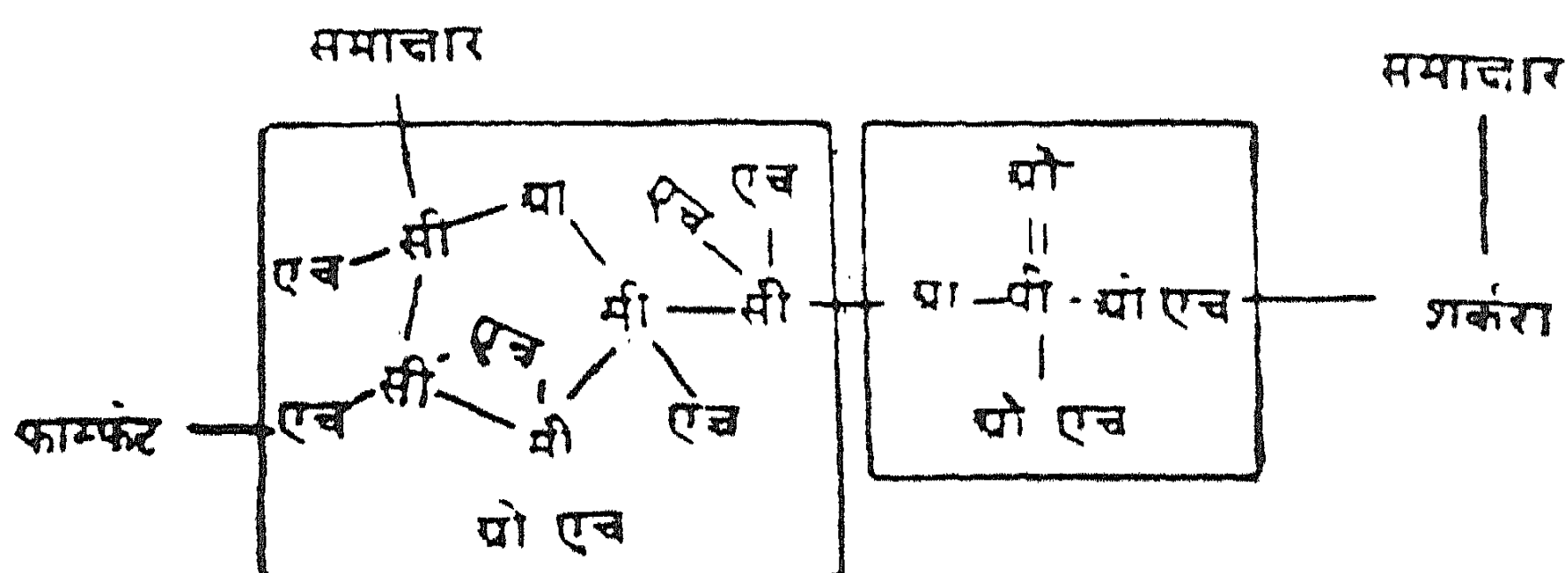
इस बात का ठीक-ठीक पता लग चुका था कि कोशिका के केन्द्रक में छिपा हुआ डी० एन० ए० का एक छोटा-सा रेशा, जीवित वस्तु के निर्माण के लिए आवश्यक सारी सूचना का संचयन कर फिर उसका संचरण करता है। हम जानते हैं कि एक बिल्कुल मामूली मकान के निर्माण के लिए भी कई पृष्ठ भरने वाले रेखा-चित्रों, विवरणों और मापों की आवश्यकता होती है। इन छोटे-से कणों में जीवित प्राणी जैसी जटिल वस्तु के निर्माण की योजनाएं कैसे निहित हो सकती हैं? यह बात असम्भव प्रतीत होती थी फिर भी सब प्रमाण यही संकेत करते थे कि डी० एन० ए० ही यह प्रयोजन सिद्ध करता है।

1953 तक वैज्ञानिकों ने डी० एन० ए० के विषय में काफी जानकारी प्राप्त कर ली थी। वे जान चुके थे कि डी० एन० ए० एक विशाल अणु है—सम्भवतः हाइड्रोजन के परमाणु से 60 लाख गुना भारी। वे जान गए थे कि उसमें डिआक्सी-रिबोज शर्करा के अणु तथा फास्फेट के अणु होते हैं जो एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। शर्कराओं और फास्फेटों के अतिरिक्त उसमें ऐडिनाइन, गुएनाइन, सिस्टासाइन और थायमाइन भी होते हैं। ये सब समाक्षार हैं अतः हाइड्रोजन के साथ रासायनिक विधि से सम्बन्धित होने में समर्थ हैं। इन छः भिन्न-भिन्न खण्डों की, जो आकृति और आकार में अपनी अलग-अलग विशेषता रखते हैं, डी० एन० ए० अणु में हजारों बार पुनरावृत्ति होती है।

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के दो वैज्ञानिक अन्य वैज्ञानिकों द्वारा प्राप्त की गयी जानकारी का संकलन करके 1953 में डी० एन० ए० अणु का मॉडल बनाने में सफल हो गए। इन दो वैज्ञानिकों में से एक थे एच० सी० क्रिक (जन्म 1916) जिन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटिश नौ-सेना विभाग के लिए सुरंगों के डिजाइन (नमूने) बनाए थे और दूसरे थे अमरीकी युवक जेम्स डेवे वाट्सन (जन्म 1928)। इन्होंने तार और धातु के टुकड़ों को लेकर काम आरम्भ किया। धातु का प्रत्येक टुकड़ा डी० एन० ए० अणु के एक अंग, जैसे शर्करा, फास्फेट या किसी समाक्षार का प्रतिनिधित्व करता था। तार का काम था विभिन्न टुकड़ों के बीच ठीक सम्बन्ध बनाए रखना। क्रिक और वाट्सन को बार-बार इस कठिनाई का सामना करना पड़ा कि जिस जगह वे धातु के टुकड़ों को रखते थे वहां किसी न किसी कारणवश ठीक नहीं बैठते थे। इससे उन्हें टुकड़ों को स्थानान्तरित करना पड़ता था। प्रत्येक असफलता से उन्हें डी० एन० ए० के भीतर अणुओं की व्यवस्था को समझने की समस्या के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त हुई। उन्होंने महसूस



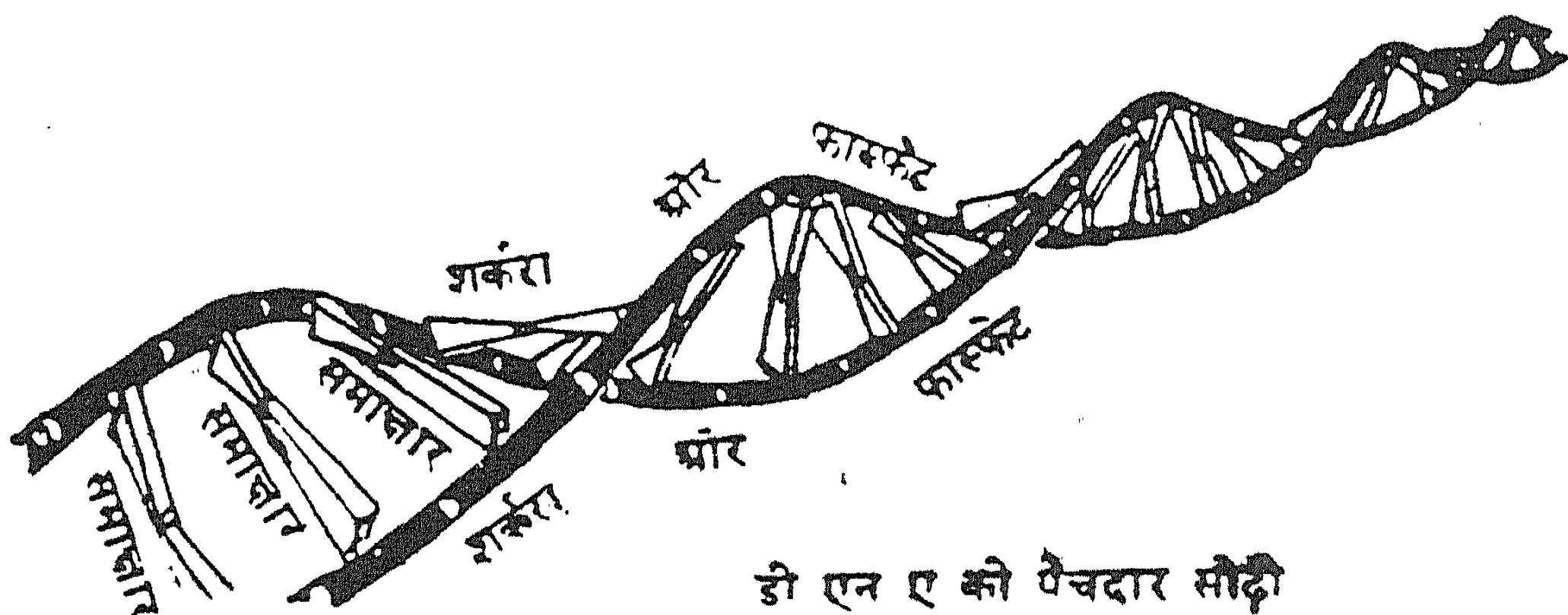
क्रिया कि सही समाधान केवल एक हो सकता है अर्थात् केवल एक माँडल ठीक हो सकता है ।



## डिआक्सीरिबोज शर्करा अणु

फास्फेट अण

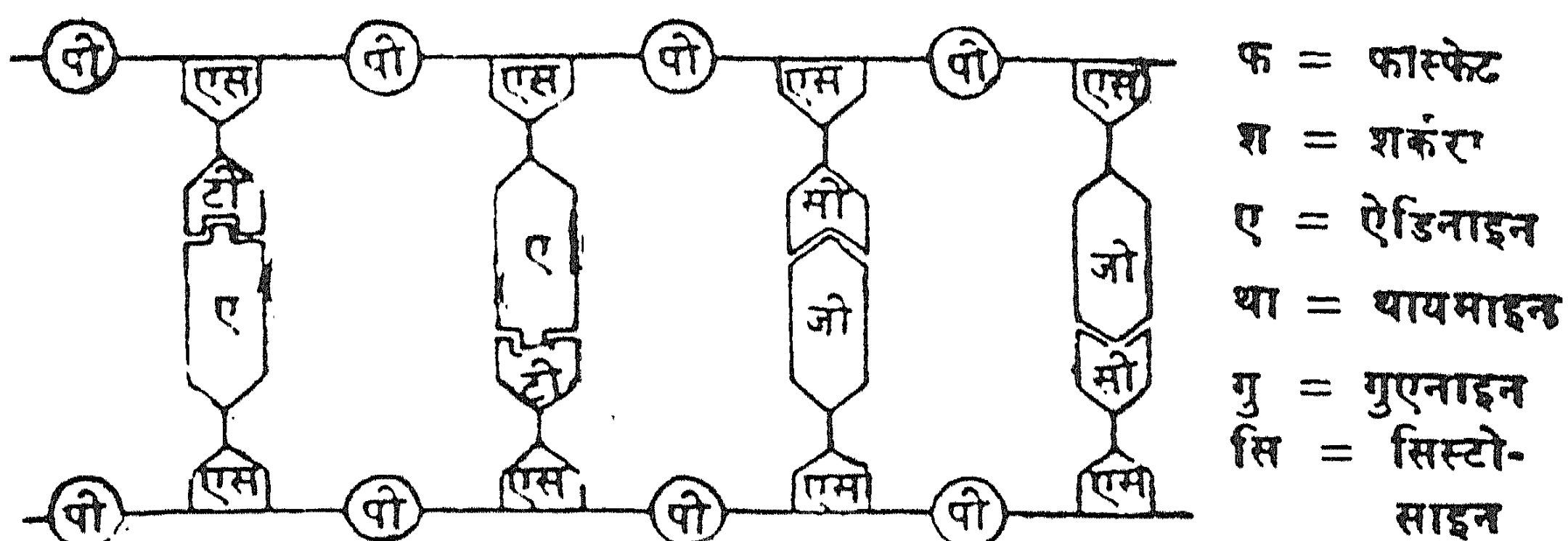
अंत में, टुकड़े अपने ठीक स्थानों पर आने लगे और मॉडल की आकृति उभरने लगी। फास्फेट और शर्करा के अणुओं से लम्बी और घुमावदार रेखाएं बनीं। चारों समाक्षार समकोण पर उनके साथ लगाए गए। इन छहों से एक बल खाती सीढ़ी बनी। सीढ़ी के ढांचों का निर्माण शर्कराओं और फास्फेटों से हुआ और खंडों का काम ऐडिनाइन, गुएनाइन, सिस्टोसाइन और थायमाइन समाक्षारों ने दिया।



## डो एन ए की वैचदार सोदा

यह वास्तविकता तो थी परन्तु पूर्ण वास्तविकता नहीं थी। समाक्षार भिन्न-भिन्न आकारों के होते हैं। ऐडिनाइन (ए) और गुएनाइन (गु) अधिक बड़े और लम्बे समाक्षार होते हैं और सिस्टोसाइन (सी) और थायमाइन (था) अपेक्षतया छोटे और नाटे। भिन्न-भिन्न आकारों वाले डंडों से सीढ़ी कैसे बन सकती है? उन्हें पता लगा कि प्रत्येक डंडे के लिए एक नहीं बल्कि दो समाक्षार आवश्यक हैं और सिद्ध हुआ कि प्रत्येक डंडे में एक बड़ा और एक छोटा समाक्षार लगाना होगा। ऐसा होने पर भी, डंडे निर्माण करने वाले समाक्षारों की चार व्यवस्थाएं सम्भव हैं। यही नहीं, ये डंडे किसी भी क्रम में लग सकते हैं।

तो, पूर्ण वास्तविकता यह प्रतीत हुई कि सब डी० एन० ए० अणुओं में वे ही छः खण्ड (शर्करा, फास्फेट तथा चार समाक्षार) होते हैं और सब अणु एक ही

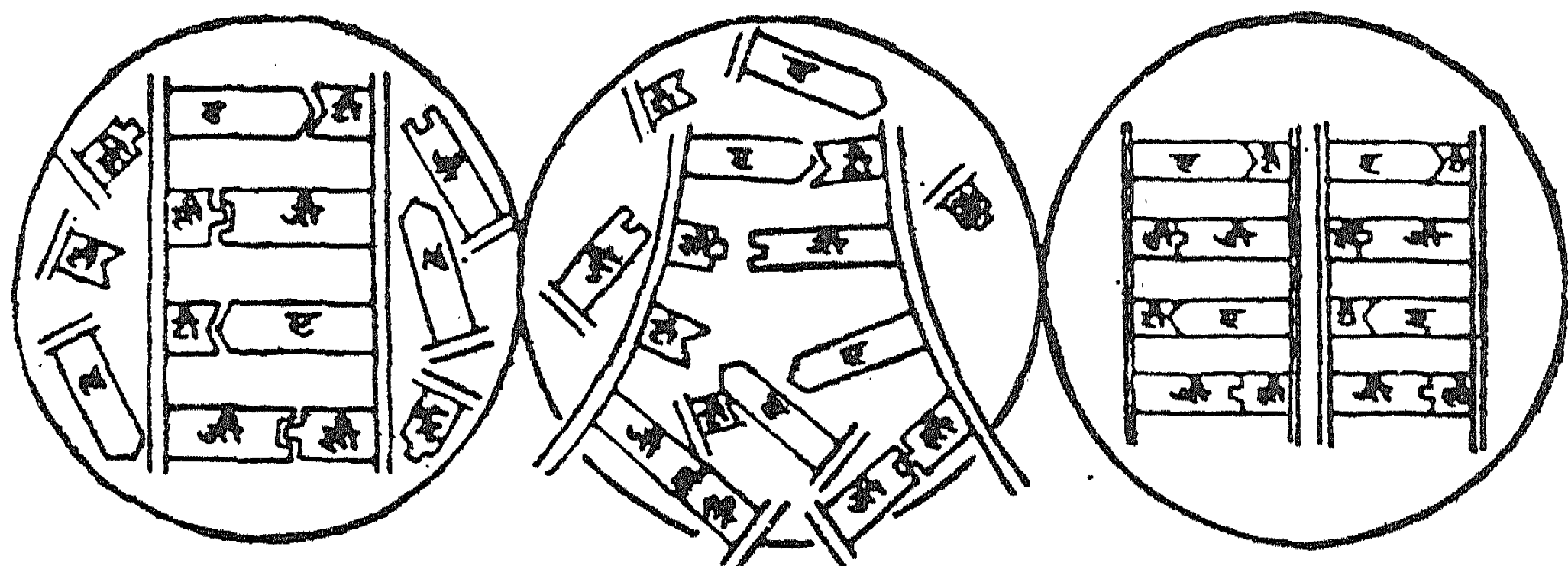


आकृति के होते हैं (घुमावदार सीढ़ी जैसे)। केवल एक चीज बदल सकती है—डंडों का क्रम।

क्या यह सम्भव है कि इतने जटिल जीवन का आधार इतना सरल हो? क्या डी० एन० ए० अणु के चार प्रकार के डंडों में, जिसकी संख्या 10,000 तक हो सकती है, वह सारी जानकारी आ सकती है जो सब जीवित वस्तुओं के लिए आवश्यक प्रोटीन के निर्माण के लिए जरूरी है? हम जानते हैं कि मोर्स पद्धति में केवल दो संकेतों, बिन्दुओं और रेखाओं (डाटों और डैशों) का उपयोग किया जाता है परन्तु उनसे लाखों भिन्न-भिन्न शब्दों की रचना की जा सकती है। क्रिक ने भी निरहंकार भाव से कहा था, 'इस प्रकार की व्यवस्था बहुत अधिक जानकारी का वहन कर सकती है।'

डी० एन० ए० के लिए यही आवश्यक नहीं है कि वह आनुवंशिकता-विषयक जानकारी का वहन करे बल्कि यह भी आवश्यक है कि वह अपनी प्रतिलिपियां तैयार कर सके अर्थात् प्रजनन कर सके। डी० एन० ए० का जो नमूना क्रिक और वाट्सन ने प्रस्तुत किया उससे वैज्ञानिकों को कुछ संकेत मिला कि डी० एन० ए० का प्रजनन किस प्रकार होता है। जब इस प्रक्रिया का आरम्भ होता है तब रस्सी के एक सिरे पर बट खुलने लगते हैं। जब ऐसा होता है तब समाक्षार ए, गु, सि और था अपने साथियों से बिछुड़ जाते हैं। परन्तु कोशिका के द्रव में एकाकी समाक्षार स्वतंत्रतापूर्वक तैरते रहते हैं, और उदाहरण के तौर पर, जब कभी केवल था वाला डंडा तैरते हुए ए के निकट आता है तब दोनों के मिल जाने से डंडा पुनर्निर्मित हो जाता है। ज्यों-ज्यों बट खुलते हैं, ढांचे की शर्करा तथा फास्फेट से जुड़े हुए नये समाक्षार सीढ़ी को पूरा कर देते हैं। जब तक सारे बट खुलते हैं तब तक दो नयी सीढ़ियां बन चुकी होती हैं।

डॉ० क्रिक ने डी० एन० ए० के प्रजनन को इस प्रकार स्पष्ट किया है—कल्पना कीजिए कि एक दस्ताने में से आप अपना हाथ खींच रहे हैं और हाथ के चारों ओर एक नया दस्ताना बन रहा है। उसी समय एक दूसरा हाथ धीमे-धीमे खाली दस्ताने में प्रवेश करता है। जब यह प्रक्रिया पूरी हो जाती है तब दो दस्तानों



तैरते हुए समाक्षारों  
वाला डी एन ए

डी एन ए खुल रहा है,  
तैरते हुए समाक्षार  
जुड़ रहे हैं

डी एन ए की 2 समरूप  
सीढ़ियां

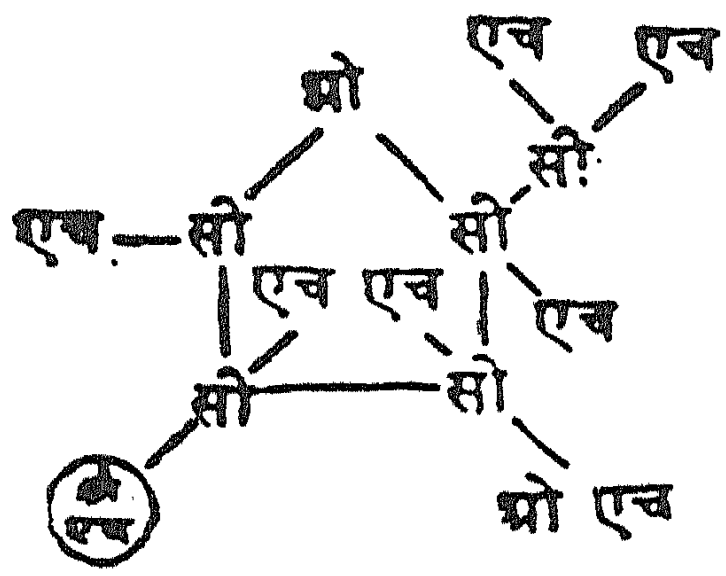
में दो हाथ होते हैं। प्रत्येक हाथ अकेले-अकेले समाक्षारों की पंक्ति को और प्रत्येक दस्ताना उनके साथियों को निरूपित करता है।

इससे यह तो स्पष्ट हो गया कि एक डी० एन० ए० से दो डी० एन० ए० कैसे बन जाते हैं। परन्तु इस बात का स्पष्टीकरण अभी बाकी था कि डी० एन० ए० उन प्रोटीन-अणुओं के उत्पादन का नियंत्रण किस प्रकार करता है जो कोशिका की संरचना और क्रिया के लिए अनिवार्य हैं। यह तो मालूम था कि प्रोटीन का निर्माण केन्द्रक के बाहर, कोशिका-द्रव में होता है। परन्तु डी० एन० ए० केवल केन्द्रक में पाया जाता है, तो डी० एन० ए० का संकेत केन्द्रक के बाहर कैसे जाता है और प्रोटीन का निर्माण कैसे होता है?

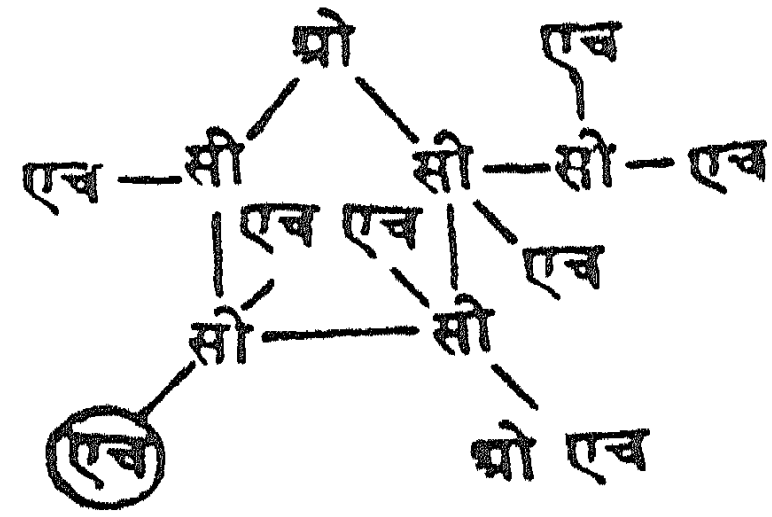
आपको याद होगा कि न्यूक्लिक अम्ल दो होते हैं—डी० एन० ए० और आर० एन० ए०। रासायनिक दृष्टि से डी० एन० ए० और आर० एन० ए० में दो भिन्नताएं हैं। एक तो यह कि आर० एन० ए० यूरैसिल समाक्षार होता है और डी० एन० ए० में थायमाइन और दूसरा यह कि आर० एन० ए० के शर्करा-अणु में, डी० एन० ए० के शर्करा-अणु की अपेक्षा, एक आक्सीजन परमाणु अधिक होता है।

डी० एन० ए० केवल केन्द्रक में पाया जाता है, परन्तु आर० एन० ए० केन्द्रक और कोशिका-द्रव दोनों में पाया जाता है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में किए गए प्रयोगों से पता चला कि आर० एन० ए०, किसी न किसी तरह, केन्द्रक से कोशिका-द्रव में चला जाता है।

इससे प्रक्रिया स्पष्ट हो गई। डी० एन० ए० मुख्य योजना है जिसमें जीवित पदार्थ के निर्माण के लिए निर्देश होते हैं। केन्द्रक के भीतर किसी अज्ञात तरीके से डी० एन० ए०, प्रोटीन-निर्माण सम्बन्धी अपनी जानकारी एक विशेष प्रकार के



रिबोन्यूक्लिक शर्करा-अणु



डिऑक्सिरिबोन्यूक्लिक शर्करा-अणु

आर० एन० ए० —स्थानान्तरण आर० एन० ए०—को देता है। फिर यह आर० एन० ए०, डी० एन० ए० के संकेतों में निहित योजना द्वारा निर्धारित प्रोटीनों के निर्माण में सहायक होने के लिए कोशिका-द्रव में जाता है। कुछ कोशिकाओं या तम्बाकू के चित्तीरोग-विषाणु जैसे कुछ विषाणुओं में मुख्य योजना का वहन आर० एन० ए० करता है, डी० एन० ए० नहीं।

पिछले कुछ वर्षों में डी० एन० ए० और आर० एन० ए० के अनुसंधान की गति बहुत तीव्र हो गयी है। 1955 में न्यूयार्क विश्वविद्यालय के सेवरो ओकावा (जन्म 1905) ने एक परीक्षण-नली में कुछ आर० एन० ए० बनाने में सफलता प्राप्त की। यह प्रथम अवसर था जब आर० एन० ए०, जीवित कोशिका के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान पर प्राप्त किया गया था। एक साल बाद उनके भूतपूर्व छात्र, आर्थर कार्नबर्ग (जन्म 1918) ने बार्शिंगटन विश्वविद्यालय (सेंट लुई) में कुछ डी० एन० ए० बना लिया।

अगस्त 1961 में बेथेस्टा (मैरी लैंड) के स्वास्थ्य-विषयक राष्ट्रीय संस्थान के दो वैज्ञानिकों, मार्शल डब्ल्यू० निरन्बर्ग और जे० हीनरिख मैथी ने केवल एक समाक्षार, यूरैसिल, का उपयोग करके एक सरल आर० एन० ए० अणु बनाया। प्रोटीन बनाने के लिए एक परीक्षण-नली में उन्होंने इसका प्रयोग किया और देखा कि उसने प्रोटीन के एक भाग, फेनिल ऐमाइन नामक ऐमिनो अम्ल, का निर्माण किया। (बीस से अधिक ऐमिनो अम्ल ज्ञात हैं। ये वे इकाइयां हैं जिनसे सब प्रोटीनों का निर्माण होता है।)

जनवरी 1962 तक सेवरो ओकावा ने घोषणा की कि प्रोटीनों में उपस्थित इससे भी अधिक ऐमिनो अम्लों में से उन्नीस की सांकेतिक भाषा को उन्होंने समझ लिया है और शेष के बारे में अनुमान कर सकते हैं। प्राप्त प्रमाणों से ऐसा प्रतीत हुआ कि यह भाषा त्रिकों में चलती है और प्रोटीन का निर्माण करने वाले ऐमिनो अम्लों में से प्रत्येक के निर्माण के लिए तीन-तीन समाक्षार आवश्यक हैं।

सबसे अधिक उत्साहजनक खोजों में से एक की घोषणा मार्च, 1965 में की गई थी। राबर्ट डब्ल्यू० हौले के नेतृत्व में, कार्नेल विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के



एक दल ने एक किस्म के स्थानान्तरण—आर०एन०ए० की रचना तथा रासायनिक सूत्र ज्ञात कर लिया। यह विशेष आर० एन० ए० एलानिन नाम के ऐमिनो अम्ल के निर्माण में काम आता है।

इस मुकदमे की सुनवाई और हमारी कहानी यहीं समाप्त हो जाती है। डी० एन० ए० और आर० एन० ए० नाम के न्यूक्लिक अम्ल 'भाइयों' के मामले के विषय में फिलहाल यही फैसला दिया जा सकता है कि वे जीवन के मुख्य आयोजक हैं। उनकी सूक्ष्म घुमावदार सीढ़ियों में जीवन का रहस्य संकेत रूप में निहित है। कुछ समय पूर्व वैज्ञानिक कहते थे कि आनुवंशिकता जीनों के भीतर छिपी होती है। (जीन वे सूक्ष्म इकाइयां हैं जो क्रोमोसोमों पर मनकों की तरह पिरोई होती हैं।) अब हम जान गए हैं कि प्रायः प्रत्येक जीन डी० एन० ए० के दोहरे धागे से निर्मित होता है।

डी० एन० ए० और आर० एन० ए० ही है जो इस बात का निर्धारण करते हैं कि हाथी का बच्चा हाथियों की तरह और पिस्सू का बच्चा पिस्सुओं की तरह दिखाई दे। डी० एन० ए० और आर० एन० ए० ही हैं जो पैदा होने वाले प्रत्येक शिशु की आंखों और बालों के रंग का तथा लम्बाई और भार का निर्धारण करते हैं। विज्ञान के जासूसों ने जीवन की चिनगारी को खोज निकाला है।

परन्तु यह 'मामला' अभी समाप्त नहीं हुआ है। वैज्ञानिक अभी नये प्रमाणों का पता लगा रहे हैं। उदाहरण के लिए, एक नया सुराग यह मिला है कि आर० एन० ए० स्मृतियों (यादों) के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ऐसे-ऐसे अनुसंधान हमें जीवन का नियंत्रण करने वाले अणुओं के ज्ञान के अधिकाधिक निकट लाते जा रहे हैं।

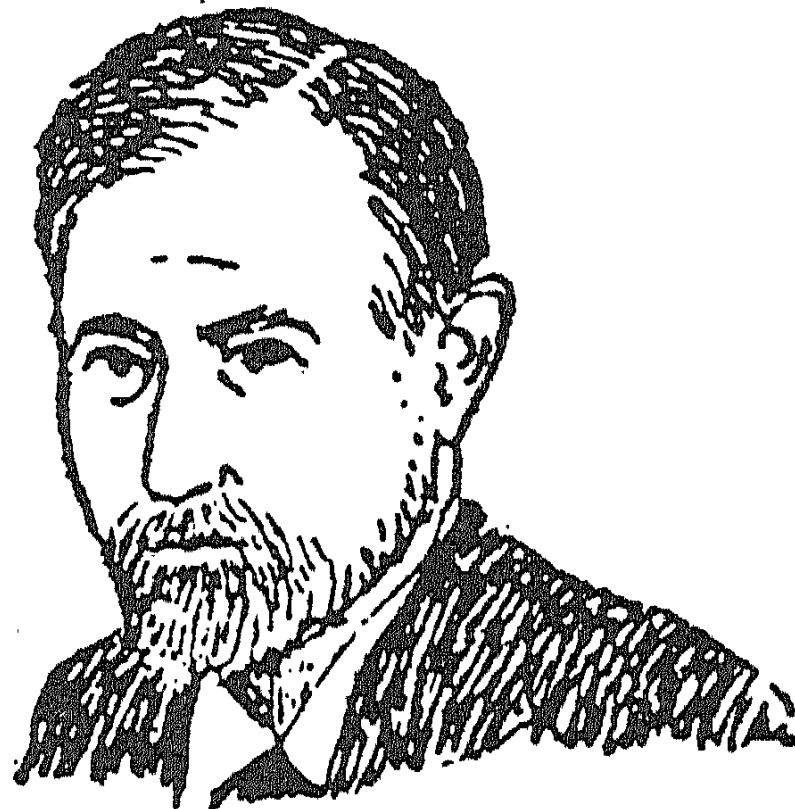
## अचेतन मन का आविष्कार

पिछले 500 वर्षों में विज्ञान ने मानव पर तीन क्रूर प्रहार किये हैं। सोलहवीं शताब्दी में निकोलस कार्पनिकस ने सिद्ध किया कि पृथ्वी ब्रह्माण्ड का केन्द्र नहीं है, बल्कि बृहद् ब्रह्माण्ड में एक कण मात्र है। उन्नीसवीं शताब्दी में चार्ल्स डार्विन ने इस बात के प्रमाण प्रस्तुत किये कि मनुष्य निम्नतर प्राणियों का वंशज है। इस शताब्दी के आरम्भ के आस-पास सिगमण्ड फ्रायड ने क्रूरतम प्रहार किया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि मनुष्य बहुत कुछ अपने मस्तिष्क के एक ऐसे भाग द्वारा संचालित होता है जिस पर उसका नियंत्रण नहीं है, और वह जो कुछ है, जो कुछ सोचता है या जो कुछ कहता और करता है उस पर उसका पूर्ण नियंत्रण नहीं है।

सिगमंड फ्रायड (1856-1939) जब वियना विश्वविद्यालय में छात्र थे तब उन्हें यह निश्चय करने में कठिनाई हुई थी कि वे किस पाठ्यक्रम को लें। उन्हें भौतिकी और रसायन शास्त्र में दिलचस्पी थी, परन्तु वे अपने को इन विषयों के योग्य नहीं समझते थे। कुछ समय तक दर्शन शास्त्र ने उनका ध्यान आकर्षित किया। परन्तु उन्हें सबसे अधिक संतोष शरीर-क्रिया विज्ञान से हुआ जिसमें प्राणियों और पौधों के विभिन्न भागों की क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। उन्होंने शीघ्र ही मनुष्यों और पशुओं के तंत्रिका तंत्र के विषय में मौलिक अनुसंधान करना आरम्भ कर दिया। इस अनुसंधान के सहायक विषय के रूप में उन्होंने चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन किया और डॉक्टर बन गये, यद्यपि उनका इरादा डॉक्टरी पेशा अपनाने का नहीं था।

1886 में शादी हो जाने और कई बच्चों के पिता हो जाने के बाद उन्होंने महसूस किया कि अपनी बीबी, छः बच्चों और तरह-तरह के सम्बन्धियों के भरण-पोषण के लिए उन्हें डॉक्टरी करनी पड़ेगी। चूंकि उन्होंने तंत्रिका तंत्र पर अनुसंधान किया था अतः कोई आश्चर्य नहीं कि डॉक्टर के रूप में वे तंत्रिका तंत्र के रोगों के विशेषज्ञ बने।

रोगी उनके यहां आने लगे। जब उनका परीक्षण किया जाता तो पाया जाता कि उनके तंत्रिका तंत्र में कोई खराबी नहीं है। फिर भी उनमें तंत्रिकात्मक लक्षण



सिगमंड फ्रायड

पाये जाते थे, जैसे—लकवा, कम्प, देखने, सुनने और बोलने की शक्ति का लोप, काल्पनिक भय, निरंतर चिन्ता और घबराहट। जिन लोगों में ऐसे तंत्रिकात्मक लक्षण पाये जाते हैं उन्हें रुग्णतंत्रिका (न्यूरोटिक) कहते हैं और उनके लक्षणों को आधियां (मनोव्यथा या न्यूरोसिस) कहते हैं।

फ्रायड को इस बात से बहुत निराशा हुई कि इन लोगों की कोई भी सहायता करना सम्भव नहीं है। क्या उन्हें भी अन्य डॉक्टरों की तरह रोगियों को सुझाव देते रहना चाहिए कि वे अंधेरे कमरे में बिस्तर में लेटे रहें और दूध तथा फिरनी लेते रहें? क्या वे रोगियों को सुझाव दें कि घोड़े की सवारी और पर्वतारोहण जैसे जोरदार व्यायाम करें? गरम जल से स्नान करें और मालिश करवायें? बर्फ-जल से स्नान करें? चूंकि लाभ किसी बात से नहीं होता था अतः हर चीज का सुझाव दे दिया जाता था। फ्रायड ने भी इन सबको आजमाया परन्तु बेकार।

1880वें दशक में फ्रायड के एक अध्यापक डॉ॰ जोसफ ब्रायर, ने एक रोगी की चिकित्सा एक बिल्कुल नये ढंग से की—और वे उसके मानसिक रोग को दूर करने में सफल हुए। रोगिणी एक जर्मन लड़की थी जिसका नाम अन्ना ओ था। उसके दाहिने हाथ को लकवा मार गया था और वह जर्मन भाषा न बोल सकती थी, न समझ सकती थी, विचित्र बात यह थी कि वह केवल अंग्रेजी भाषा का उपयोग कर सकती थी।

डॉ॰ ब्रायर ने कुछ शब्दों को बार-बार दोहरा कर अन्ना को सम्मोहित किया और एक ऐसी निद्रा में डाल दिया जिसमें वह सुन सकती थी, बात कर सकती थी और सुझावों को समझ सकती थी। जब अन्ना सम्मोहन अवस्था में थी तब डॉ॰ ब्रायर ने उसे प्रेरित किया कि वह उस क्षण को याद करे जब पहले-पहल उसका हाथ लकवे से प्रभावित हुआ था और जब उसने जर्मन बोलना भूलना शुरू किया था।

डॉ० ब्रायर को मालूम हुआ कि एक दिन, जब अन्ना अपने मरणासन्न पिता की परिचर्या कर रही थी, वह दाहिना हाथ अपनी कुर्सी पर टिका कर सो गयी। जब वह जागी तब उसका हाथ सुन्न था और उसके बाद वह उसे हिला नहीं सकी। कुछ दिनों बाद वह फिर अपने पिता की चारपाई के पास सो गयी। इस बार उसने स्वप्न देखा कि एक साँप उसके पिता पर आक्रमण करने के लिए दीवार से रेंगता हुआ आ रहा है। उसने चिल्लाना चाहा परन्तु वह चिल्ला न सकी। वह केवल अंग्रेजी की एक लोरी गा सकी जिसे उसने शिशु अवस्था में सीखा था। जागने पर और उसके बाद वह केवल अंग्रेजी बोल सकती थी।

तो, आधि की जड़ यहां थी। पिता की बीमारी और मृत्यु अन्ना के लिए बड़ा विकट अनुभव था। लकवे और जर्मन बोलने की असमर्थता के स्रोत वे भावात्मक क्षण थे जिनमें वह अपने दाहिने हाथ के सहारे लेटी थी और जब वह अपने पिता को चेतावनी न दे सकी थी और केवल अंग्रेजी की लोरी को दोहरा सकी थी।

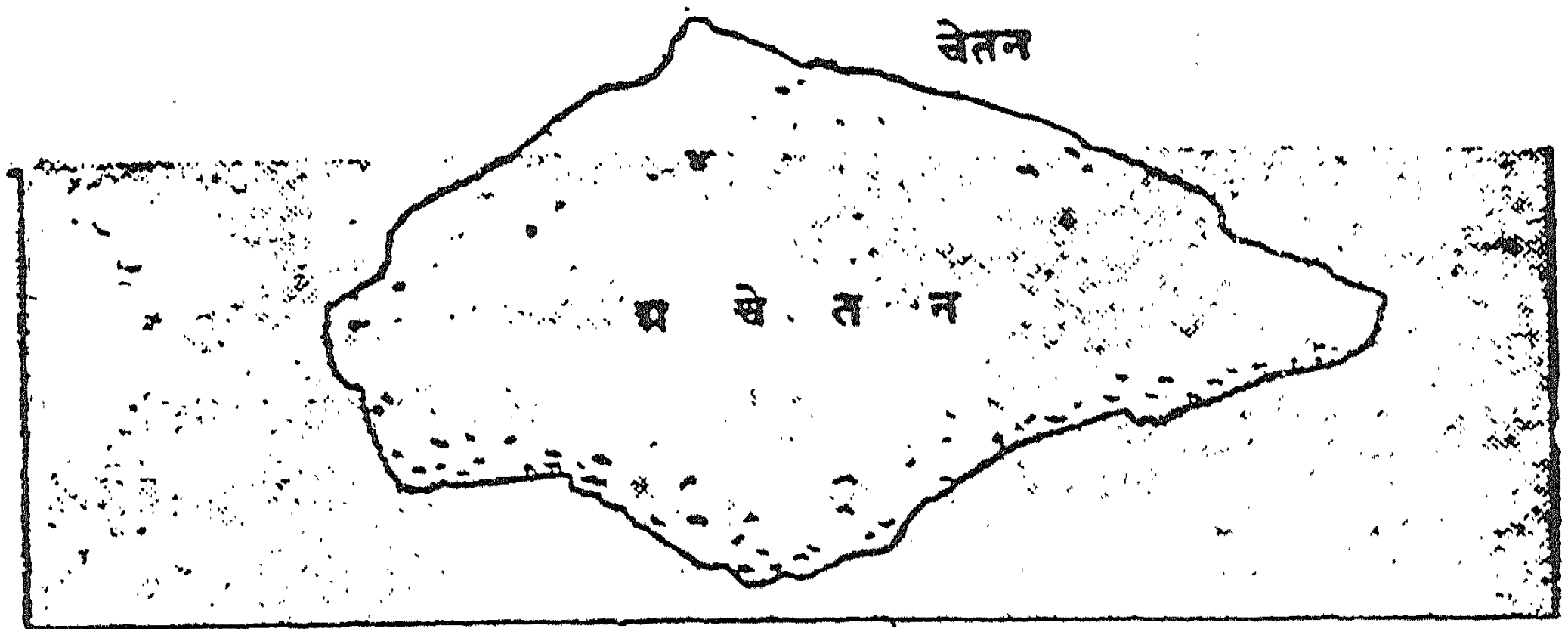
उन भीषण क्षणों को याद करने में अन्ना की सहायता करके डॉ० ब्रायर उसे अच्छा करने में सफल हो गए। उसके बाद वह उन क्षणों को अधिक इत्मीनान के साथ याद और स्वीकार करने लगी। इसके साथ-साथ वह अपना हाथ हिलाने लायक भी हो गई और उसे यह भी याद आ गया कि जर्मन कैसे बोली जाती है।

फ्रायड ने सबसे पहले अन्ना के उपचार का महत्त्व समझा। आधिग्रस्त रोगियों के उपचार के लिए उन्होंने इस मामले का नमूना के तौर पर उपयोग किया। जैसे-जैसे समय बीतता गया वैसे-वैसे फ्रायड सम्मोहन विधि को छोड़ते गये और मूल प्रणाली में अन्य प्रकार के सुधार करते रहे। इससे एक नये विज्ञान, मनोविश्लेषण, का जन्म हुआ।

मनोविश्लेषण हमें नयी जानकारी देता है कि मानव-मन किस तरह कार्य करता है, साथ ही वह मन के विकारों के उपचार की एक नयी प्रणाली भी है। मनोविश्लेषण की एक महत्त्वपूर्ण धारणा यह है कि हमारे अधिकांश विचार और मनोभाव अचेतन हैं अर्थात् चेतन नियंत्रण और निर्देशन से परे हैं। संक्षेप में, हमारे चेतन विचार और भावनाएं, हमारी कुल मानसिक क्रिया की अल्पांश मात्र हैं। फ्रायड ने मानव-मन की तुलना उस तैरने वाले हिमशैल से की थी जिसका बहुत थोड़ा-सा भाग पानी के बाहर दीखता है।

ठीक इसी क्षण आपको इस बात का प्रमाण मिल सकता है कि आपके मन का अचेतन भाग सक्रिय है। इस पुस्तक को पढ़ते समय आप अपने हाथों से क्या कर रहे हैं? क्या आप मेज पर उंगलियों से ताल दे रहे हैं? अपने बाल उमेठ रहे हैं? नाखूनों को दांतों से काट रहे हैं? पेंसिल या कलम से खेल रहे हैं? यदि आप ये सब बातें जानबूझकर नहीं कर रहे हैं तो निश्चय ही आपका अचेतन मन उनके





लिए उत्तरदायी है।

मनोविश्लेषण की दूसरी धारणा यह है कि मानसिक विकार के सारे लक्षण या आधियां अचेतन मन की उपज हैं। इस बात ने इस विश्वास को जन्म दिया कि यदि अचेतन विचारों को चेतन बना दिया जाए तो वे लक्षण सामान्यतः लुप्त हो जायेंगे। अन्ना ओ के मामले में जब उसके पिता की मृत्यु से सम्बन्धित अचेतन स्मृतियां चेतन बना दी गयी थीं तब वह अच्छी हो गयी थी।

यदि आधियों का इलाज यह है कि अचेतन मन के विचारों को प्रकाश में लाया जाए तो स्पष्ट है कि अचेतन मन में प्रवेश पाने के लिए किसी रास्ते की खोज करनी होगी। फ्रायड ने एक ऐसे रास्ते को खोज निकाला जो मनोविश्लेषण का एक महत्वपूर्ण अंग हो गया। इस उपाय का नाम उन्होंने स्वच्छन्द साहचर्य रखा। रोगियों से कहा जाता था कि वे ढीले पड़ जायें और अपने विचारों को स्वच्छन्द रूप से विचरण करने दें और जो कुछ मन में आये, उसे कहें। फ्रायड अपने रोगियों की सब स्मृतियों, स्वप्नों, इच्छाओं और कल्पनाओं को सुनना चाहते थे। जब वे बोलते थे तब उनके अचेतन मन की दुखदायी स्मृतियां—वे स्मृतियां जो बहुत समय से छिपी पड़ी थीं—प्रकाश में आती थीं।

हम सबकी ऐसी स्मृतियां होती हैं जिन्हें अचेतन मन की विभिन्न गहराइयों में छिपा रखते हैं। यहां एक सरल प्रयोग दिया जा रहा है जिससे आपको कुछ पता चल जाएगा कि स्मृतियां कितनी गहराई में छिपी होती हैं। दस शब्दों की एक सूची बनाइये, जिसमें ऐसे शब्द भी शामिल हों—मां, स्कूल, चर्च, चुम्बन, (चूतड़ पर) थप्पड़ आदि। एक ऐसे मित्र के सम्मुख, जो सहयोग देने को तैयार हो, प्रत्येक शब्द का उच्चारण कीजिए और उससे कहिए कि इसके बाद जो शब्द उसके मन में पहले आये, उसे बताये। मालूम कीजिये कि प्रत्येक शब्द का सहचारी शब्द ढूंढने में उसे कितने सेकेण्ड लगते हैं।

आप पायेंगे कि कुछ उत्तर अन्यो की अपेक्षा विलम्ब से प्राप्त होते हैं। फ्रायड का मत था कि जो उत्तर सबसे अधिक विलम्ब से दिए जाते हैं वे किसी रूप में

दुःखद या अप्रिय अनुभवों और स्मृतियों से सम्बन्धित होते हैं। आप यह भी पायेंगे कि कुछ उत्तर, बोले गए शब्दों से बिल्कुल असम्बन्धित होते हैं। वे भी किसी रूप में अप्रिय स्मृतियों से सम्बन्धित हो सकते हैं। स्वच्छन्द साहचर्य की विधि से आपको किसी व्यक्ति के विषय में बहुत अधिक जानकारी नहीं प्राप्त होगी। परन्तु एक प्रशिक्षित मनोविश्लेषक के हाथ में वह उतना ही उपयोगी उपकरण सिद्ध होता है जितना किसी दूसरे डॉक्टर के हाथों में स्टेथस्कोप।

अपने दैनिक जीवन में जो भूल-चूक हमसे होती हैं वे कभी-कभी मनोरंजक होती हैं, कभी-कभी अप्रिय, और कभी-कभी वे हमारे अचेतन की चित्ताकर्षक झांकियां प्रस्तुत करती हैं। क्या आप कभी ऐसे फोन नम्बर को भूल जाते हैं जिसे आप अच्छी तरह जानते हैं? क्या कभी ऐसा हुआ कि लिंडा नाम की लड़की से सड़क पर आपकी मुलाकात हुई थी और आपने कह दिया, 'हैलो जूडी'? क्या कभी आपकी गणित की वह कापी खोई है जिसमें घर पर करने के लिए आपको बहुत से सवाल दिए गए थे?

फ्रायड ने इस तरह की भूलों और चूकों का स्पष्टीकरण, चेतन और अचेतन के बीच चल रहे संघर्ष के रूप में किया। फ्रायड बतलाते हैं कि जिस टेलीफोन नम्बर को आपका चेतन मन याद करने की कोशिश कर रहा था उसे दबाने के लिए आपके पास कारण था। हो सकता है कि आप उस नम्बर वाले व्यक्ति को पसन्द न करते हो, या कि हाल ही में फोन करते समय आपको कोई अप्रिय अनुभव हुआ हो, आदि।

चेतन इरादे में जो अचेतन विचार विघ्न डालता है उसे पहचानना कभी-कभी बहुत आसान होता है। उदाहरण के लिए उस किशोरी का किस्सा लीजिये जिसने अपनी मां से पूछा था, 'आप जब जीवित थीं तब क्या आप भी ऐसे समारोहों में भाग लेती थीं?' कल्पना कीजिए कि वह लड़की अपनी मां के बारे में क्या चाहती थी!

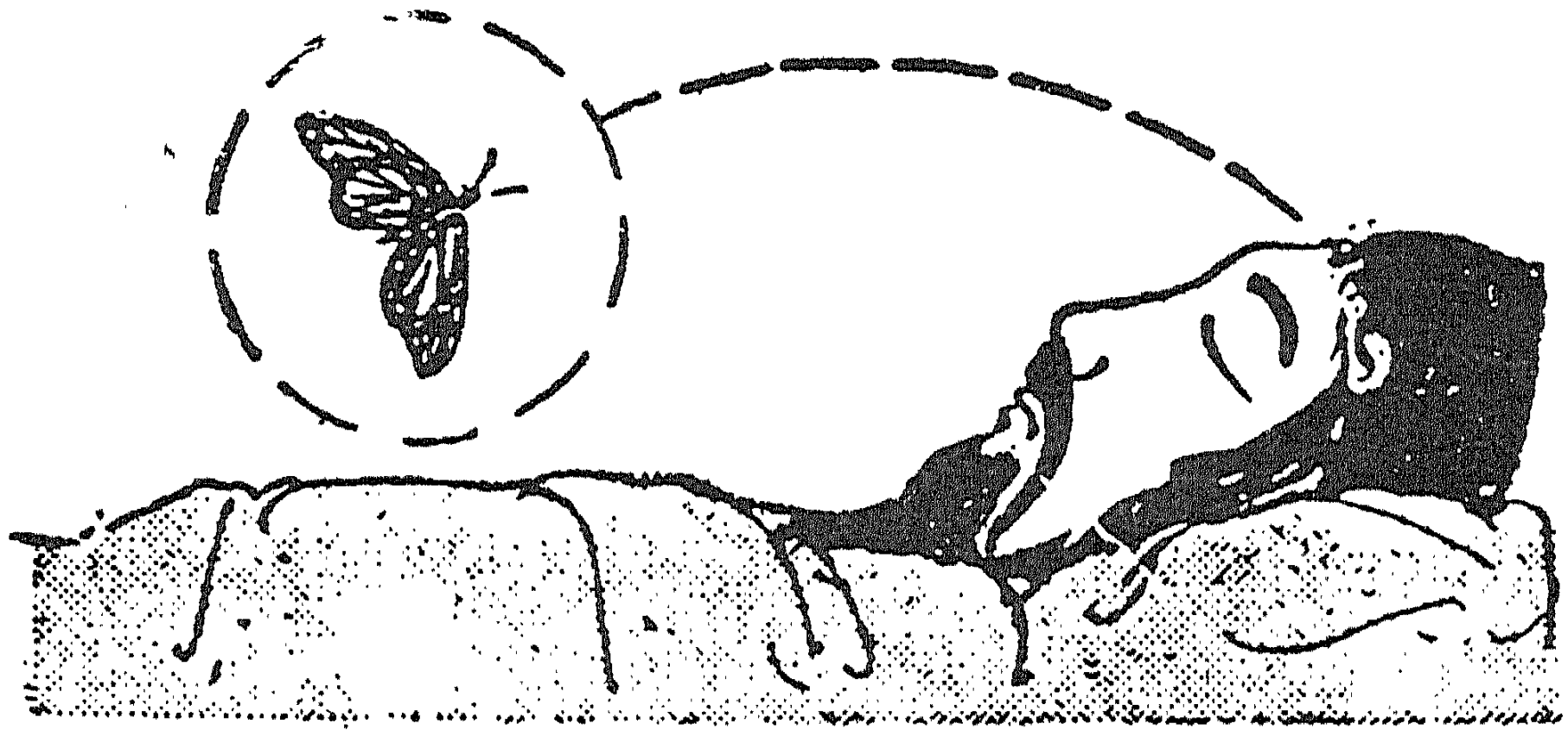
फ्रायड ने छपाई की भूल का एक उदाहरण दिया था। एक राजतंत्र के विरोधी समाचार पत्र ने राज्य-परिवार-विषयक एक लेख में क्राउन प्रिंस (युवराज) की जगह क्लाउन प्रिंस (विदूषक राजकुमार) छाप दिया था। दूसरे दिन क्षमा-याचना और स्पष्टीकरण प्रकाशित हुआ कि क्राउन प्रिंस (कौआ राजकुमार) छपना चाहिए था। तीसरे दिन कहीं जाकर क्राउन प्रिंस (युवराज) छपा!

कोई भी व्यक्ति, जो ऐसी भूलें करता है, वह सम्भवतः उस अचेतन विचार को पहचान लेगा, जो चेतन विचार में हस्तक्षेप करता है। परन्तु हाई स्कूल की उस लड़की के बारे में क्या कहा जाए जो अंतिम परीक्षा के लिए जाते समय अपनी कीमती कलम खो बैठी थी? क्या वह मानेगी कि शायद परीक्षा के भय से उसने कलम खो दिया था?

चूकें और भूलें कभी-कभी जीवन-मरण का प्रश्न बन जाती हैं। एक व्यक्ति ने अपने को वैज्ञानिक बताकर और एक प्रयोगशाला से मारक जीवाणुओं को प्राप्त करके एक हत्या करने की योजना बनाई थी। एक पत्र में उसने बताया था कि वह 'चूहों और गिनीपिगों' पर प्रयोग करना चाहता है। उस पत्र को ध्यान से पढ़ने वाले व्यक्ति से यह बात छिपी नहीं रह सकती थी कि 'चूहों' लिखने के पूर्व उसने 'मनुष्यों' लिखा था और उसे काट दिया था। अचेतन विचारों की जितनी जानकारी आपको है उसके बल पर क्या आपका ध्यान हत्या की उस योजना की ओर चला जाता ?

जिस तरह मनुष्य सदा से भूलें करता आ रहा है उसी तरह वह सदा से स्वप्न भी देखता आ रहा है। परन्तु यह फ्रायड थे जिन्होंने सबसे पहले, 1900 में, स्वप्नों का सम्यक् अध्ययन किया। उससे हमें अचेतन मन की एक झांकी मिली।

स्वप्न, मानसिक क्रियाकलाप का एक ऐसा रूप है जो हमारी सुप्तावस्था में भी चलता रहता है। कभी स्वप्न अवास्तविक और अस्पष्ट हो सकते हैं या वे इतने वास्तविक और स्पष्ट हो सकते हैं कि हमें पता नहीं चलता कि हम स्वप्न देख रहे हैं या सचमुच। एक चीनी कवि ने एक बार इस बात को इस तरह कहा था; 'पिछली रात मैंने स्वप्न देखा कि मैं एक तितली हूं और मुझे मालूम नहीं कि मैं वह मनुष्य हूं जिसने स्वप्न देखा था कि वह तितली है या कि वह तितली हूं जो अब स्वप्न देख रही है कि वह मनुष्य है।'



स्वप्न वह रंगमंच है जिस पर अचेतन मन अपनी आवश्यकताओं, भय, इच्छाओं और आशाओं का नाटक खेल सकता है और सुप्त चेतन मन विशेष हस्तक्षेप नहीं करता। मेरी नामक एक युवती ने स्वप्न देखा कि वह अपने परिवार की पुरानी मोटर कार को चला रही है और उसके पिता उसमें बैठे हैं। वह एक खड़ी ढलान वाली पहाड़ी के पास आयी जो बहुत ऊंची थी और जिस पर मोटर ले जाना उसके वश की बात नहीं थी। उसने अपने पिता से कहा कि वे मोटर

कार संभालें और उसे पहाड़ी के ऊपर ले चलें ।

मेरी के स्वप्न का एक अर्थ यह हो सकता है कि वह वयस्क होना और अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती है । पहाड़ी एक समस्या है जिसे वह हल नहीं कर सकती । अतः आवश्यकता है कि वह पुनः बालिका हो जाए और पिता से सहायता ले । इस दृष्टि से यह स्वप्न मेरी के मानसिक संघर्ष का नाटक है । वह स्वतंत्र होना चाहती है और साथ ही अपने माता-पिता पर निर्भर भी रहना चाहती है ।

बैरी नामक एक युवक ने स्वप्न देखा कि वह एक दावत की मेज पर बैठा है । हर आदमी उसकी सराहना कर रहा है । उसे खुशी हो रही है । जब वह खाने लगता है, भोजन उसके गले में अटक जाता है । उसका गला रुंध जाता है । जब वह सहायता मांगने के लिए घूमता है तब पाता है कि सब लोग चले गए हैं और वह अकेला है और मरणासन्न है ।

मेज पर रखे सब व्यंजन बैरी के लिए जीवन के घोर आनन्द-विनोद के प्रतीक हैं । परन्तु जब वह उनका मजा लेने लगता है तब क्या होता है ? उसके मित्र या समाज उसे दंड देता है, उसका परित्याग कर देता है और उसे मरने के लिए अकेला छोड़ देता है । इस स्वप्न से पता चलता है कि उसे यह भय है कि वह आनन्द भोगेगा तो उसे दंड मिलेगा ।

सैकड़ों स्वप्नों का अध्ययन करने के बाद फ्रायड इस नतीजे पर पहुंचे कि स्वप्नों की अपनी एक भाषा है । यह भाषा प्रतीकों की भाषा है । इस भाषा में प्रत्येक वस्तु किसी दूसरी वस्तु का प्रतीक होती है । मेरी के स्वप्न में पहाड़ी वास्तव में पहाड़ी नहीं थी बल्कि एक बड़ी समस्या थी । कार चलाना वयस्क और स्वतंत्र होने का प्रतीक था । कभी-कभी ये प्रतीक एक व्यक्ति के लिए सार्थक होते हैं । परन्तु फ्रायड ने पाया कि वे ही प्रतीक भिन्न-भिन्न कालों और स्थानों में भिन्न-भिन्न लोगों के स्वप्नों में बार-बार पाये जाते हैं ।

ऐसे प्रतीकों में एक प्रतीक मकान है जो बहुत से लोगों के स्वप्नों में प्रकट होता है । बहुत से स्वप्नों को सावधानी के साथ विश्लेषण करने के बाद फ्रायड ने पाया कि मकान प्रायः शरीर का प्रतीक होता है । दूसरे प्रतीक राजा और रानी हैं जो पिता और माता के लिए हैं । जल जन्म का प्रतीक है और लम्बी यात्रा मृत्यु का प्रतीक है । कभी-कभी प्रतीकों का अर्थ हमारे अनुमान के विपरीत होता है । उदाहरण के लिए, भीड़ में होना प्रायः एकाकीपन का प्रतीक होता है । वस्त्र या वर्दी के स्वप्न का प्रायः यह अर्थ होता है कि आप अपने आपको नग्न अनुभव करते हैं ।

इन प्रतीकों का उपयोग जब प्रशिक्षित मनोविश्लेषकों द्वारा किया जाता है तब वे स्वप्नों के समझने में बहुत उपयोगी साधन सिद्ध होते हैं । परन्तु उन तथाकथित स्वप्न-पुस्तकों से बचना चाहिए जिनमें स्वप्न-प्रतीकों और उनके अर्थों की सूची दी



हुई होती है। मानव-मन को समझना इतना सरल नहीं है कि किसी पुस्तक में लिखे स्वप्न-प्रतीकों और उनके अर्थों को देखने से काम चल जाए। प्रशिक्षित चिकित्सक के लिए स्वप्न-प्रतीक, रोगी के अचेतन मन की आंकियां हैं। स्वप्न, विज्ञान के हाथ में एक और औजार है जो लोगों को अपने आपको समझने और स्वीकार करने में सहायता देता है।

हमारे मन के चेतन और अचेतन दोनों भाग मिलाकर हमारे व्यक्तित्व का अर्थात् हमारे विचारों, कार्यों, इच्छाओं, भयों आदि का निर्धारण होता है। फ्रायड को पता लगा कि हमारा व्यक्तित्व तीन तरह से कार्य करता है। इन तीनों को फ्रायड ने इद, अहम् और पराहम् कहा। स्मरण रहे, ये तीनों मन या व्यक्तित्व के कार्य करने के भिन्न-भिन्न प्रकार हैं। ये मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न भागों के नाम नहीं हैं।

सरल भाषा में कहें तो व्यक्तित्व के अति जटिल अस्तित्व का संघटन कुछ इस प्रकार हुआ है। इद, अचेतन का बिगड़ा हुआ लड़का है। अपनी मर्जी के मुताबिक आनन्द प्राप्त करने के सिवा उसे और किसी व्यक्ति या वस्तु में कोई दिलचस्पी नहीं है। अच्छे-बुरे, सही-गलत का इद के लिए कोई महत्त्व नहीं है। वह जो कुछ चाहता है, झपट लेता है। इद या 'मैं चाहता हूँ', व्यक्तित्व की समस्त ऊर्जा का यही स्रोत है। मानव की, प्रेम और घृणा सम्बन्धी, दो आधारभूत प्रबल प्रेरणाएं, इद से उत्पन्न होती हैं।

इद सदा मनमानी करने की कोशिश करता है। यदि वह किसी वस्तु को वास्तविक रूप में नहीं पा सकता तो वह उसे झूठमूठ प्राप्त करता है जैसे दिवा-स्वप्न या हवाई कल्पना में। इद यदि आइसक्रीम चाहता है तो वह उसे या तो तत्काल प्राप्त कर लेता है या कल्पना कर लेता है कि वह उसे खा रहा है। उसे दोनों तरह से संतोष प्राप्त होता है। वास्तविक आइसक्रीम और झूठमूठ की आइसक्रीम में इद भेद नहीं कर सकता।

यह काम अहम् का है कि वह वास्तविक और काल्पनिक में भेद बतावे और इद की सहायता करे कि वह इस भेद को आसानी से मालूम कर सके। इद की आवश्यकताओं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने वाले वास्तविक जगत् के बीच अहम् एक कड़ी है। अहम् का काम सारे व्यक्तित्व की चिन्ता करना है, केवल इद को सन्तुष्ट करना नहीं। कभी-कभी अहम्, इद की बात मान लेता है; कभी-कभी वह इद को बाध्य करता है कि वह जो कुछ चाहता है उसकी प्राप्ति के लिए प्रतीक्षा करे।

क्या आपके साथ कभी ऐसा हुआ है? क्या कभी दुकान में मिठाई देखकर आपका जी ललचाया है? आपके भीतर किसी चीज (इद) ने आपको उकसाया होगा कि आप उठा लें और खा लें। परन्तु किसी अन्य चीज (अहम्) ने आपसे

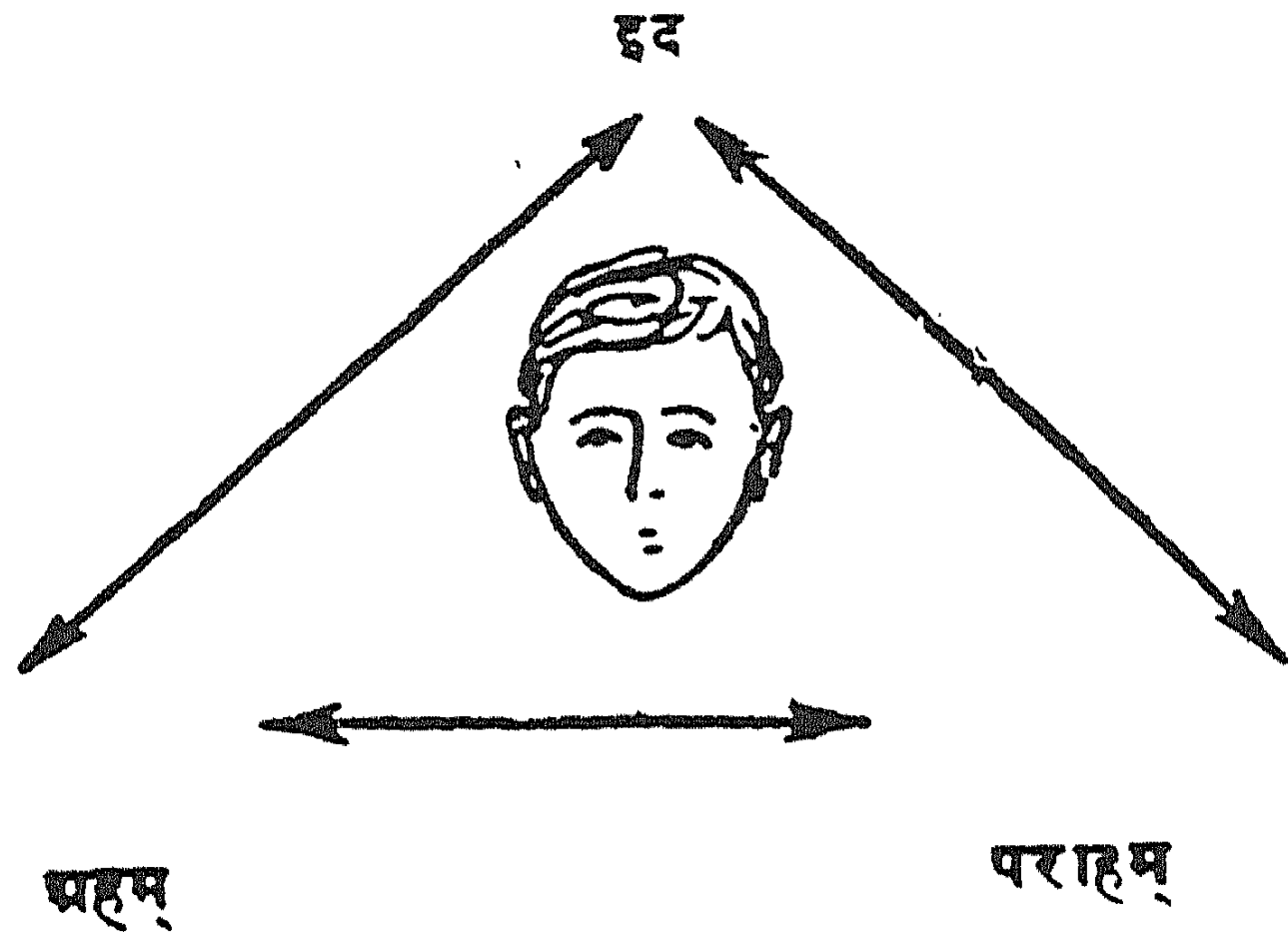
कहा होगा कि आप सबर से काम लें; पहले आप उसे खरीदें, उसका दाम चुकायें, तब उसे लें। आपके अहम् को मालूम था कि यदि आपने 'बिगड़े हुए लड़के' इद की बात मान ली और लुभावनी मिठाई यूँ ही हथिया ली, तो आप पकड़े जायेंगे और दंडित होंगे।

व्यक्तित्व का तीसरा भाग पराहम् है। पराहम् आपकी अंतरात्मा और आदर्श दोनों है। जहां इद की सारी ऊर्जा, प्रेम और घृणा की दो प्रबल आन्तरिक प्रेरणाओं से प्राप्त होती है, वहां पराहम् का निर्माण बाह्य जगत और विशेषतः माता-पिता द्वारा होता है। पुरस्कार और दंड द्वारा, वे सही-गलत सम्बन्धी अपने विचारों को आप में प्रतिष्ठित करते हैं।

पराहम् भी मनमानी करना चाहता है। इसके लिए वह अहम् को या तो पुरस्कृत करता है या दंडित। संतोष और गर्व की भावनाएं पुरस्कार हैं। श्लानि और पाप की भावनाएं दंड हैं। कभी-कभी भावनाएं इतनी प्रबल होती हैं कि आप अपने को नये वस्त्रों द्वारा पुरस्कृत करते हैं या स्वयं को ऐसे सरदर्द या पेट की गड़बड़ी से दंडित करते हैं जिनका कोई शारीरिक कारण नहीं होता। यह सब बातें बिना आपके जाने भी हो सकती हैं। क्या कभी ऐसा हुआ है कि आप दुःखद दोषी भावना से ग्रस्त हैं हालांकि आपको याद नहीं, आपने कोई बुरा काम किया है? कारण शायद यह रहा होगा कि पराहम् आपको दंड दे रहा था, इसलिए नहीं कि आपने कोई गलत काम किया था बल्कि इसलिए कि आपने कोई गलत काम करने के बारे में सोचा था !

इस प्रकार इद, अहम् और पराहम्—ये तीनों हमारे व्यक्तित्व के अंग हैं। इद अर्थात् 'मैं चाहता हूँ', अहम् अर्थात् 'मैं कर सकता हूँ' और पराहम् अर्थात् 'मुझे करना चाहिए' या 'मुझे नहीं करना चाहिए'। इन तीनों की कभी-कभी तो खूब निभती है और कभी-कभी नहीं निभती।

आइये, एक क्षण के लिए हम अपने व्यक्तित्व की तुलना वायुयान की उड़ान से करें। यात्री (इद) कहता है, 'मैं शिकागो जाना चाहता हूँ।' विमान-चालक (अहम्) कहता है, 'मैं आपको शिकागो ले जा सकता हूँ।' नियंत्रण-मीनार (पराहम्) विमान-चालक से कहती है, 'तुम्हारी उड़ान को स्वीकृति दी जाती है। 500 मील प्रति घंटा से तेज मत उड़ना।' उसी समय विमान-चालक को एक तूफान (बाहरी दबाव) की सूचना मिलती है जिसमें से होकर उसे उड़ना होगा। एक अच्छी यात्रा के लिए सब व्यवस्था ठीक हो गयी है। यात्री (इद) जानता है कि उसे कहां जाना है। विमान-चालक (अहम्) उसे वहां पहुंचा सकता है, यद्यपि उसे तूफान में से होकर उड़ना होगा। नियंत्रण-मीनार (पराहम्) उड़ान की स्वीकृति दे देता है।



परन्तु यदि सब बातों में तालमेल न हो तो क्या होगा? मान लीजिए यात्री जल्दी में है और वह चाहता है कि विमान-चालक 600 मील प्रति घंटा की रफ्तार से उड़े। क्या विमान-चालक इस तेज रफ्तार से उड़कर यात्री को संतुष्ट करे और नियंत्रण-मीनार की अवज्ञा करे? या विमान-चालक नियंत्रण-मीनार की आज्ञा माने और यात्री को नाराज करे? वह चाहे कुछ भी करे, कोई न कोई नाराज अवश्य होगा।

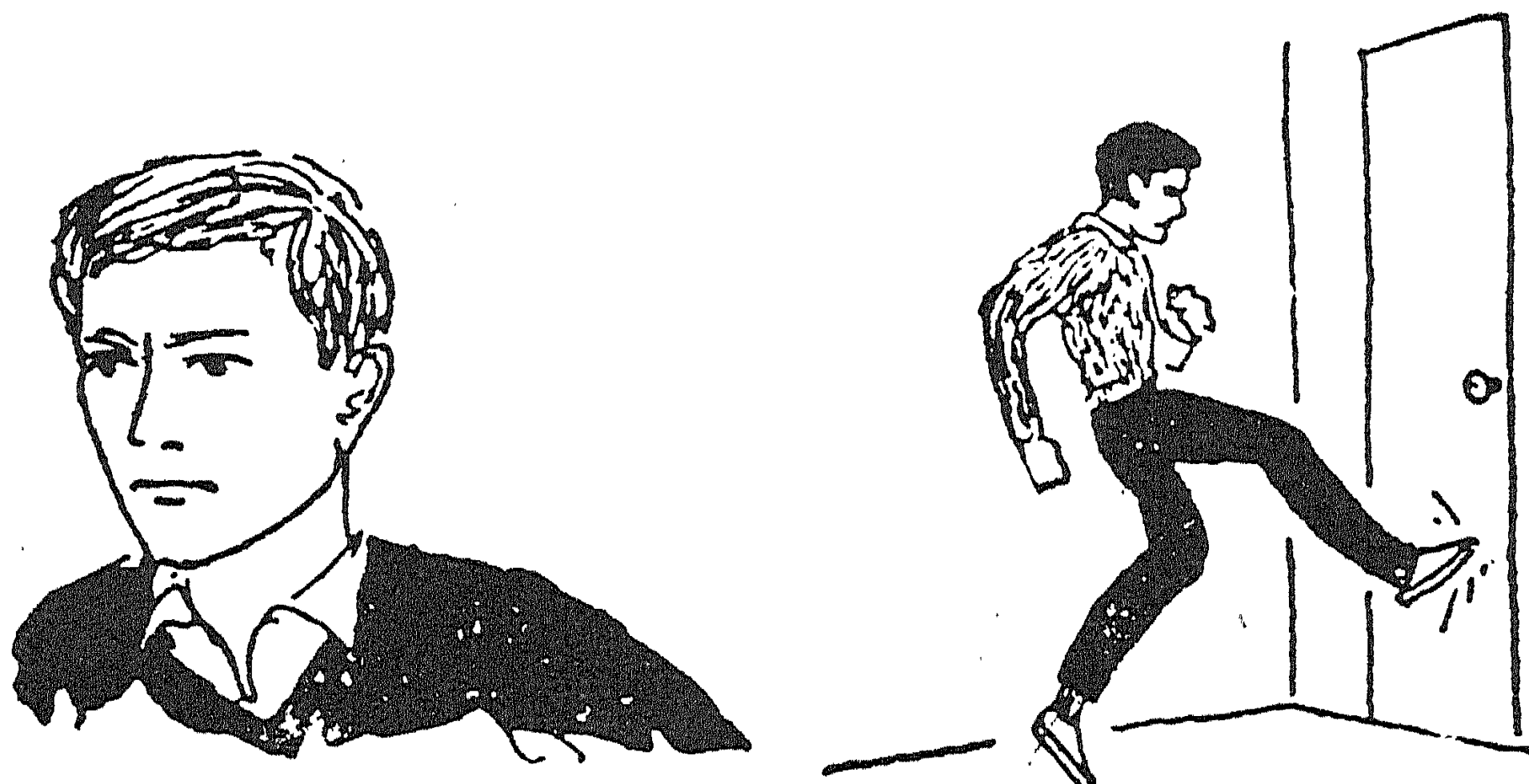
हमारे व्यक्तित्व में, इद, अहम् और पराहम् के बीच ऐसे संघर्ष उत्पन्न होते रहते हैं। यदि अहम् इद की बात मानता है तो पराहम् रुष्ट होता है। हम पहले कुछ तरीके बता चुके हैं जिनसे पराहम्, अहम् को दंड दे सकता है। इसके विपरीत यदि अहम् इद की बात नहीं मानता और पराहम् की मानता है तो इद फिर भी अपनी इच्छा पूरी करने की कोशिश करता है। आइये, हम उन कुछ उपायों से परिचित हों जिससे अहम् ऐसे संघर्षों के दुष्परिणामों से अपनी रक्षा कर सकता है।

व्यक्तित्व के शेष अंगों तथा बाह्य जगत के आक्रमण से अपनी रक्षा करने के लिए अहम् को बहुत-सी युक्तियों की आवश्यकता होती है। अहम् की इन युक्तियों को रक्षात्मक युक्तियाँ कहते हैं। रक्षात्मक युक्तियाँ अनेक प्रकार की हैं परन्तु हममें से हर एक केवल कुछ प्रकार की प्रक्रियाओं को बार-बार इस्तेमाल करता है।

विमान-यात्रा की कहानी को फिर ले लें। विमान चालक यदि यात्री की बात नहीं मानता तो सम्भव है यात्री कह दे कि चूंकि वह शिकागो समय से नहीं पहुंचेगा अतः उसे क्लीव लैण्ड उतार दिया जाए। वह शिकागो जाने का विचार छोड़ देगा और क्लीव लैण्ड चला जाएगा। जब किसी कारणवश इद को वांछित वस्तु नहीं मिलती तो वह उसकी जगह किसी अन्य वस्तु के पीछे पड़ जाता है। इस रक्षात्मक युक्ति को उदात्तीकरण कहते हैं।

उन रक्षात्मक युक्तियों में, जिनका बहुत प्रयोग किया जाता है, एक विस्थापन

है। जब आप किसी मित्र से गरमागरम बहस करने के बाद घर जाकर अपनी मां के ऊपर बरस पड़ते हैं तब आप विस्थापन का उदाहरण उपस्थित करते हैं। जो भावनाएं एक व्यक्ति के प्रति थीं वे विस्थापित होकर दूसरे कम खतरनाक व्यक्ति के प्रति मोड़ दी जाती हैं। आप अपने मित्र को खरी-खोटी नहीं सुनाते क्योंकि वह बहुत आसानी से कह सकता है कि आप जहन्नुम में जाएं। उसके बजाय आप अपनी मां पर चिल्लाते हैं क्योंकि उसके प्यार पर आप भरोसा कर सकते हैं। अब, जब कभी आप अपने परिवार के किसी सदस्य पर झल्लाएं दरवाजे को ठोकर मारें या पत्थर फेंकें तब जरा रुकें और समझने की कोशिश करें कि कहीं यह मामला विस्थापन का तो नहीं है।



शायद सबसे महत्वपूर्ण रक्षात्मक युक्ति वह है जो हमें किसी अप्रिय घटना से अनभिज्ञ बना देती है। अचेतन मन, अप्रिय अनुभवों और स्मृतियों पर पर्दा डाल देता है ताकि आप उनके अस्तित्व से अनभिज्ञ रहें। इस रक्षात्मक युक्ति को दमन कहते हैं।

फ्रायड ने अपने ही जीवन से दमन का एक उदाहरण दिया है। कोई व्यक्ति उनसे किसी ऐसे ग्रीष्मकालीन विश्राम-स्थल की बात कर रहा था जहां तीन होटल थे। फ्रायड उस स्थान पर कई बार जा चुके थे लेकिन वे जोर देकर कहते रहे कि वहां केवल दो होटल हैं। जब उन्हें तीसरे होटल का नाम बताया गया तब फ्रायड को समझ आया कि उस होटल का उनकी चेतन-स्मृति में दमन हो गया था क्योंकि वह एक ऐसे डॉक्टर के नाम की याद दिलाता था जिसे वे पसन्द नहीं करते थे।

दमन की तरह ही एक दूसरी अति प्रचलित रक्षात्मक युक्ति है इनकार। दमन में मन का अचेतन भाग, अप्रिय विचार या भावना को चेतन भाग से बाहर निकाल देता है। परन्तु इनकार में आप जान-बूझकर इनकार करते हैं। आप सच्चाई को जानते हैं परन्तु उसे स्वीकार नहीं करते। विकट परिस्थितियों में अपने बचाव के



लिए लोग, जानते-बूझते, जो झूठ बोलते हैं, वह इनकार का उदाहरण है। मनोविश्लेषणात्मक उपचार के दौरान रोगी जिन रक्षात्मक युक्तियों का सबसे अधिक उपयोग करते हैं उनमें से एक इन्कार भी है।

क्या आपने कभी किसी से झगड़ा या बहस की है और अपने कार्य को यह कहकर उचित ठहराया है कि 'वह मुझसे घृणा करता है और मुझे सदा परेशान करता है अतः यदि हमारे बीच कलह हुआ तो इसमें मेरा दोष नहीं है।' यह सामान्य स्थिति, प्रक्षेपण नाम की रक्षात्मक युक्ति का बहुत स्पष्ट उदाहरण है। प्रक्षेपण का उपयोग, अहम् पर पड़े दबाव को दूर करने के लिए किया जाता है। इसमें भावना के कर्ता को बदल दिया जाता है। प्रक्षेपण 'मैं उससे घृणा करता हूँ' को 'वह मुझसे घृणा करता है' में बदल देता है। वह 'मेरी अंतरात्मा मुझे परेशान करती है' को 'वह मुझे परेशान करता है' में बदल देता है। सिनेमा का प्रक्षेपक जिस तरह पर्दे पर परछाइयाँ डालता है, उसी तरह प्रक्षेप, उन विचारों और भावनाओं को, जिन्हें स्वीकार करना कठिन होता है, किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति पर आरोपित कर देता है। प्रक्षेप का उद्देश्य यह होता है कि व्यक्तित्व के अन्दर जो कठिन स्थितियाँ हों उन्हें वह पकड़कर बाहर रख दे क्योंकि वहाँ अहम् उनसे अधिक आसानी से निबट सकता है।

कभी-कभी अहम् को किसी आक्रमण का इतना जोरदार मुकाबला करना पड़ता है कि वह अपने आपको पूर्णतः उलट देता है। इस रक्षात्मक युक्ति को विपर्यय कहते हैं—इनका अधिक प्रचलित नाम प्रतिक्रियाजन्य वृत्ति है। क्या आप ऐसे लोगों को जानते हैं जो बहुत ही साफ-सुथरे रहते हैं? या जो बहुत ही उदार या दयालु होते हैं? या बहुत ही कठोर और रोबदार होते हैं? हो सकता है कि कोई व्यक्ति गन्दा और लापरवाह रहना पसन्द करता हो, परन्तु इसे बहुत बुरी बात भी समझता हो। विपर्यय या प्रतिक्रियाजन्य वृत्ति उसे आवश्यकता से अधिक साफ-सुथरा बना सकती है। कोई दूसरा व्यक्ति दुनिया से बेहद नाराज है। वह ऐसी भावना के लिए लज्जित है और विपर्यय उसे आवश्यकता से अधिक उदार और दयालु बता देता है। तीसरा व्यक्ति डरता है और प्रतिक्रियाजन्य वृत्ति उसे गुण्ड बना देती है और वह सदा झगड़े की तलाश में रहता है।

व्यक्तित्व के भीतर और बाहर समस्याओं और संघर्षों का सामना करते समय हममें से हर एक रक्षात्मक युक्तियों का उपयोग करता है। जन्म के साथ ही शिशु रक्षात्मक युक्तियों का निर्माण करने लगता है। जब उसे पहली बार, दूध के लिए एक मिनट भी प्रतीक्षा करनी पड़ती है तब वह अपनी असुविधा को समझने और दूर करने के उपाय निकालने लगता है। फ्रायड के मनोविश्लेषण-सिद्धान्त की सबसे मौलिक धारणाओं में से एक यह है कि शैशव काल के इन अनुभवों का उस

व्यक्तित्व के निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण हाथ होता है जो जीवन भर व्यक्ति के साथ रहता है ।

शिशु लगभग सारा का सारा इद होता है । यदि नवजात शिशु बोल सकता तो वह केवल इन्हीं शब्दों का उच्चारण करता, 'मैं चाहता हूं, मैं चाहता हूं, मैं चाहता हूं ।' जैसे-जैसे वह बढ़ता है, उसके अहम् का विकास होता है और वह वाञ्छित वस्तुओं की प्राप्ति के सर्वोत्तम तरीके मालूम कर लेता है । पराहम् सबसे बाद में विकसित होता है, तब जब कि माता-पिता बच्चे को भले-बुरे की तमीज कराते हैं ।

फ्रायड का विश्वास था कि वयस्क अवस्था में होने वाली प्रत्येक आधि का कारण या तो शैशव अवस्था की कोई आधि होती है या शैशवकाल में हुआ कोई ऐसा कटु अनुभव है जिसने व्यक्तित्व पर स्थायी निशान छोड़ दिया है । उनका कहना था कि बच्चे के मानसिक और भावात्मक कार्य-कलाप को जितना महत्व देना चाहिए उतना नहीं दिया जाता । बच्चों को सब प्रकार की समस्याओं को सुलझाना और सब प्रकार की आपत्तियों का सामना करना पड़ता है । फ्रायड के बाद मनोविकार-विज्ञान में कुछ दृष्टिकोण विकसित हुए । इनमें बहुत कम में मतैक्य था । मतैक्य वाली थोड़ी-सी बातों में एक यह थी कि शैशव अवस्था के अनुभवों का महत्व सबने स्वीकार किया ।

इस शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में फ्रायड के इस सिद्धान्त ने एक तूफान खड़ा कर दिया कि काम-वासना (सेक्स), व्यक्तित्व की सबसे प्रबल प्रेरक शक्तियों में से एक है । आज भी लोग इस बात को स्वीकार करने में कठिनाई अनुभव करते हैं । फ्रायड के इस विचार पर मचे शोर का कारण अंशतः यह था कि लोग यह नहीं समझ सके कि काम (सेक्स) से फ्रायड का क्या अभिप्राय था, फ्रायड ने काम (सेक्स) शब्द का उपयोग बहुत व्यापक अर्थों में किया था । उसमें केवल प्रेम का ही नहीं बल्कि हर प्रकार के व्यक्तिगत आनन्दों और तुष्टियों का समावेश था । उनकी परिभाषा के अनुसार, शैशव से लेकर वृद्धावस्था तक प्रत्येक व्यक्ति पर काम-वृत्तियों का प्रभाव पड़ता है ।

सिगमंड फ्रायड ने आधुनिक विज्ञान की एक महान् सफलता को प्राप्त किया । जिन सिद्धान्तों ने साठ साल पूर्व संसार को चकित कर दिया था । उन्हें आज बहुत से लोग, मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के क्षेत्र में, स्वीकार करते हैं । कुछ लोगों ने फ्रायड के कुछ आधारभूत विचारों को सत्य माना है और उनके जिन विचारों को उन्होंने स्वीकार नहीं किया है, विकसित और परिवर्तित किया है । परन्तु प्रत्येक मामले में फ्रायड वह आधार-शैल सिद्ध हुए जिस पर बाद का चिन्तन विकसित हुआ ।



## आपेक्षिकता-सिद्धान्त

आपेक्षिकता-सिद्धान्त के विषय में एक मजाक कुछ वर्षों पूर्व बहुत लोकप्रिय था। यह मजाक स्मिथ नामक एक प्रोफेसर के बारे में था, जिन्होंने विज्ञान न जानने वालों को आपेक्षिकता-सिद्धान्त समझाने के लिए एक पुस्तक लिखी थी। किसी ने उस पुस्तक के बारे में लिखा था। प्रोफेसर स्मिथ, अलबर्ट आइन्स्टाइन से भी अधिक प्रतिभाशाली हैं। जब आइन्स्टाइन ने पहले-पहल आपेक्षिकता-सिद्धान्त की व्याख्या की तब सारे विश्व में केवल बारह वैज्ञानिकों ने उनकी बात को समझा था। परन्तु जब प्रोफेसर स्मिथ उसकी व्याख्या करते हैं तो एक भी व्यक्ति नहीं समझ पाता।

निश्चय ही हम वह गलती नहीं करना चाहते जो प्रोफेसर स्मिथ ने की थी। परन्तु आज अधिकाधिक लोग आपेक्षिकता सिद्धान्त को समझना चाहते हैं। अकेले न्यूयार्क के सार्वजनिक पुस्तकालय में ही 500 से अधिक पुस्तकें आपेक्षिकता-सिद्धान्त पर हैं। आधी शताब्दी से पहले, आइन्स्टाइन ने आपेक्षिकता-सिद्धान्त की जो प्रथम व्याख्या की थी उससे संसार स्तब्ध रह गया था। उसके बाद वैज्ञानिक और अवैज्ञानिक दोनों इस सिद्धान्त को स्वीकार कर चुके हैं।

आपेक्षिकता-सिद्धान्त को परोक्षरूप में एक ऐसे प्रश्न ने जन्म दिया था जिस पर वैज्ञानिक शताब्दियों से मनन करते आ रहे थे। प्रश्न था—एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रकाश किस तरह जाता है? बीसवीं शताब्दी में अधिकांश वैज्ञानिक सहमत थे कि प्रकाश भी समुद्री तरंगों या ध्वनि तरंगों की तरह एक प्रकार की तरंग-गति है। समुद्र की तरंगें पानी को गति देती हैं और ध्वनि-तरंगों को वायु या कोई अन्य पदार्थ चाहिए जिसे गति दी जा सके। परन्तु प्रकाश-तरंगों की स्थिति क्या है? कभी-कभी प्रकाश वायु में से और कभी-कभी कांच जैसे किसी पारदर्शक पर्दा या जल में से गमन करता है। परन्तु तारों से जो प्रकाश हम तक आता है उसकी स्थिति क्या है? अंतरिक्ष का अधिकांश भाग रिक्त है और उसमें वायु बिल्कुल नहीं है। तो प्रकाश रिक्त स्थान में भी गमन कर सकता होगा।

वैज्ञानिक इस विचार से बहुत परेशान थे कि किसी पदार्थ को गति दिए बिना ही प्रकाश-तरंगें गति करती हैं। अतः उन्होंने 'किसी पदार्थ' की कल्पना कर ली



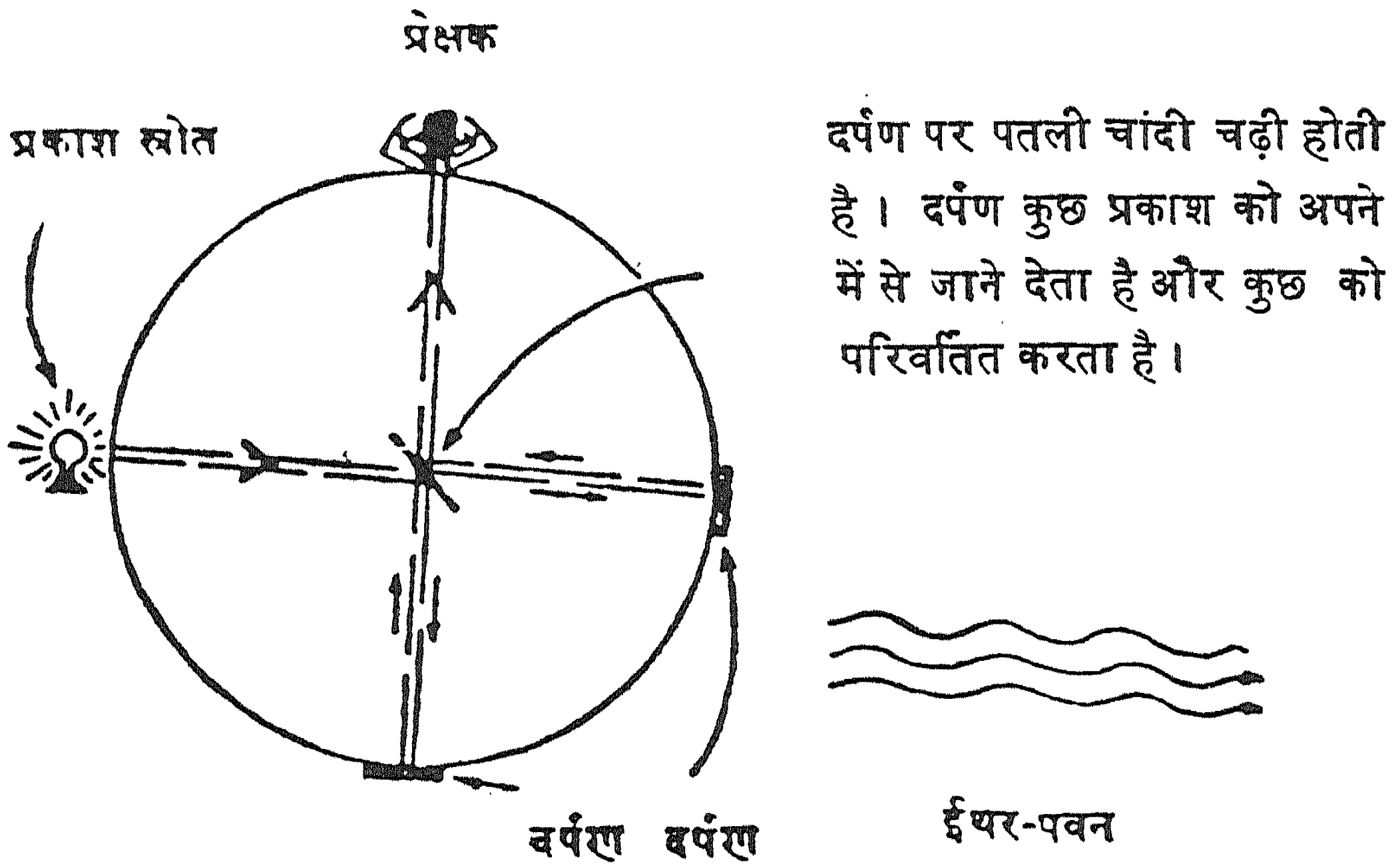
और उसका नाम रखा ईथर। (यह ईथर उस ईथर से सर्वथा भिन्न है जिसका उपयोग शल्य क्रिया के समय रोगियों को बेहोश करने के लिए किया जाता है।) यह मान लिया गया कि ईथर दृष्टाण्ड में सब जगह है, वह सब रिक्त स्थानों को भरे रखता है और सब पदार्थों में भी व्याप्त है। कहा जाता था कि ईथर को देखना या महसूस करना असंभव है क्योंकि वह हमारे शरीरों में भी व्याप्त है। वैज्ञानिक समझाते रहते थे कि विद्युत् और चुम्बकत्व किस प्रकार ईथर में से गति करते हैं। चूंकि यह असम्भव प्रतीत होता था कि विद्युत् रिक्त स्थान में से गति कर सकती है, अतः बहुतों को विश्वास हो गया था कि ईथर का अस्तित्व है।

1881 में दो अमरीकी वैज्ञानिकों, अलबर्ट माइकेल्सन (1852-1931) और एडवर्ड मोर्ले (1838-1923) ने यह मालूम करने का निश्चय किया कि क्या वास्तव में ईथर कोई चीज है। उन्हें मालूम था कि हमारी पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती हुई अंतरिक्ष में से गति करती रहती है। अतः उन्हें आशा थी कि इस गति से 'ईथर पवन' उत्पन्न होगा। ठीक ऐसा ही पवन जैसा कि आप दौड़ते समय महसूस करते हैं, भले ही वायु स्थिर हो।

अपने प्रयोगों में माइकेल्सन और मोर्ले ने प्रकाश-किरणों को सब दिशाओं में बिल्कुल समान दूरियों तक भेजा। उनको आशा थी कि यदि वास्तव में ईथर-पवन जैसी कोई चीज है तो कुछ किरणों का वेग, पवन की दिशा में, तीव्रतर हो जाएगा और कुछ किरणों का वेग, पवन की विरुद्ध दिशा में, मंदतर हो जाएगा। बिल्कुल ठीक-ठीक माप कर उन्होंने मालूम किया कि ईथर-पवन की दिशा में, उससे विरुद्ध दिशा में और उसके आर-पार, समान दूरी तय करने में प्रकाश को कितना समय लगता है। परिणाम क्या था? प्रत्येक दिशा में प्रकाश, समान दूरी को समान समय में तय कर गया था! इसका अर्थ यह हुआ कि यदि ईथर-पवन है तो भी वह प्रकाश के वेग को प्रभावित नहीं करता। प्रसंगवश कह दें कि रिक्तक में प्रकाश का वेग 1,86,000 मील प्रति सेकण्ड है।

कई वैज्ञानिकों ने इसकी सफाइयां देनी शुरू कर दीं कि माइकेल्सन और मोर्ले को ईथर-पवन क्यों नहीं मिला। फिट्जेराल्ड (1851-1901) ने 1893 में जो विचार सामने रखा वह हमारे लिए महत्त्व का है। उन्होंने माइकेल्सन और मोर्ले के प्रयोगों से प्राप्त परिणामों की यह व्याख्या की कि ईथर-पवन में गमन करते समय उनका उपकरण सचमुच सिकुड़ गया था। उन्होंने उपकरण की तुलना उस जहाज से की जो जल में चलते समय थोड़ा छोटा हो जाता है क्योंकि उसके अग्रभाग पर जल का दबाव पड़ता है।

फिट्जेराल्ड के लिए किसी को भी यह समझाना कठिन हो रहा था कि उनकी धारणा ठीक है। एक तो इसलिए कि उस धारणा को सिद्ध करना असम्भव प्रतीत होता था। फिट्जेराल्ड का कहना था कि कोई भी वस्तु गमन करते समय गति की



दिशा में छोटी हो जाती है और वेग जितना अधिक होता है वह उतनी ही अधिक छोटी हो जाती है। इस कथन की सत्यता को प्रमाणित करने का एक ही तरीका है कि गतिमान वस्तु के साथ किसी प्रकार की मापनी जुड़ी हो। परन्तु कठिनाई यह है कि चूंकि मापनी भी गतिशील रहेगी अतः वह भी छोटी हो जाएगी!

दो वर्ष बाद 1885 में एक डच वैज्ञानिक, हैन्ड्रिक ए० लोरेन्ट्ज (1853-1928), ने फिट्जेराल्ड को उसकी धारणा का एक गणितीय आधार बताया। आज वह आधार फिट्जेराल्ड-लोरेन्ट्ज सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध है। इस सिद्धान्त द्वारा लम्बाई में हुए वास्तविक परिवर्तन का हिसाब लगाया जा सकता है। उदाहरणार्थ यदि कोई मोटरकार 50 मील प्रति घंटा दौड़ रही हो तो उसकी परिवर्तित लम्बाई मालूम करने के लिए उसकी मूल लम्बाई को 0.99999999999999 से गुणा करना होगा अर्थात् उसकी लम्बाई में 0.00000000000002 इंच कमी हो जाएगी। निश्चय ही इस कमी को विचार में नहीं लिया जा सकता। यदि कोई वस्तु लगभग प्रकाश के वेग से चले तो कहीं जाकर उसकी लम्बाई में हुआ परिवर्तन विचार में लिया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि आप कल्पना करें कि कोई वस्तु 93,000 मील प्रति सेकंड की चाल से गमन कर रही है तो उसकी लम्बाई मूल लम्बाई की 86 प्रतिशत हो जाएगी।

फिट्जेराल्ड के, छोटा होने या सिकुड़ने सम्बन्धी सिद्धान्त ने इसी हास्य-कविता के रचयिता को प्रेरणा दी थी :

एक युवक था जिसका नाम था फिस्क  
 उसकी गेंदबाजी थी बहुत ब्रिस्क (तेज)  
 इतना तेज था उसका ऐक्शन (क्रिया)  
 कि फिट्जेराल्डी कान्ट्रैक्शन (सिकुड़न)  
 ने कर दिया उसकी गेंद को डिस्क (चकती)

सारे विश्व के वैज्ञानिकों ने माइकेल्सन-मोर्ले प्रयोगों और फिट्जेराल्ड-लोरेन्ट्ज सिद्धान्त का अध्ययन किया। इस समस्या पर मगज मारने वालों में एक छब्बीस वर्षीय युवक भी था जो एक तृतीय श्रेणी का तकनीकज्ञ था और बर्न (स्विट्जरलैण्ड) के पेटेन्ट कार्यालय में कार्य करता था। यह वैज्ञानिक अध्यापक बनने की कोशिश कर चुका था परन्तु चन्द महीनों की स्थानापन्न अध्यापकी के सिवाय उसके भाग्य में और कुछ न आया। पेटेन्ट कार्यालय के अपने कार्य को वह 'मोची का काम' कहता था फिर भी उससे प्रसन्न था क्योंकि उसकी नौकरी सुरक्षित थी और उसे उन वैज्ञानिक समस्याओं के बारे में सोचने को समय मिल जाता था जिनमें उसकी वास्तविक दिलचस्पी थी। इस वैज्ञानिक का नाम था अलबर्ट आइन्स्टाइन (1879-1955)।

उस समय जो प्रश्न वैज्ञानिकों को परेशान कर रहे थे और घपले में डाल रहे थे, उनके उत्तर आइन्स्टाइन ने मालूम किए। माइकेल्सन-मोर्ले और फिट्जेराल्ड-लोरेन्ट्ज ने जो कुछ किया था उसके महत्त्व और तत्त्व को उनकी प्रतिभा ने हृदयंगम कर लिया। उनके कार्य को आधार बनाकर उन्होंने भौतिक जगत विषयक एक नवीन और चमत्कारपूर्ण सिद्धान्त, आपेक्षिकता-सिद्धान्त से बीसवीं शताब्दी के विज्ञान में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। यह सिद्धान्त दो भागों में प्रकाशित हुआ—आपेक्षिकता का विशेष सिद्धान्त 1905 में और आपेक्षिकता का सामान्य सिद्धान्त 1916 में।

आपेक्षिकता का विशेष सिद्धान्त आइन्स्टाइन की कुछ मान्यताओं या विश्वासों पर आधारित है। प्रथम मान्यता, जिस पर इसका नाम पड़ा है, यह है कि सब गतियां आपेक्षिक हैं। उदाहरणार्थ यह कहने का कोई विशेष अर्थ नहीं है कि अमुक मोटर कार 50 मील प्रतिघंटा की चाल से जा रही है। इस कथन को अधिक अर्थपूर्ण बनाने के लिए आपको कहना चाहिए कि पृथ्वी के साक्षेप वह 50 मील प्रति घंटा की चाल से जा रही है। परन्तु यह कथन भी कार की असली या निरपेक्ष चाल नहीं बताता क्योंकि हम जानते हैं कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती रहती है और सूर्य के चारों ओर अपनी कक्षा में चलती रहती है। सूर्य भी गति से युक्त है और वह हमारी मन्दाकिनी के भीतर एक कक्षा में घूमता है और हमारी मन्दाकिनी भी अन्य मन्दाकिनियों की तरह अंतरिक्ष में गतिमान है। अतः कार की निरपेक्ष गति मालूम करना वस्तुतः असम्भव है क्योंकि ब्रह्माण्ड में कोई भी वस्तु

ऐसी नहीं है जो चल न रही हो। ब्रह्माण्ड में कोई भी वस्तु स्थिर या अचल नहीं है जिसके सापेक्ष अन्य वस्तुओं की गति मालूम की जाए। पृथ्वी पर चल रही किसी वस्तु की चाल के बारे में जब हम चर्चा करते हैं तब यह बात मान ली जाती है कि यह चाल पृथ्वी के सापेक्ष है, यद्यपि शब्दों में ऐसा प्रायः नहीं कहा जाता।

जब आइन्स्टाइन ने ईथर के ऊपर यह बात लागू की कि सब गतियां सापेक्ष होती हैं, तब जो परिणाम सामने आया उससे वे हैरान रह गए। उन्होंने महसूस किया कि ईथर का पता पाना असम्भव है। ईथर-पवन या अन्य किसी उपाय से यदि ईथर के अस्तित्व को जाना जा सकता है तो उसका अर्थ होगा कि ईथर स्थिर और अचल है। चूंकि आइन्स्टाइन का विश्वास था कि सब गतियां सापेक्ष हैं, अतः ब्रह्माण्ड में कोई भी वस्तु स्थिर और अचल नहीं हो सकती थी। यदि ईथर अचल है तो ब्रह्माण्ड में केवल वही एक ऐसी वस्तु है जो गति से युक्त नहीं है और किसी अन्य वस्तु के सापेक्ष नहीं है। इस बात को आइन्स्टाइन स्वीकार नहीं कर सकते थे। अतः आइन्स्टाइन ने यह तो नहीं कहा कि ईथर नहीं है परन्तु उन्होंने यह अवश्य कहा कि उसका पता पाना असम्भव है।

आपेक्षिकता के विशेष सिद्धान्त की दूसरी आधारभूत मान्यता एक ऐसी धारणा से निकली है जो सैकड़ों वर्षों से स्वीकृत रही है। यह मान्यता समरूप गति वाले वस्तु-समूह या जन-समूह (तंत्र) पर लागू होती है। समरूप गति का अर्थ यह है कि तंत्र या तो स्थायी चाल से चल रहा है (चाल न कम होती है न अधिक) या बिलकुल ही नहीं चल रहा है। मान्यता यह है कि समरूप गति वाले या स्थिर तंत्र में आप कोई भी प्रयोग करके यह नहीं मालूम कर सकते कि तंत्र चल रहा है या स्थिर है।

अगली बार जब आप किसी ऐसी ट्रेन या कार में हों जो स्थायी चाल से सीधी जा रही हो अर्थात् जो समरूप गति से युक्त हो तब यह प्रयोग कीजिए। अपने दाहिने हाथ में एक पैसा लीजिए और उसे बाएं हाथ के ठीक ऊपर करके गिरा दीजिए। आप शायद यह सोचें कि जितना समय पैसे को गिरने में लगता है उतने समय में कार आपको कुछ दूर आगे ले जाती है, इसलिए पैसा आपके बाएं हाथ में न गिरकर बाईं कलाई पर गिरेगा। परन्तु आप पाएंगे कि पैसा ठीक आपके हाथ में गिरता है। जब तक कार और उसके भीतर आप समरूप गति से चलते रहेंगे तब तक पैसा वैसे ही गिरेगा जैसे वह आपके स्थिर होने की हालत में गिरता। यदि कार में खिड़कियां न होतीं तो किसी प्रयोग द्वारा यह मालूम करना असम्भव होता कि आप स्थिर हैं कि समरूप गति से चल रहे हैं। समरूप गति से चलते हुए तंत्र में किए गए प्रयोगों से वे ही परिणाम प्राप्त होंगे जो किसी स्थिर प्रयोगशाला में किए गए प्रयोगों से प्राप्त होंगे।

समरूप गति वाले तंत्रों के बारे में ज्ञात इस प्राचीन नियम को आइन्स्टाइन ने अपना लिया और थोड़ा-सा बढ़ा दिया। जो नियम समरूप गति वाले तंत्रों में



अपरिवर्तित बने रहते थे, उनमें उन्होंने उन नियमों को भी शामिल किया जो प्रकाश की गतिविधि की व्याख्या करते थे। उनका कहना था कि प्रेक्षक के लिए प्रकाश की चाल, रिक्तक, सदा एक समान होती है। यह तथ्य आपेक्षिकता-सिद्धान्त की आधारशिला बन गया। आइन्स्टाइन ने लिखा कि प्रकाश-स्रोत चाहे जैसे भी चल रहा हो या प्रकाश-ग्राही चाहे जैसे भी चल रहा हो, प्रेक्षक के लिए प्रकाश की चाल सदा एक समान होती है—1,86,000 मील प्रति सेकण्ड।

यह सिद्धान्त कि प्रेक्षक के लिए प्रकाश की चाल सदा एक समान रहती है, साधारण बुद्धि के विरुद्ध प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ, हम सभी जानते हैं कि चालें कैसे जोड़ी या घटाई जाती हैं। यदि आप 50 मील प्रति घंटा चल रही किसी ट्रेन में, 5 मील प्रति घंटा की चाल से आगे की ओर चल रहे हों तो भूमि के सापेक्ष आपकी चाल  $50 + 5$  या 55 मील प्रति घंटा होगी। इसी तरह यदि आप उसी ट्रेन में 5 मील प्रति घंटा की चाल से पीछे की ओर चलें तो भूमि के सापेक्ष आपकी चाल  $50 - 5$  या 45 मील प्रति घंटा होगी।

आपेक्षिकता-सिद्धान्त-विषयक अपने मूल निबन्ध में आइन्स्टाइन ने एक ऐसी परिस्थिति का वर्णन किया है जिसमें आप चालों को न जोड़ सकते हैं न घटा सकते हैं। मान लीजिए कि रेल की पटरियों के साथ-साथ संकेतक का प्रकाश चमक रहा है और 1,86,000 मील प्रति सेकण्ड की चाल से चल रहा है। यदि कोई ट्रेन उस प्रकाश की ओर जा रही हो तो ट्रेन में स्थित प्रेक्षक यह आशंका करेगा कि संकेतक के प्रकाश की चाल  $= 1,86,000$  मील प्रति सेकण्ड + ट्रेन की चाल होगी। जब ट्रेन संकेतक से आगे चली जाएगी तब इसके प्रकाश का वेग  $= 1,86,000$  मील प्रति सेकण्ड-ऋण ट्रेन की चाल होगा। फिर भी आइन्स्टाइन का कहना है कि प्रेक्षक के लिए प्रकाश का वेग सदा एक समान होता है, चाहे वह किसी भी चाल से चल रहा हो या किसी भी दिशा में जा रहा हो। दूसरे शब्दों में प्रकाश की ओर जाते हुए या उससे दूर जाते हुए ट्रेन की चाल चाहे जो भी हो, ट्रेन में सवार प्रेक्षक के लिए प्रकाश की चाल बिल्कुल एक समान होगी।

इस निरर्थक-सी प्रतीत होने वाली बात को अर्थपूर्ण बनाने के लिए हमें कहना पड़ेगा कि यदि प्रकाश की चाल में परिवर्तन नहीं होता तो किसी अन्य वस्तु में परिवर्तन होता होगा। आइन्स्टाइन का विचार था कि समय वेग से प्रभावित होता है। उन्होंने यह भी बताया कि गतिशील तंत्र में समय का प्रवाह मंद पड़ जाता है और तंत्र की गति जितनी तीव्र होगी समय का प्रवाह उतना ही मंद होगा। उदाहरणार्थ कल्पना कीजिए कि एक राकेट-चालक 12 बजे अपनी घड़ी पृथ्वी की किसी घड़ी से मिलाता है। फिर वह एक काल्पनिक यात्रा पर चल पड़ता है और ठीक 93000 मील प्रति सेकण्ड की चाल से सारे समय यात्रा करता है। जब वह जमीन पर उतरता है तब धरती वाली घड़ी में एक बजा होता है परन्तु उसकी घड़ी में

12.54 होता है। (इस सबका ठीक समय न बताने वाली घड़ियों से कोई सम्बन्ध नहीं। इस कहानी की दोनों घड़ियां बिलकुल ठीक चलती रही हैं।)

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि गतिशील तंत्रों में समय का प्रवाह मंदतर होता है। जब राकेट प्रकाश के आधे वेग, 93,000 मील प्रति सेकण्ड से उड़ता है तब स्थिर तंत्र में और उसमें समय के प्रवाह की गति 10 और 9 के अनुपात में होती है। यही कारण है कि पृथ्वी की घड़ी में जितनी देर में एक घंटा बीता उतनी देर में, उतनी ही ठीक चलने वाली, राकेट की घड़ी में केवल 54 मिनट व्यतीत हुए जो एक घंटा का  $\frac{9}{10}$  है।

हमारे पुराने विश्वासों को गड़बड़ाने के लिए इतना ही काफी था; लेकिन आपेक्षिकता-सिद्धान्त ने तो यह भी सिद्ध कर दिया कि पदार्थ की संहति वेग के साथ बढ़ती है। (संहति बहुत कुछ भार के समान है। वैसे संहति की यथार्थ परिभाषा है किसी पदार्थ का गति-परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध।) वस्तु कितनी तेजी से चलती है, उसकी संहति उतनी ही अधिक होती है। उदाहरणार्थ यदि 150 पौंड भारी व्यक्ति 1,61,000 मील प्रति सेकण्ड की असम्भव गति से चले तो उसकी-संहति या भार 300 पौंड हो जाएगा।

यह जानने के बाद कि चाल के अनुसार लम्बाई, समय और संहति में परिवर्तन होता है, हम इस विशेष सिद्धान्त द्वारा प्रदत्त एक अन्य महत्वपूर्ण और दिलचस्प धारणा पर आते हैं। चाल के साथ संहति बढ़ती जाती है और किसी वस्तु की चाल जैसे-जैसे बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उसकी संहति बढ़ती जाती है। उदाहरणार्थ यदि बंदूक की छोटी-सी गोली छोड़ी जाए जिसकी चाल प्रकाश की चाल की 99.999999999999 प्रतिशत हो तो उसकी संहति कई टन होगी। हमें ऐसा कोई तरीका नहीं मालूम है हमें 9 के इन अंकों से छुटकारा मिल जाए और हम गोली को प्रकाश की 100 प्रतिशत चाल से छोड़ सकें। यदि कोई वस्तु प्रकाश की चाल चले तो उसकी संहति अपरिमित हो जाएगी। यही बात लम्बाई के बारे में है। यदि कोई वस्तु प्रकाश की चाल से चले तो उसकी लम्बाई काल्पनिक संख्या में आती है और इसलिए असम्भव है। यद्यपि आइन्स्टाइन ने हमें एक अजीब और नयी दुनिया में पहुंचा दिया परन्तु अपरिमित संहति और काल्पनिक लम्बाई की बात उनके गले के नीचे भी नहीं उतरी। अतः वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कोई भी वस्तु प्रकाश से अधिक तेज नहीं चल सकती, चाहे वह कितनी भी हल्की क्यों न हो और उसे चलाने वाला बल कितना भी प्रबल क्यों न हो। इस विषय पर हास्य रस की एक कविता प्रचलित है—

एक लड़की थी जिसका नाम था जोन ब्राइट

वह चलती थी इतनी तेज कि पीछे रह जाती लाइट (प्रकाश)

एक दिन वह मचल पड़ी

आइन्स्टाइनी ढंग से चल पड़ी

जब वापस आई तो थी पिछली नाइट (रात)

आपेक्षिकता-सिद्धान्त ने बड़े साहस और सावधानी के साथ बाह्य जगत् की व्याख्या प्रस्तुत की। परन्तु यह सिद्धान्त ऐसा नहीं था जिसे पढ़ते ही वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालाओं में उसकी परीक्षा करने लगते। इस सिद्धान्त में ऐसे मापों की चर्चा थी जिनके बारे में इतना ही कहना काफी होगा कि वे हमारे दैनिक अनुभवों से परे थे।

इस सिद्धान्त के प्रथम प्रमाण, परमाणु-भौतिकी के क्षेत्र में किए गए अध्ययनों से प्राप्त हुए। परमाणुओं में ऐसे कण होते हैं जो उन चालों से बहुत अधिक तेज चलते हैं जिन्हें मापने के हम आदी हैं। कुछ कणों की चाल तो प्रकाश की चाल के आसपास की होती है। परमाणुओं से निकलने वाले इलेक्ट्रानों का अध्ययन करते समय वैज्ञानिकों ने देखा कि वे कुछ पदार्थों से विभिन्न चालों पर और विभिन्न संहतियों में निकल रहे हैं। प्रश्न था, ऐसा क्यों होता है? वैज्ञानिकों के विचार से सब इलेक्ट्रान एक समान होने चाहिए थे और वे इनके अनेक प्रकार के भिन्न-भिन्न भारों को समझ नहीं सके।

इसे अधिक अच्छी तरह समझने के लिए उन्होंने इस विशेष सिद्धान्त के उस समीकरण का उपयोग किया जो चाल के अनुसार संहति की वृद्धि के सम्बन्ध में काम आता है। उन्होंने पाया कि यदि विराम अवस्था में सब इलेक्ट्रानों की संहति समान मान ली जाए तो अत्यधिक तेज और विभिन्न चालों से चलने वाले इलेक्ट्रानों की संहतियों के विभिन्न होने का रहस्य स्पष्ट हो जाता है। इस बात ने आपेक्षिकता के विशेष सिद्धान्त का प्रथम प्रायोगिक प्रमाण प्रस्तुत किया।

1938 में इस सिद्धान्त का दूसरा भाग प्रयोग द्वारा सिद्ध किया गया। बेल टेलीफोन प्रयोगशालाओं में काम करते समय हर्बर्ट इब्स ने एक ऐसे उपकरण का निर्माण किया जो हाइड्रोजन के परमाणुओं को 1100 मील प्रति सेकण्ड की चाल से चला सकता था। यह तो मालूम है कि प्रत्येक परमाणु एक विशेष दर से कम्पन करता है। परमाणु का कम्पन-दर, समय मापने का एक साधन है। यद्यपि प्रकाश की चाल (1,86,000 मील प्रति सेकण्ड) की तुलना में 1100 मील प्रति सेकण्ड बहुत अधिक नहीं है फिर भी यह मालूम करने के लिए कि चाल के कारण काल मंद पड़ जाता है, यह एक अच्छा अवसर था। इब्स ने सचमुच पाया कि परमाणु जब 1100 मील प्रति सेकण्ड की रफ्तार से चलते थे तब वे विराम अवस्था की अपेक्षा मंदगति से कम्पन करते थे।

आपेक्षिकता के विशेष सिद्धान्त पर शोधकार्य करके आइन्स्टाइन ने (ऊर्जा = संहति  $\times$  चाल<sup>2</sup>)  $E = mc^2$  का जो सूत्र निकाला था वह विज्ञान के सब सूत्रों से



अधिक प्रसिद्ध है। इस सूत्र को शब्दों में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं कि संहति के साथ चाल के वर्ग का गुणनफल ऊर्जा के बराबर होता है। उनका तर्क इस प्रकार था :—यह तो ज्ञात है किसी वस्तु की संहति, गति के बढ़ने से बढ़ती है। गति, ऊर्जा का एक रूप है जिसे गतिज ऊर्जा कहते हैं। (गतिज ऊर्जा का एक सरल उदाहरण लोलक या पेंडुलम है जो दोलन की गति से ऊर्जा प्राप्त करता है।) यदि ऊर्जा की वृद्धि के कारण संहति में वृद्धि होती है तो इसका अर्थ हुआ कि ऊर्जा सचमुच में संहति होती है।

आइन्स्टाइन ने इस धारणा के गणितीय पक्ष को मालूम किया और पाया कि संहति को मालूम करने के लिए ऊर्जा को प्रकाश के वेग के वर्ग से विभाजित करना चाहिए। उसको लिखने का दूसरा तरीका यह है :  $E = mc^2$ । आपेक्षिकता के विशेष सिद्धान्त ने सिद्ध कर दिया कि ऊर्जा और संहति एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न नहीं हैं जैसा कि मनुष्य सदा से समझता आ रहा था, बल्कि उनमें से एक को दूसरे में परिवर्तित किया जा सकता है।

यह छोटा-सा समीकरण कितना शक्तिशाली है ! उदाहरणार्थ, परमाणुबम का आधार यही समीकरण,  $E = mc^2$  है। परन्तु अपनी भारी शक्ति के बावजूद, परमाणु बम अपनी संहति के एक प्रतिशत का केवल दसवां भाग ऊर्जा में परिवर्तित कर पाता है। यह सोचकर आश्चर्य होता है कि अगर संहति को पूर्णरूप से ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सके तो एक पाँड कोयला सारे संयुक्त राज्य में एक महीने के लिए आवश्यक बिजली मुहैया कर देता। कोयले को जलाना, द्रव्य को ऊर्जा में परिवर्तित करना नहीं है। वह तो एक रासायनिक परिवर्तन है जिसमें राख और गैसें बच रहती हैं जिनकी संहति उतनी ही होती है जितनी पहले कोयले की थी।

आपेक्षिकता के विशेष सिद्धान्त में दो ऐसे तंत्रों का विवेचन किया गया था जो समरूप गति से युक्त होते हैं। 1916 में आइन्स्टाइन ने आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त को प्रकाशित किया जिसमें त्वरण-युक्त तंत्रों का विवेचन किया गया जिनमें से एक-दूसरे की अपेक्षा या तो द्रुततर होता रहता या मंदतर होता रहता है।

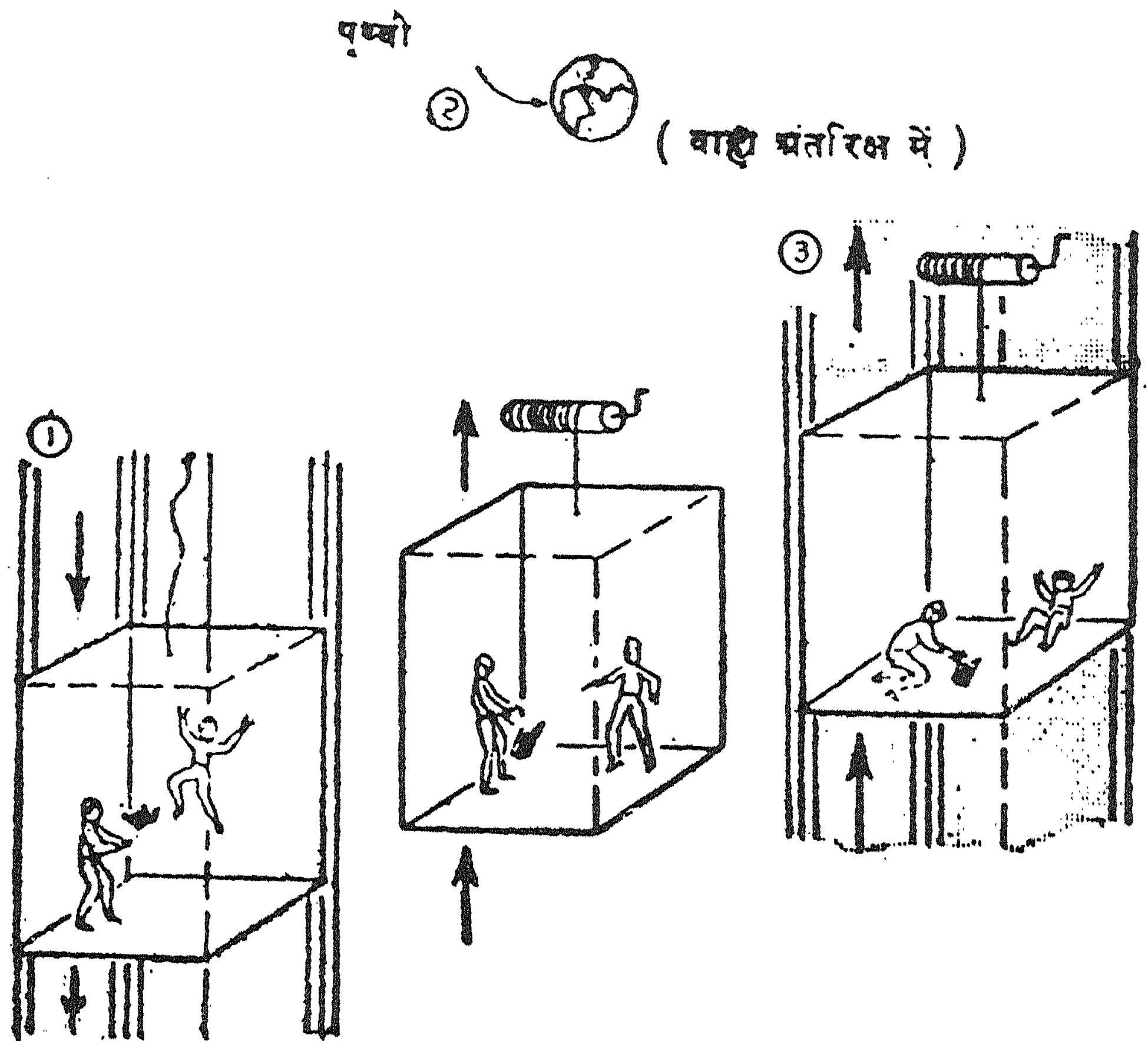
इस सिद्धान्त को समझने के लिए हमें लिफ्ट में कई काल्पनिक यात्राएं करनी पड़ेंगी। जिस लिफ्ट का हम उपयोग करेंगे उसमें खिड़कियां नहीं होंगी ताकि उसके भीतर के लोग बिलकुल नहीं देख पाएंगे कि वे कहां हैं। हम अपने साथ एक वैज्ञानिक को भी रखेंगे ताकि लिफ्ट में जो घटनाएं घटें उन्हें वह समझाता जाए।

सबसे पहले कल्पना कीजिए कि लिफ्ट एक मकान की सबसे ऊपरी मंजिल पर है। जिनरस्सियों से वह लटकी हुई है उन्हें काट दिया जाता है और वह बेरोक-टोक नीचे की ओर गिरने लगती है। लिफ्ट के भीतर सब लोग अपने को भारहीन महसूस



करते हैं क्योंकि फर्श उनके पांवों के नीचे से गिर रहा है और फर्श पर उनका कुछ भी भार नहीं होता। यदि कोई व्यक्ति एक किताब हाथ से छोड़ देता है तो वह वायु में तैरती हुई प्रतीत होती है क्योंकि लिफ्ट और यात्री भी उतनी ही तेजी से गिर रहे हैं। जितनी तेजी से पुस्तक। यदि कोई व्यक्ति उछलता है तो वह धीरे-धीरे छत की ओर तैरता जाता है।

इन सब बातों को समझने के लिए सब लोग वैज्ञानिक की ओर मुड़ते हैं। वैज्ञानिक को यह पता नहीं कि वास्तव में लिफ्ट को हो क्या रहा है। वह कहता है कि हो सकता है लिफ्ट स्वतंत्रतापूर्वक गिर रहा है, जैसा कि वास्तव में हो रहा है। यदि यह बात सच है तो जो कुछ लिफ्ट में हो रहा है, उसका कारण समझ में आ सकता है। यह भी हो सकता है कि लिफ्ट बाह्य अंतरिक्ष में हो जहां पृथ्वी के आकर्षण का प्रभाव न हो। इन दोनों हालतों में लिफ्ट में एक-सी घटनाएं घटती हैं।



कल्पना कीजिए कि लिफ्ट अंतरिक्ष के उस भाग में है जहां पृथ्वी के आकर्षण का प्रभाव नहीं है। उसके ऊपर वाले सिरे से एक रस्सी बंधी है और उस रस्सी द्वारा वह ऊपर खींचा जा रहा है। इस हालत में प्रत्येक व्यक्ति अपना वास्तविक

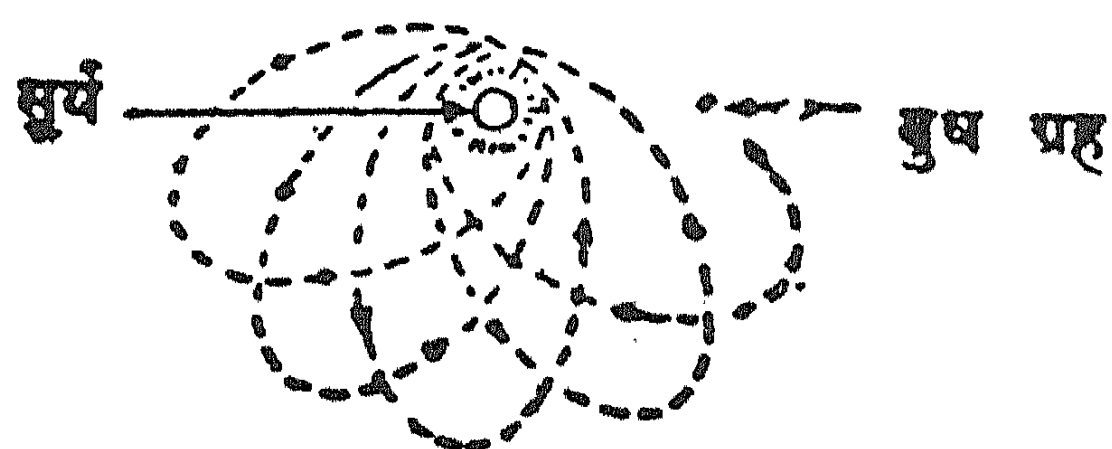
भार महसूस करता है, छोड़ देने से पुस्तक नीचे गिरती है और जब कोई ऊपर की ओर उछलता है तब वही कुछ होता है जो जमीन पर उछलने से होता है। गुरुत्वाकर्षण के बिना भी यह सब होता है। इसका कारण यह है कि लिफ्ट आपके पांवों के विरुद्ध ऊपर खींचा जा रहा है, और लिफ्ट पुस्तक से मिलने के लिए ऊपर उठाता है और रस्सी के खिंचाव के कारण उछलना बिल्कुल सामान्य प्रतीत होता है। इस बार वैज्ञानिक बताता है कि हो सकता है आप लिफ्ट के भीतर बाह्य अंतरिक्ष में हों और लिफ्ट ऊपर की ओर खींचा जा रहा हो, या हो सकता है लिफ्ट पृथ्वी पर किसी मकान में स्थिर अवस्था में हो और पृथ्वी के सामान्य गुरुत्वाकर्षण के कारण ये सब परिणाम प्राप्त हो रहे हों।

अंत में, कल्पना कीजिये कि लिफ्ट मकान में है और ऊपर की ओर उसका त्वरण हो रहा है और वह अधिकाधिक तेजी से ऊपर की ओर जा रहा है। चूंकि लिफ्ट आपके विरुद्ध खींची जा रही है अतः आप अपने को सामान्य से अधिक भारी महसूस करते हैं। पुस्तक का भार भी सामान्य से अधिक प्रतीत होता है और हाथ छूटते ही वह धम से फर्श पर गिर जाती है। अधिक भार की अनुभूति के कारण उछलना कठिन और असंभव हो जाता है। वैज्ञानिक के मत से इसका कारण यह हो सकता है कि पृथ्वी पर स्थित मकान में लिफ्ट ऊपर की ओर त्वरण के साथ जा रहा है या लिफ्ट किसी ऐसे ग्रह पर स्थिर खड़ा है जिसकी संहति पृथ्वी की संहति से अधिक है क्योंकि संहति जितनी अधिक होती है उसका गुरुत्वाकर्षण भी उतना ही अधिक होता है।

इन सब बातों से आप क्या निष्कर्ष निकालते हैं? आइन्स्टाइन ने इनसे यह निष्कर्ष निकाला कि गुरुत्वाकर्षण और त्वरित गति के बल के बीच भेद करना असंभव है। जब तक वैज्ञानिक को यह ज्ञात न था कि वह कहां है, तब तक उसके लिए निश्चयपूर्वक यह बताना कठिन था कि लिफ्ट में जो अजीब घटनाएं घटी हैं उनका कारण गुरुत्वाकर्षण था या त्वरित गति। किसी भी मामले में वह निश्चय नहीं कर सकता था कि कारण यह था वह नहीं। आइन्स्टाइन ने इसका प्रतिपादन तुल्यता-सिद्धांत के रूप में किया। इसके अनुसार गुरुत्वाकर्षण और त्वरित गति, एक ही प्रकार से काम करते हैं और उनके बीच भेद करना असंभव है। तुल्यता-सिद्धान्त, आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त की आत्मा है।

सामान्य सिद्धान्त का प्रथम प्रमाण आइन्स्टाइन ने स्वयं प्रस्तुत किया। उन्हें मालूम था कि सभी ग्रह सूर्य के चारों ओर दीर्घवृत्ताकार कक्षाओं में घूमते हैं। उन्हें यह भी मालूम था कि सूर्य के सापेक्ष ये दीर्घवृत्त बहुत धीरे-धीरे चलते हैं। चूंकि ग्रहबुध सूर्य के निकटतम है और अन्य सब ग्रहों की अपेक्षा अधिक तेजी से घूमता है अतः उसकी कक्ष अन्य किसी ग्रह-कक्षा की अपेक्षा अधिक गमन करती है। इस ग्रह की कक्षा प्रत्येक शताब्दी में चाप के 574 सेकण्डों के बराबर विचलित हो

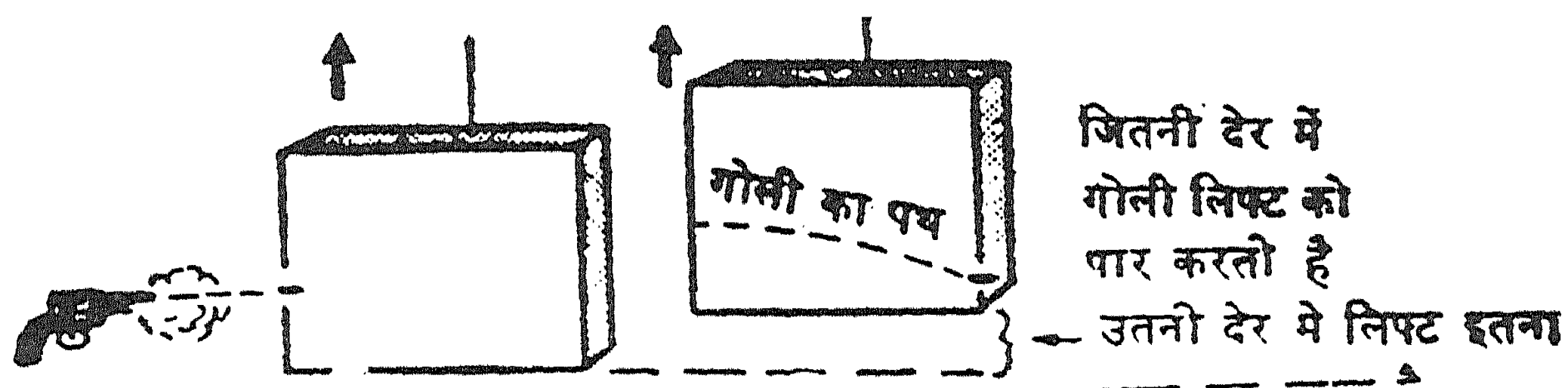
जाती है। (एक समकोण में चाप के 32,400 सेकण्ड होते हैं) यह मालूम था कि 531 सेकण्ड का विचलन अन्य ग्रहों के गुरुत्वाकर्षण के कारण है। परन्तु शेष 43 सेकण्ड के विचलन का कारण नहीं मालूम था। कुछ वैज्ञानिकों का ख्याल था कि सम्भवतः बुधग्रह के निकट कोई और ग्रह है जो बुध को उसकी कक्षा से खींचता है।



अपेक्षिकता-सिद्धान्त के समीकरणों का उपयोग करके आइन्स्टाइन ने बुधग्रह की कक्षा का हिसाब लगाया। उन्हें मालूम था कि दीर्घवृत्त में चलते समय बुधग्रह की चाल परिवर्तित होती रहती है। इससे उसकी संहति भी परिवर्तित होती रहती है जिसके कारण उसकी सारी कक्षा घूम जाती है। उनकी गणनाओं से मालूम हुआ कि बुधग्रह की कक्षा चाप के ठीक 43 सेकण्ड घूमनी चाहिए। इस परिणाम ने बुधग्रह की कक्षा का, जो बहुत समय से खगोलशास्त्रियों के लिए एक चुनौती रहा था, स्पष्टीकरण ही नहीं किया बल्कि आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त की सत्यता का आकस्मिक तथा रोचक प्रमाण भी प्रस्तुत कर दिया।

आइये; अपने काल्पनिक लिफ्ट में हम एक और यात्रा करें। इस बार हम पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से परे बाह्य अंतरिक्ष में यात्रा करेंगे। लिफ्ट के ऊपर के सिरे से एक रस्सी जुड़ी होगी जो लिफ्ट को ऊपर की ओर त्वरित करेगी। जब हम अंतरिक्ष में यात्रा कर रहे होते हैं तब कोई अन्तर्ग्रही शिकारी, हमें उड़ता हुआ समझ कर लिफ्ट पर गोली चलाता है। गोली लिफ्ट के सामने से प्रवेश करती है और पीछे की ओर से निकल जाती है परन्तु किसी को लगती नहीं। वैज्ञानिक जब गोली द्वारा किए गए दोनों छेदों की परीक्षा करता है तब पाता है कि सामने वाला छेद पीछे वाले छेद से अधिक ऊंचाई पर है। इसका कारण वह यह बताता है कि लिफ्ट गुरुत्वाकर्षण विहीन अंतरिक्ष में हो सकती है और जिस सेकण्ड के अंश मात्र समय में गोली लिफ्ट को पार करती है उतनी देर में लिफ्ट ऊपर खिंच जाता है।

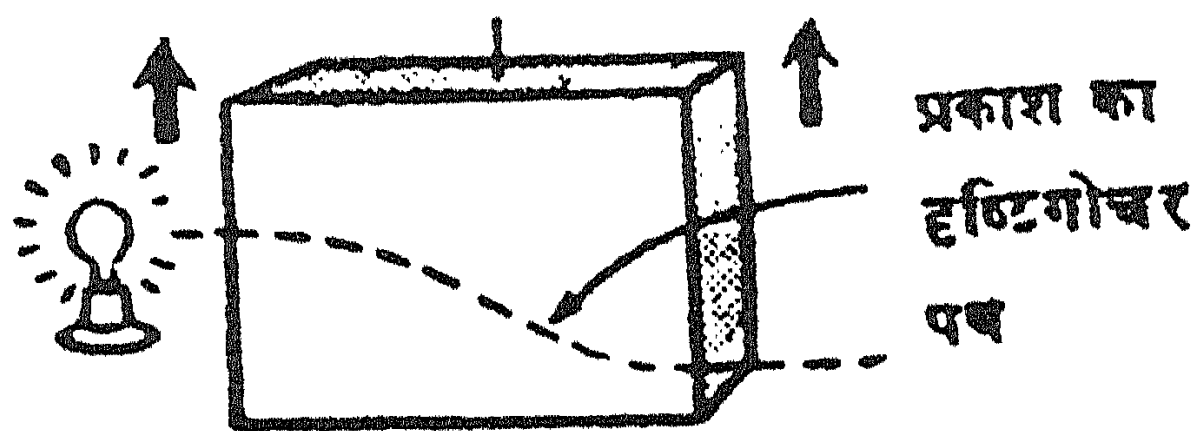
वह इस कारण को इसलिए ठीक समझता है क्योंकि गुरुत्वाकर्षण से बाहर गोली तब तक सीधी रेखा में चलती रहेगी जब तक वह रोकी नहीं जाती। परन्तु वैज्ञानिक यह भी समझता है कि यदि लिफ्ट पृथ्वी पर हो और उसका गुरुत्वाकर्षण, लिफ्ट को पार करते समय गोली को नीचे खींचे तो भी दोनों छेदों की ऊंचाई में अन्तर होगा।



लिफ्ट के ऊपर जाते समय गोली लिफ्ट में से सीधी रेखा में गुजरती है परन्तु पिछली दीवार में: अगली दीवार की अपेक्षा, नीचे छेद करती है।

गोली की जगह यदि लिफ्ट की सामनेवाली दीवार के एक छेद में से प्रकाश की किरणावली भेजी जाए तो भी ऐसा परिणाम प्राप्त होगा। पीछे की दीवार से वह उस जगह टकरायेगी जो सामने वाले छेद से नीचे होगा क्योंकि जितनी देर में किरणावली लिफ्ट को पार करेगी उतनी देर में लिफ्ट कुछ ऊपर उठ जायेगी।

लिफ्ट के भीतर सभी लोग, यहां तक कि वैज्ञानिक भी, यह देखकर चंकित रह जाते हैं कि प्रकाश की किरणावली मुड़ जाती है! इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता कि वे पृथ्वी पर हैं या अंतरिक्ष में हैं। इस विषय में कोई संदेह नहीं हो सकता। उन्होंने लिफ्ट में से गुजरती हुई प्रकाश की किरणावली को मुड़ते देखा है। चूंकि वैज्ञानिक अभी बता चुका है कि गोली का पथ गुरुत्वाकर्षण से भी मुड़ सकता है और त्वरित गति से भी अतः उसे यही बात प्रकाश के विषय में भी कहनी पड़ती है। उसे कहना ही होगा कि प्रकाश को गुरुत्वाकर्षण से भी मोड़ा जा सकता है, त्वरित गति के बल से भी।

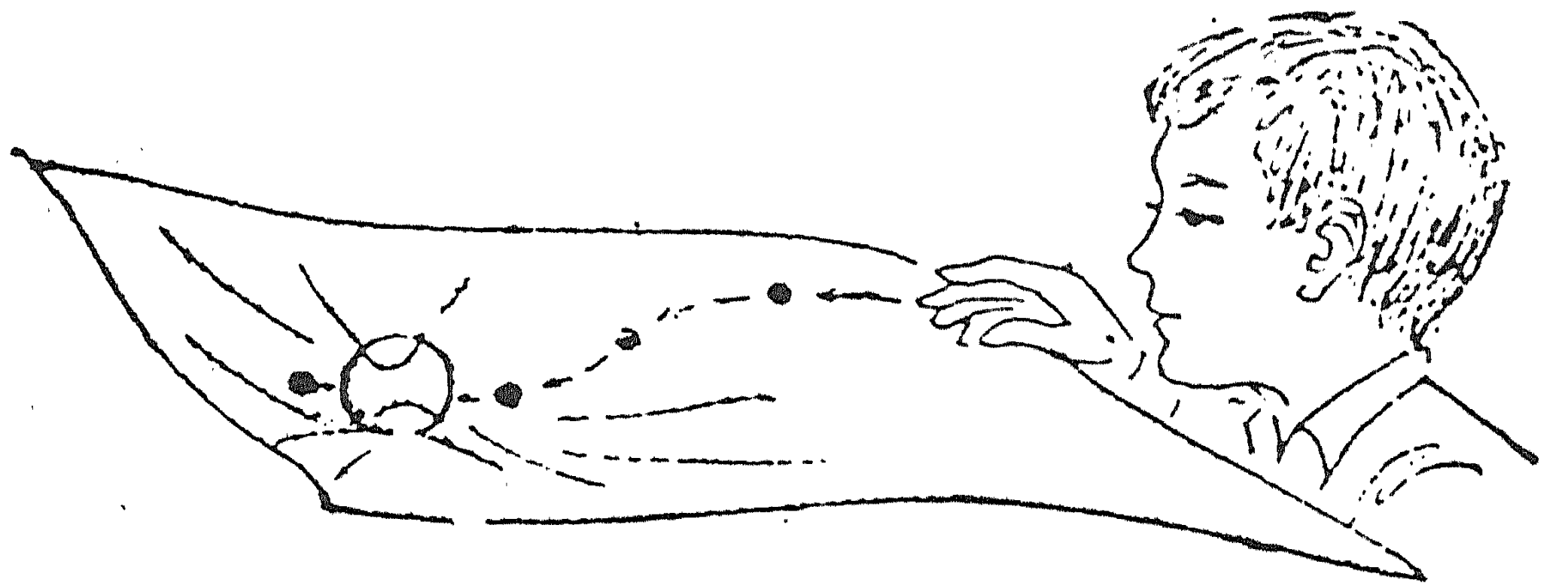


आइन्स्टाइन ने इस धारणा को और विकसित किया। उन्हें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं थी कि प्रकाश को गुरुत्वाकर्षण और त्वरित गति दोनों में से किसी से भी मोड़ा जा सकता है, परन्तु उन्हें गुरुत्वाकर्षण के इस रूप से संतोष नहीं था कि वह एक ऐसा बल है जो आगे बढ़कर प्रकाश को पकड़ता है और उसे मोड़ देता है। उन्हें इस समूची धारणा से अरुचि थी कि गुरुत्वाकर्षण एक ऐसा बल है जो, उदाहरणार्थ, 930 लाख मील की दूरी पार करके सूर्य से पृथ्वी तक पहुंचता है और पृथ्वी को एक कक्षा में थामे रखता है। उन्होंने गुरुत्वाकर्षण के विषय में एक नये ढंग से सोचने का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि गुरुत्वाकर्षण वास्तव में अंतरिक्ष की आकृति को बदल देता है और अंतरिक्ष में पहाड़ियों और

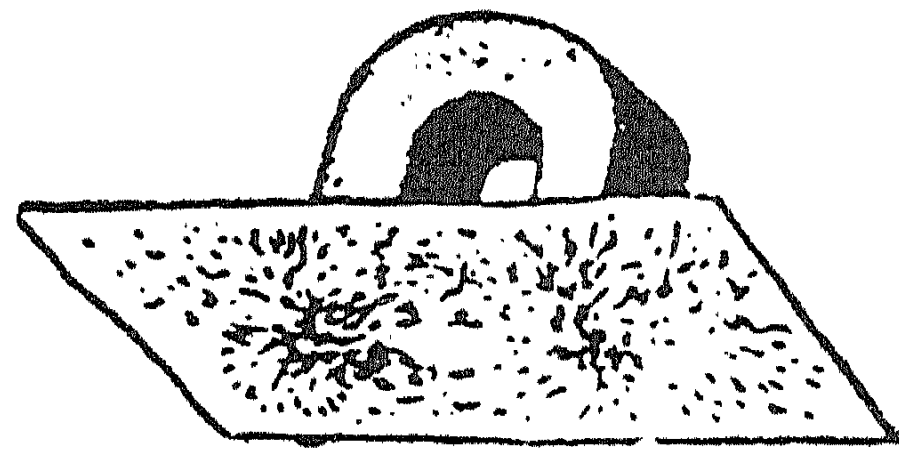


घाटियों, उभारों और वक्रताओं की सृष्टि करता है।

अंतरिक्ष की कल्पना रबड़ की एक बड़ी और पतली चद्दर के रूप में कीजिये। मान लीजिए कि सूर्य एक ठोस गेंद (बेस बॉल) है। जब आप गेंद को रबड़ की चद्दर पर रखते हैं तब वह चद्दर को नीचे दबा देता है। यदि आप चद्दर पर एक गोली लुढ़कायें तो वह गेंद द्वारा बनायी गयी घाटी की ओर लुढ़केगी। इसी तरह प्रकाश जब तक सूर्य के निकट चलता है तब तक उसका पथ अंतरिक्ष की, सूर्य के गुरुत्वाकर्षण द्वारा निर्मित आकृति के अनुसार चलता है।



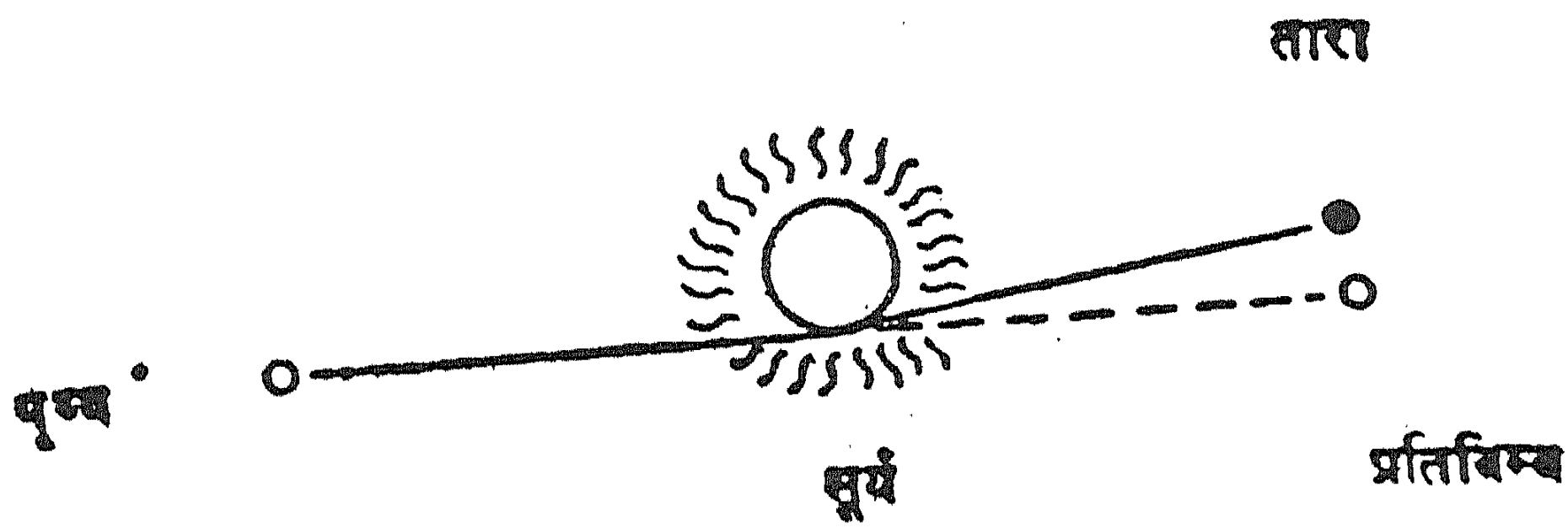
जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण अंतरिक्ष को परिवर्तित करता है उसी प्रकार चुम्बकत्व भी अंतरिक्ष को परिवर्तित करता है। यह जानने के लिए कि चुम्बक के आसपास अंतरिक्ष किस प्रकार परिवर्तित होता है, चुम्बक के ऊपर मजबूत कागज का एक टुकड़ा रखिये और कागज पर लोहे की रेतन फैलाइये। रेतन एक ऐसी आकृति में व्यवस्थित हो जायेगी जो चुम्बकीय क्षेत्र की आकृति बताती है। लोहे की रेतन के लिए यही अंतरिक्ष है जिसका निर्माण चुम्बक ने किया है।



यह कैसे सिद्ध किया जाए कि प्रकाश जब गुरुत्वाकर्षण द्वारा मोड़े हुए अंतरिक्ष में से होकर जाता है तब वह मुड़ जाता है? आइन्स्टाइन ने एक ऐसे प्रमाण का वर्णन किया जो सम्भव हो सकता था। पहले, एक तारे की फोटो खींचनी चाहिए जिससे अन्य तारों के सापेक्ष उसकी स्थिति मालूम हो सके। इसके बाद जब पृथ्वी अपनी कक्षा में ऐसे स्थान पर आती है कि वह तारा सूर्य के किनारे पर देखा जा सके, सूर्य का प्रबल गुरुत्वाकर्षण अंतरिक्ष को इस प्रकार मोड़ता है कि तारे से

आने वाला प्रकाश, प्रथम फोटो की तुलना में, भिन्न स्थान पर प्रतीत होता है।

चूंकि सूर्य का प्रकाश बहुत तीव्र है अतः केवल पूर्ण ग्रहण के समय ही किसी तारे को सूर्य के किनारे देखा जा सकता है। पूर्ण सूर्यग्रहण तब होता है जब चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य के बीच आकर, सूर्य को पूर्ण रूप से ढक ले। आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त के इस भाग के परीक्षण का अवसर 29 मई 1919 को प्राप्त हुआ जब पूर्ण सूर्यग्रहण हुआ और जब सूर्य, पृथ्वी और हियडीज (वृषभ राशि में एक तारापुंज) के बीच था।



आइन्स्टाइन ने भविष्यवाणी की कि हियडीज सामान्यतः जहां दिखाई देते हैं वहां से वे चाप के 1.74 सेकण्ड दूर दिखायी देंगे। उन्हें अपने सिद्धान्त पर इतना विश्वास था कि जहां तक उनका सम्बन्ध था इस विषय में और कुछ करना बाकी नहीं था। परन्तु ब्रिटिश ऐस्ट्रानामिकल (खगोलीय) सोसाइटी ने इस सिद्धान्त की जांच के लिए बहुत कुछ किया। उसने एक खोजी दल को ब्राजील और दूसरे को पश्चिमी अफ्रीका भेजा क्योंकि इन दो स्थानों से ग्रहण का प्रेक्षण बहुत अच्छी तरह से किया जा सकता था। यद्यपि उस दिन बादल थे फिर भी दोनों दलों ने अच्छे फोटो खींचे। जब दोनों दलों के फोटुओं की तुलना मूल फोटुओं से की गयी तो ब्राजील वाले दल को चाप के 1.98 सेकण्ड और पश्चिमी अफ्रीका वाले दल को 1.6 सेकण्ड का विचलन प्राप्त हुआ। ये परिणाम आइन्स्टाइन की भविष्यवाणी के इतने निकट थे कि आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त के प्रमाण के रूप में उनका स्वागत किया गया।

अपने सिद्धान्त के प्रमाण के बारे में आइन्स्टाइन बहुत शांत रहे। जिस समय खोजी दल अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका गए हुए थे उस समय आइन्स्टाइन बर्लिन के कैसर विल्हेम इन्स्टीट्यूट में अनुसंधान कर रहे थे। कहा जाता है कि जब उन्हें वे फोटोग्राफ दिखाये गए, जिन्होंने उनके सिद्धान्त की सत्यता प्रमाणित कर दी थी, तब उन्होंने कहा, 'आश्चर्यजनक, आश्चर्यजनक, आश्चर्यजनक।' जब किसी ने टोका कि वास्तव में आश्चर्यजनक बात तो यह है कि उनका सिद्धान्त सिद्ध हो गया तब आइन्स्टाइन ने उत्तर दिया कि उनका सिद्धान्त कोई आश्चर्यजनक चीज नहीं है, वे तो फोटोग्राफों की अच्छाई की प्रशंसा कर रहे थे।

इस सादे और विनम्र व्यक्ति, आइन्स्टाइन ने वैज्ञानिक विचारधारा में क्रांति उत्पन्न कर दी और सचमुच मनुष्य के सारे विश्वासों को बदल दिया। फिर भी उनकी विनम्रता और विनोदप्रियता देखिये कि उन्होंने आपेक्षिकता-सिद्धान्त की कितनी सरल और मनोरंजक परिभाषा की, 'जब कोई पुरुष एक सुन्दर लड़की के साथ एक घंटा बैठता है तब उसे वह समय एक मिनट-सा प्रतीत होता है। परन्तु उसे गरम तवे पर केवल एक मिनट के लिए बैठाइये और वह एक मिनट उसे एक घंटे से भी लम्बा प्रतीत होगा। यही आपेक्षिकता है।'

## परमाणु-संरचना

शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसका मन परमाणु सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करके महान आश्चर्य से भर न जाता हो। यह मानने के लिए हमारी कल्पना-शक्ति पर बहुत जोर पड़ता है कि सारी वस्तुएं, चाहे वे सजीव हों या निर्जीव, बड़ी हों या छोटी, ठोस हों या द्रव या गैस, इतने छोटे परमाणुओं से निर्मित हैं जिन्हें सबसे शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शियों से भी देखना सम्भव नहीं है। इस विचार से और भी आश्चर्य होता है कि प्रत्येक परमाणु के भीतर भी एक छोटी-सी व्यस्त दुनिया है।

परमाणु के भीतर जो दुनिया है उसमें तीन प्रकार के 'नागरिक' प्रमुखतम हैं। उनके नाम हैं—प्रोटान, न्यूट्रान और इलेक्ट्रान। परमाणु के भीतर के इन कणों की संख्या से परमाणु का भार और उसकी रासायनिक प्रकृति निर्धारित होती है। इनमें से दो प्रकार के कण, प्रोटान और न्यूट्रान, केवल परमाणु के केन्द्रक (न्यूक्लियस) में होते हैं। केन्द्रक, परमाणु का बहुत सूक्ष्म और बहुत भारी केन्द्रीय भाग होता है। प्रोटान और न्यूट्रान का भार लगभग समान होता है। विभिन्न प्रकार के परमाणुओं का वास्तविक भार मालूम करना सम्भव नहीं है क्योंकि वे बहुत अधिक हल्के होते हैं। इसलिए उनका आपेक्षिक भार मालूम किया जाता है। इसके लिए प्रोटान और न्यूट्रान में से प्रत्येक को परमाणु भार की इकाई मानते हैं। उदाहरणार्थ, आक्सीजन परमाणु के केन्द्रक में आठ प्रोटान और आठ न्यूट्रान होते हैं, अतः उसका परमाणु भार सोलह है। इसी तरह यूरेनियम परमाणु में 92 प्रोटान और 146 न्यूट्रान होते हैं। अतः उसका परमाणु भार 238 है।

प्रोटान और न्यूट्रान की वास्तविक भिन्नता, विद्युत् आवेश की दृष्टि से है। प्रोटान पर धन विद्युत् आवेश होता है। इसका अर्थ है कि वह ऋण आवेश द्वारा आकर्षित होता है और अन्य धन आवेश द्वारा प्रतिकर्षित। न्यूट्रान उदासीन होता है और उस पर कोई भी विद्युत् आवेश नहीं होता।

यद्यपि परमाणु का सारा भार केन्द्रक के भीतर होता है परन्तु केन्द्रक, परमाणु का बहुत थोड़ा-सा स्थान घेरता है। लगभग सारा परमाणु रिक्त होता है। केन्द्रक

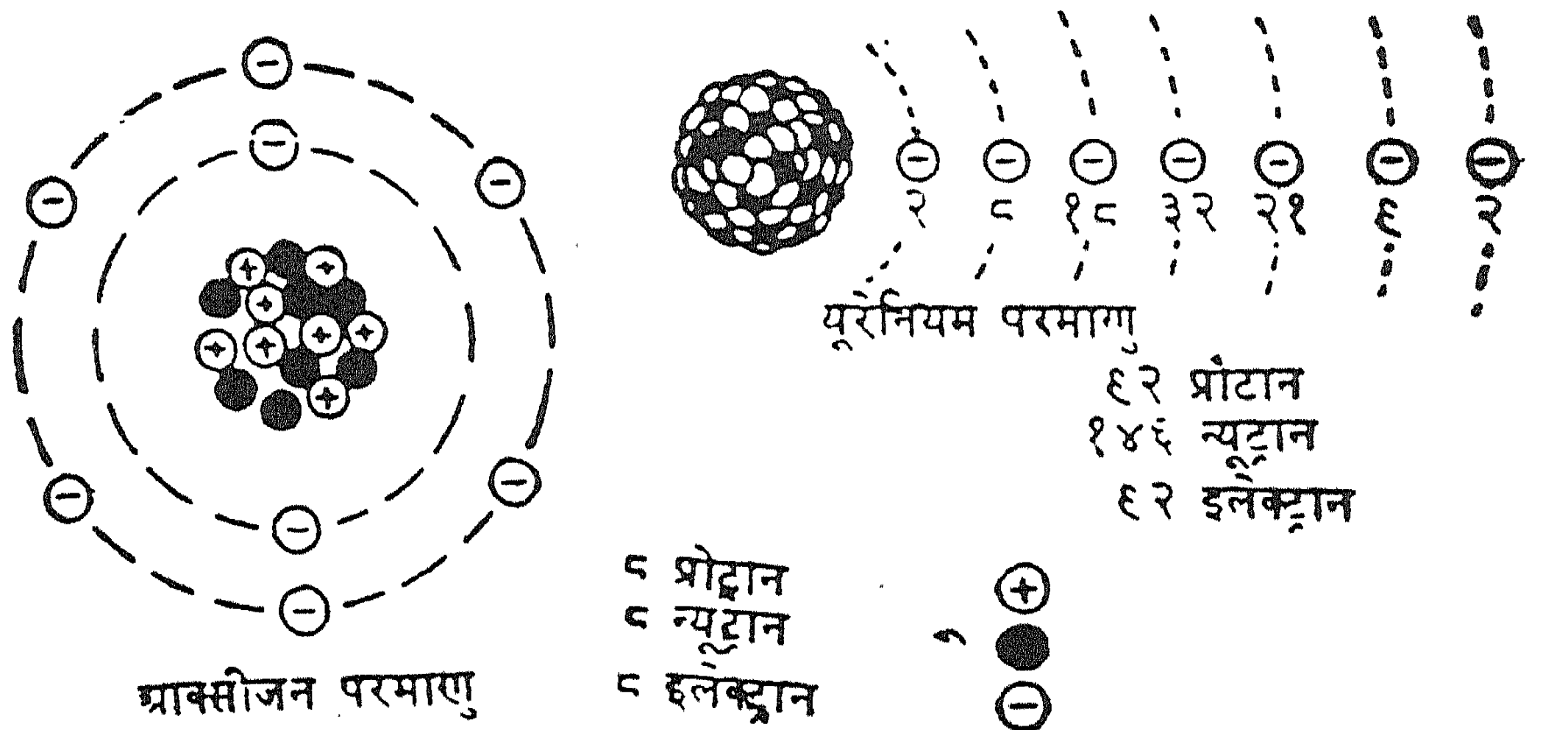


के चारों ओर मगर उससे काफी दूरी पर इलेक्ट्रान तेजी से घूमते रहते हैं। चूंकि इलेक्ट्रान इतने छोटे होते हैं कि उन्हें देखा नहीं जा सकता और चूंकि वे बहुत तेजी से घूमते हैं अतः घूमते हुए इलेक्ट्रानों की कल्पना कणों के रूप से नहीं बल्कि केन्द्रक पर छाये हुए खोल या बादल के रूप में की जाती है। इलेक्ट्रान बहुत हल्के कण

होते हैं। उनका भार प्रोटान या न्यूट्रान के भार का लगभग  $\frac{1}{2000}$  होता है। वे

इतने हल्के होते हैं कि परमाणु-भार निर्धारित करने में उनका विचार नहीं किया जाता। परन्तु इलेक्ट्रान पर ऋण आवेश होता है जो प्रोटान के धन आवेश के बराबर होता है। चूंकि परमाणु, विद्युत् की दृष्टि से उदासीन होता है अतः उसके इलेक्ट्रानों की संख्या प्रोटानों की संख्या के बराबर होती है। इस तरह प्रोटानों का धन आवेश, इलेक्ट्रानों के ऋण आवेश से सन्तुलित हो जाता है। उदाहरणार्थ, आक्सीजन परमाणु में आठ इलेक्ट्रान और यूरेनियम में बानबे इलेक्ट्रान घूमते रहते हैं।

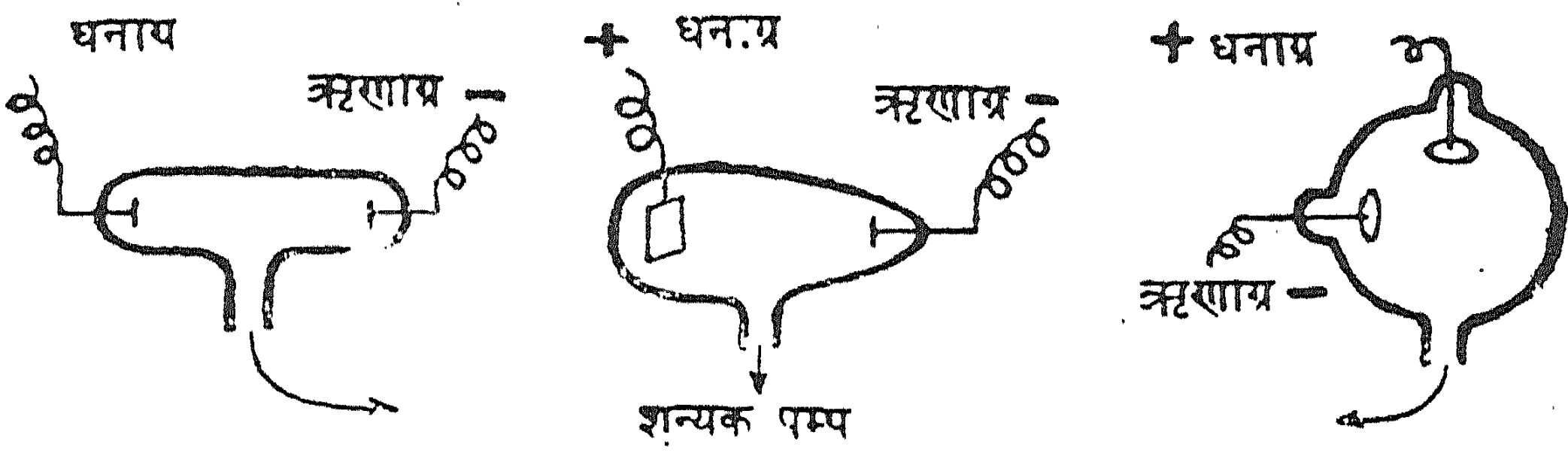
परमाणुओं की कल्पना तथा उनके भीतर होने वाले क्रिया-कलाप से भी अधिक आश्चर्यजनक बात यह है कि विज्ञान ने परमाणु के रहस्यों को मालूम कैसे किया ! जो कण इतने छोटे हैं कि उन्हें न देखा जा सकता है, न छुआ जा सकता है और न तोला जा सकता है, उन पर शोध-कार्य करके वैज्ञानिकों ने परमाणु का स्पष्ट और परिशुद्ध नमूना कैसे प्रस्तुत कर दिया है ?



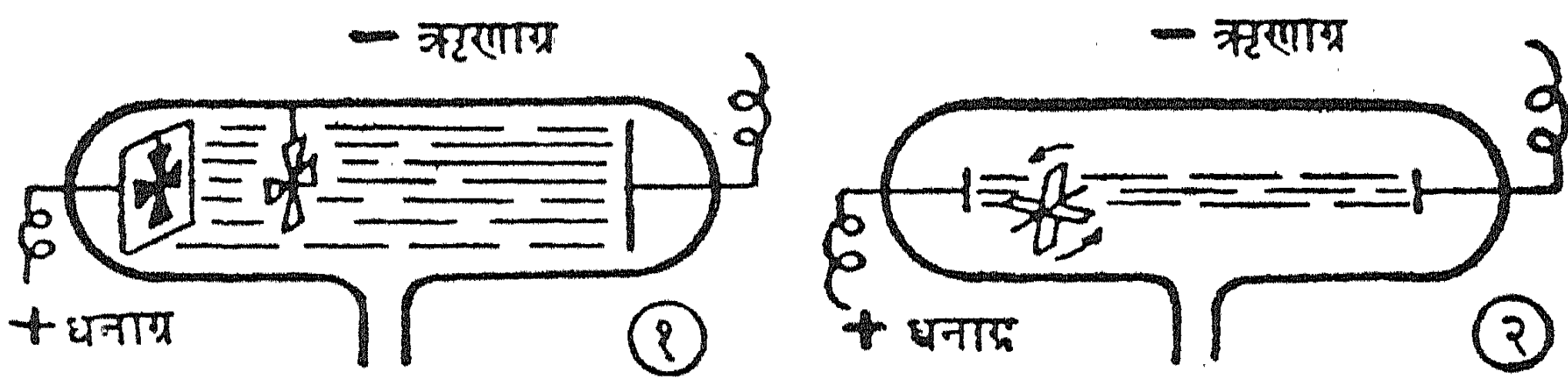
जिस उपकरण ने वैज्ञानिकों को परमाणु के भीतर की सबसे पहली झांकी दी वह क्रुक्स नली थी जिसे सरविलियम क्रुक्स ने आविष्कृत किया था। क्रुक्स नली कई शकलों में बनाई गयी थी। वह सदा कांच की बनी होती थी और उसके दोनों सिरों के भीतर धातु की दो पट्टिकाएं गड़ी होती थीं। उसमें एक पतली-सी गर्दन भी होती थी जो शून्यक पम्प से जुड़ी होती थी ताकि नली के भीतर की वाद्वि

बाहर निकाली जा सके। दोनों धातु-पट्टिकाओं को एक विद्युत् परिपथ में जोड़ दिया जाता था जिससे एक पट्टिका धन (धनाग्र) और दूसरी पट्टिका ऋण (ऋणाग्र) हो जाती थी। जैसे-जैसे अधिकाधिक वायु नली में से निकाली जाती थी, वैसे-वैसे नली भिन्न-भिन्न रंगों और आकृतियों की दीप्तियों से भरती जाती थी। चूंकि यह दीप्ति ऋणाग्र से आती हुई प्रतीत होती थी अतः उसका नाम ऋणाग्र-किरण रखा गया।

इसी ऋणाग्र-किरण ने जोसफ जान टाम्सन (1856-1940) का ध्यान उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में आकर्षित किया था। वे केम्ब्रिज विश्वविद्यालय (इंग्लैंड) की केवेन्डिश प्रयोगशाला के निर्देशक थे। ऋणाग्र-किरण के बारे में जो कुछ जाना जा सकता था उसे जानने के लिए उन्होंने कार्य आरम्भ कर दिया। क्रुक्स नली की सहायता से पांच प्रयोग कर, जिनमें से कुछ तो पहले भी किए जा चुके थे, टाम्सन ने परमाणु के विषय में ऐसी नवीन जानकारी प्राप्त की जिससे वैज्ञानिक जगत् स्तब्ध हो गया।



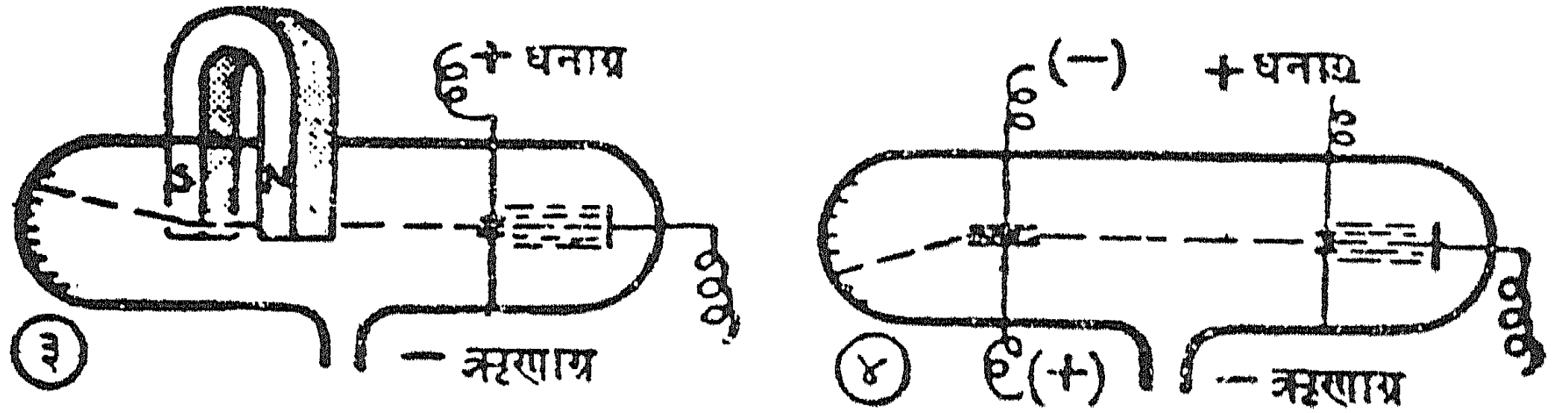
पहले प्रयोग में टाम्सन ने क्रुक्स नली में धनाग्र पर एक ऐसे प्रतिदीप्त रासायनिक पदार्थ का लेप किया जो ऋणाग्र-किरणों के पड़ने पर दीप्त होता था। फिर उन्होंने ऋणाग्र-किरणों के पथ में धातु का एक क्रास रखा। उन्हें धनाग्र पर क्रास की स्पष्ट छाया दिखाई दी। टाम्सन को मालूम हो गया कि ऋणाग्र-किरणें सरल रेखाओं में चलती हैं।



दूसरे प्रयोग में टाम्सन ने ऋणाग्र-किरणों के पथ में सूक्ष्मतया संतुलित पैडल दार पहिया रखा। ऋणाग्र किरणों की टक्कर से पहिया घूमने लगा। इससे टाम्सन को मालूम हुआ कि ऋणाग्र-किरण, प्रकाश की किरणावलियां मात्र नहीं होतीं अपितु वे सचमुच पदार्थ-कणों से निर्मित होती हैं।

तीसरे प्रयोग में टाम्सन ने क्रुक्स नली के आसपास एक चुम्बकीय क्षेत्र स्थापित

किया। अर्थात् उन्होंने नली के एक पार्श्व में चुम्बक का उत्तरी ध्रुव और दूसरे में दक्षिणी ध्रुव रखा। उन्होंने देखा कि ऋणाग्र-किरणों, या यों कहिये कि ऋणाग्र-कणों को चुम्बक ने मोड़ दिया। कण जिस तरह मुड़े उससे टाम्सन ने निष्कर्ष निकाला कि कण, ऋण विद्युत् आवेश से युक्त हैं।



चौथे प्रयोग में टाम्सन ने नली के एक ओर धन आवेशित पट्टिका और दूसरी ओर ऋण आवेशित पट्टिका रखी। कणों के प्रवाह को मोड़ने के लिए आवश्यक आवेश की मात्रा माप कर टाम्सन ने कणों का भार मालूम कर लिया। उन्होंने पाया कि ऋणाग्र-कणों का भार, सबसे हल्के अवयव हाइड्रोजन परमाणु के भार का  $\frac{1}{2000}$  है।

अंत में टाम्सन ने भिन्न-भिन्न ऋणाग्र पट्टिकाओं और नली के भीतर भिन्न-भिन्न गैसों का उपयोग किया। उन्होंने देखा कि हर सूरत में कणों का व्यवहार होता है। इससे उन्होंने अनुमान लगाया कि ये कण सभी पदार्थों के अंग हैं और वे सदा एक जैसे होते हैं।

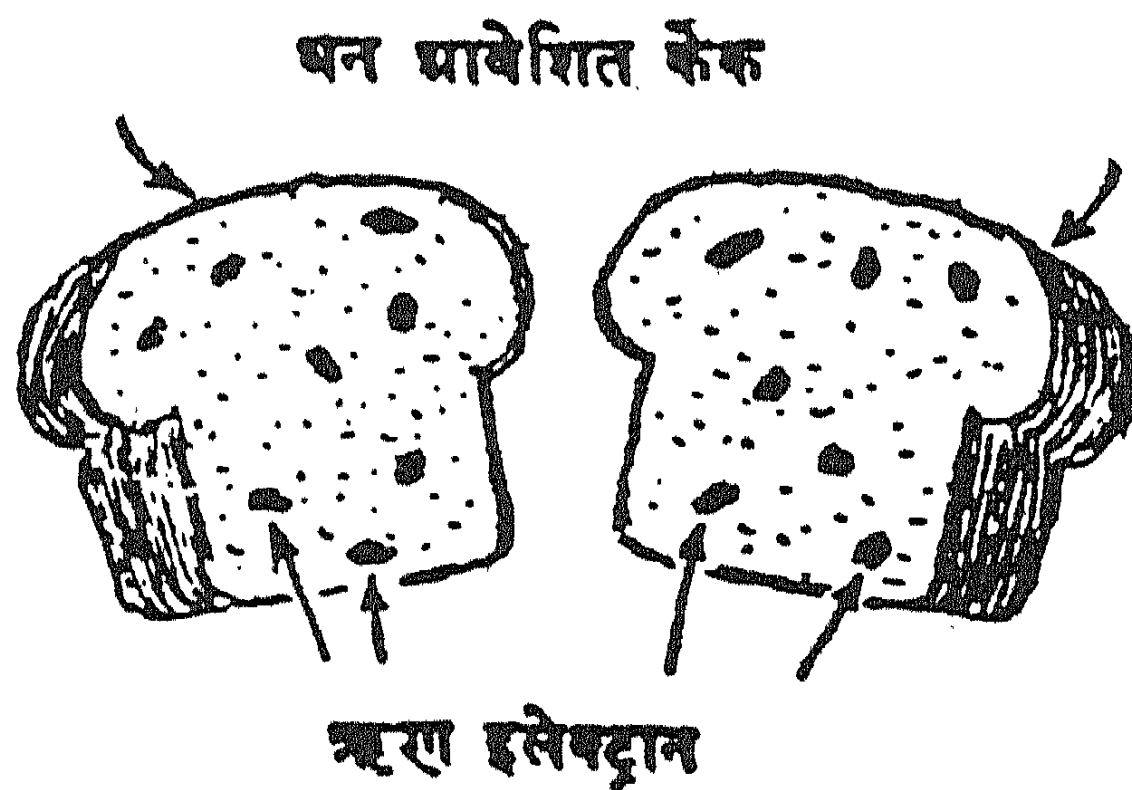
इस प्रकार टाम्सन ने रहस्यपूर्ण ऋणाग्र-किरणों के विषय में काफी जानकारी प्राप्त कर ली। उन्हें मालूम पड़ चुका था कि वे सरल रेखाओं में गमन करती हैं, वे पदार्थीय कण हैं, उन पर ऋण आवेश होता है, वे बहुत ही हल्की होती हैं और वे सब तत्वों में पायी जाती हैं।

उन्होंने इन पांचों तथ्यों का अध्ययन किया। 30 अप्रैल 1897 को उन्होंने अनुभव किया कि वे ऋणाग्र-किरणों की व्याख्या करने की स्थिति में हैं। रायल इन्स्टीट्यूशन के समक्ष जाकर उन्होंने वह रिपोर्ट पेश की जो अब प्रसिद्ध हो चुकी है। उन्होंने कहा, 'ऋणाग्र-किरणें, ऋण विद्युत् के कण हैं।' चूंकि ये कण परमाणु के भीतर से आते थे, टाम्सन ने यह निष्कर्ष निकाला कि 'परमाणु अविभाज्य नहीं हैं क्योंकि विद्युत्-बलों द्वारा ऋण विद्युत् से आवेशित कण उनसे पृथक् किए जा सकते हैं।' उन्होंने यह भी कहा, 'चाहे जिस परमाणु से ये कण प्राप्त किए जाएं, उनकी संहति (भार) समान होती है और उन पर ऋण विद्युत् का एक समान आवेश होता है। वे सब प्रकार के परमाणुओं के घटक (अंग) होते हैं।'।

कितनी विचित्र बात ! लगभग 100 साल से यह बात मानी जाती रही थी

कि परमाणु, पदार्थ की सूक्ष्मतम इकाई है, उसके भीतर कुछ नहीं होता तथा वह अविभाज्य है। परन्तु टाम्सन ने कहा कि उन्होंने ऐसे कणों का पता लगाया है जो प्रत्येक परमाणु में पाए जा सकते हैं। पहले टाम्सन ने इन कणों को कणिका कहा। बाद में उन्होंने इलेक्ट्रॉन कहना पसन्द किया। कुछ वर्षों पूर्व 'विद्युत्-कणों' के वर्णन के लिए इस शब्द को गढ़ा गया था।

अपने अध्ययन के आधार पर टाम्सन ने सुझाव दिया कि परमाणु का नमूना, मुनक्कोंवाली गोल केक जैसा होता है। उन्होंने कहा कि परमाणु एक ठोस गेंद (केक) जैसा होता है और वह धन विद्युत् से आवेशित होता है। इस गेंद के भीतर ऋण आवेश वाले सूक्ष्म इलेक्ट्रॉन (मुनक्के) होते हैं जो केक में छल्लों या खोलों के रूप में छितराए हुए होते हैं।



परमाणु का रहस्य खोलने वाली कहानी हमें अब न्यूजीलैण्ड ले जाती है। अर्नेस्ट रदरफोर्ड (1871-1937) नामक युवक खेत में आलू खोद रहा था जब उसे पत्र एक मिला जिसमें लिखा था कि जे० जे० टाम्सन ने उसे अपना छात्र बनाना स्वीकार कर लिया है। पत्र पढ़कर युवक ने फावड़ा फेंक दिया और प्रतिज्ञा की कि वह अब कभी भी आलू नहीं खोदेगा। इसी युवक ने आगे चलकर परमाणु की कहानी में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

टाम्सन का शिष्य होने के नाते, रदरफोर्ड को भी इलेक्ट्रॉन में दिलचस्पी थी। उन्हें विशेषरूप से यह जानने की उत्कंठा थी कि क्या परमाणु में उन्हें कोई अन्य वस्तु भी मिल सकती है। हेन्स गाइगर (1882-1945), जो अब गाइगर काउन्टर के आविष्कर्ता के रूप में प्रसिद्ध हो चुके हैं, इस खोज में रदरफोर्ड के साथ काम कर रहे थे।

रदरफोर्ड और गाइगर ने निश्चय किया कि परमाणु के भीतर क्या है, यह जानने का सबसे अच्छा तरीका है उसे तोड़ देना। परमाणु का विस्फोट करने के लिए उन्होंने हीलियम के केन्द्रक का गोली के रूप में उपयोग किया। हीलियम केन्द्रक में, जिसे सामान्यतः अल्फा कण कहते हैं, दो प्रोटान और दो न्यूट्रान होते हैं





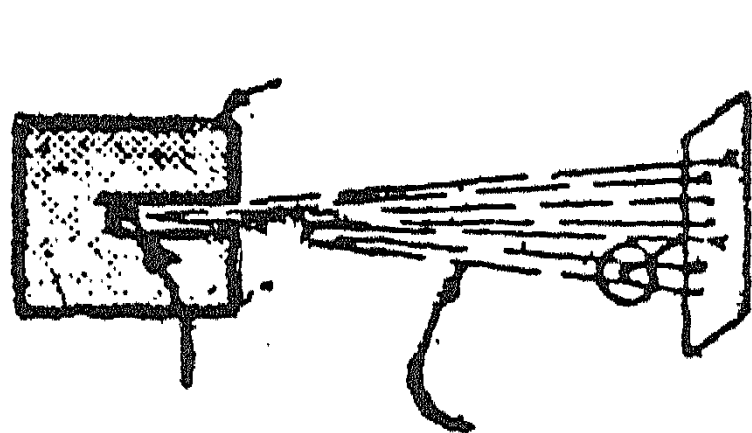
अर्नेस्ट सदरफार्ड

चूंकि अल्फा कण में प्रोटान के धन आवेश को सन्तुलित करने के लिए इलेक्ट्रॉन नहीं होते इसलिए उस पर प्रबल धन आवेश होता है ।

अल्फा कणों को गोलियों के रूप में छोड़ने के लिए जरा से रेडियम का बन्दूक के रूप में उपयोग किया गया । रेडियम, रेडियोधर्मी तत्त्व है । वह निरंतर परमाणविक कणों का विकिरण करता रहता है जिनमें अल्फा कण भी होते हैं । रेडियम को सीसे की एक भारी पेट्टी में रखा गया । पेट्टी की एक दीवार में बहुत सूक्ष्म छेद था जिससे बाहर निकलने वाले अल्फा कणों का मार्ग-दर्शन होता था ।

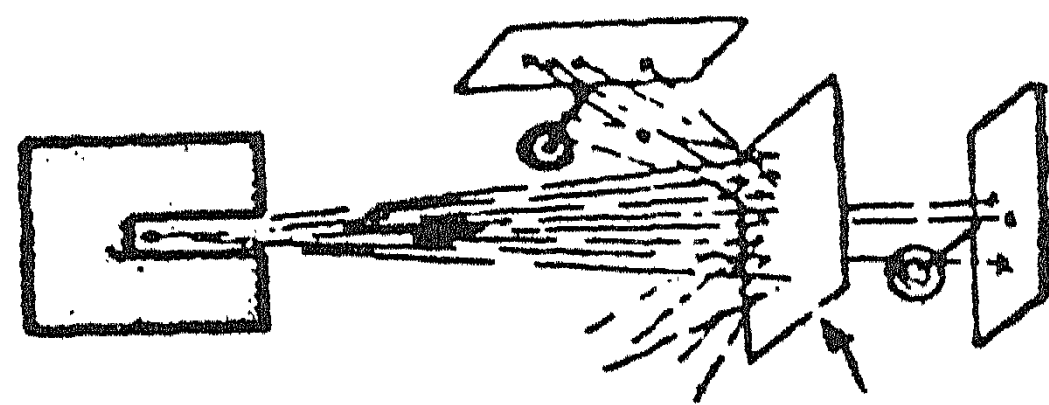
प्रथम प्रयोग के लिए रदरफोर्ड और गाइगर ने रेडियम वाली पेट्टी को एक प्रतिदीप्त पट के सामने रखा । उस पर पट से जब भी कोई अल्फा कण टकराता था तब प्रकाश की एक चिनगारी दिखायी देती थी । इस तरह वे गिन सकते थे कि

सोसा



रेडियम

अल्फा कण



स्वर्णपत्ती

अल्फा कण कितनी बार पट से टकराये हैं । इसके बाद उन्होंने रेडियम और

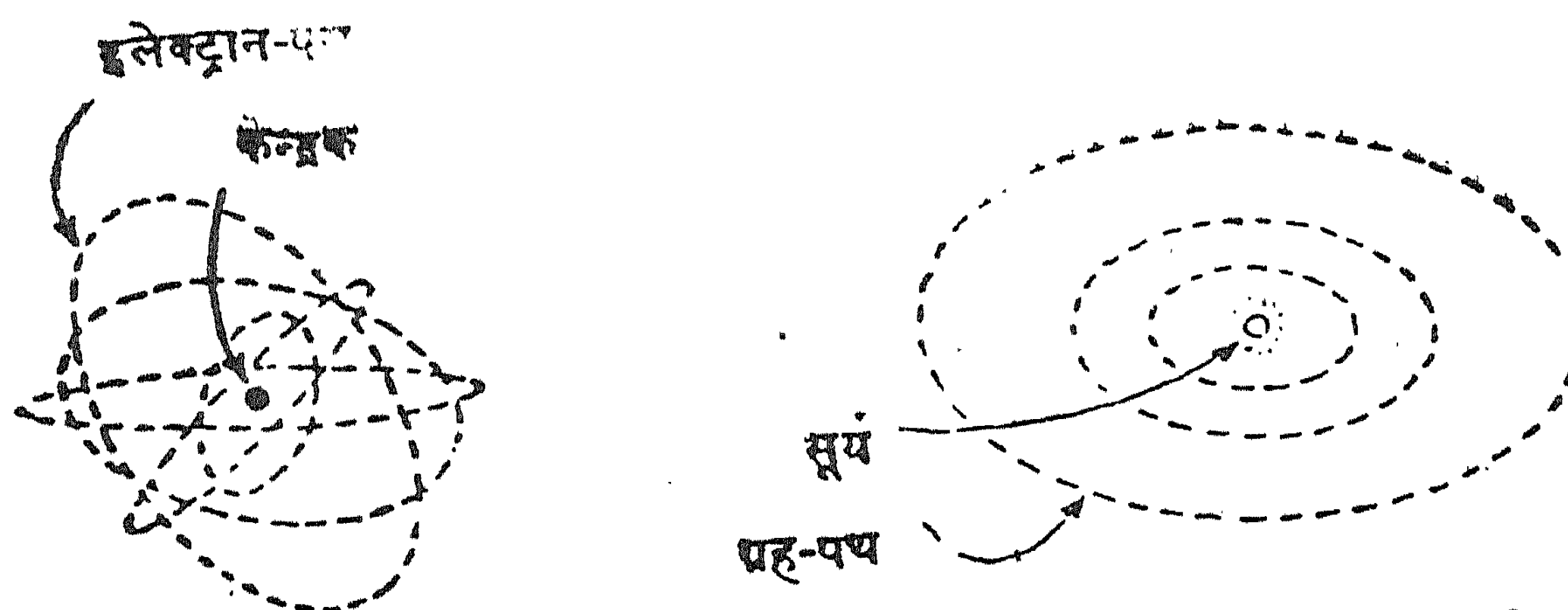
प्रतिदीप्त पट के बीच में सोने की एक बहुत पतली पत्ती लटकायी  $\frac{1}{1,00,000}$

इंच से भी कम मोटी । यद्यपि पत्ती बहुत पतली थी फिर भी उसकी मोटाई में 2000 से भी अधिक परमाणु समा सकते थे क्योंकि परमाणु बहुत ही छोटे होते हैं ।

कल्पना कीजिये कि बिलियर्ड खेलने की एक बहुत बड़ी मेज पर बिलियर्ड की गेंदें (स्वर्ण-परमाणु) बहुत सटकर पड़ी हैं और उनकी तह 2000 गेंदों की मोटाई के बराबर है। उनमें आप एक कंचा (अल्फा कण) मारते हैं। आप किस परिणाम की अपेक्षा करते हैं?—सम्भवतः आपको पूरा विश्वास है कि कंचा पार नहीं जा सकेगा। परन्तु इस प्रयोग में रदरफोर्ड और गाइगर को यह उत्तर नहीं मिला और उन्हें प्रतिदीप्त पट पर चमक दीख ही गई। स्वर्ण परमाणुओं में से होकर पार निकलने में अल्फा कण किसी न किसी तरह समर्थ हो गए थे।

दोनों वैज्ञानिकों ने पर्दे को विभिन्न स्थितियों में रखकर देखा—अगल-बगल और पन्ती के सामने भी। उनको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सभी कोणों पर चमक दिखायी देती थी। एक और बात इससे भी आश्चर्यजनक थी। यहीं नहीं कि अल्फा कण पन्ती में से होकर निकल जाते थे बल्कि वे सब ओर उछलते भी थे। यहां तक कि वे उछलकर वापस रेडियम की ओर भी जाते थे। रदरफोर्ड ने इसका वर्णन इस तरह किया, 'मेरे जीवन की यह सबसे अधिक उल्लेखनीय घटना थी। यह बात लगभग उतनी ही अविश्वसनीय थी जितनी यह कि आप पतले से कागज की ओर 15 इंची बम का गोला छोड़ें और वह लौटकर आपको ही लग जाए।'

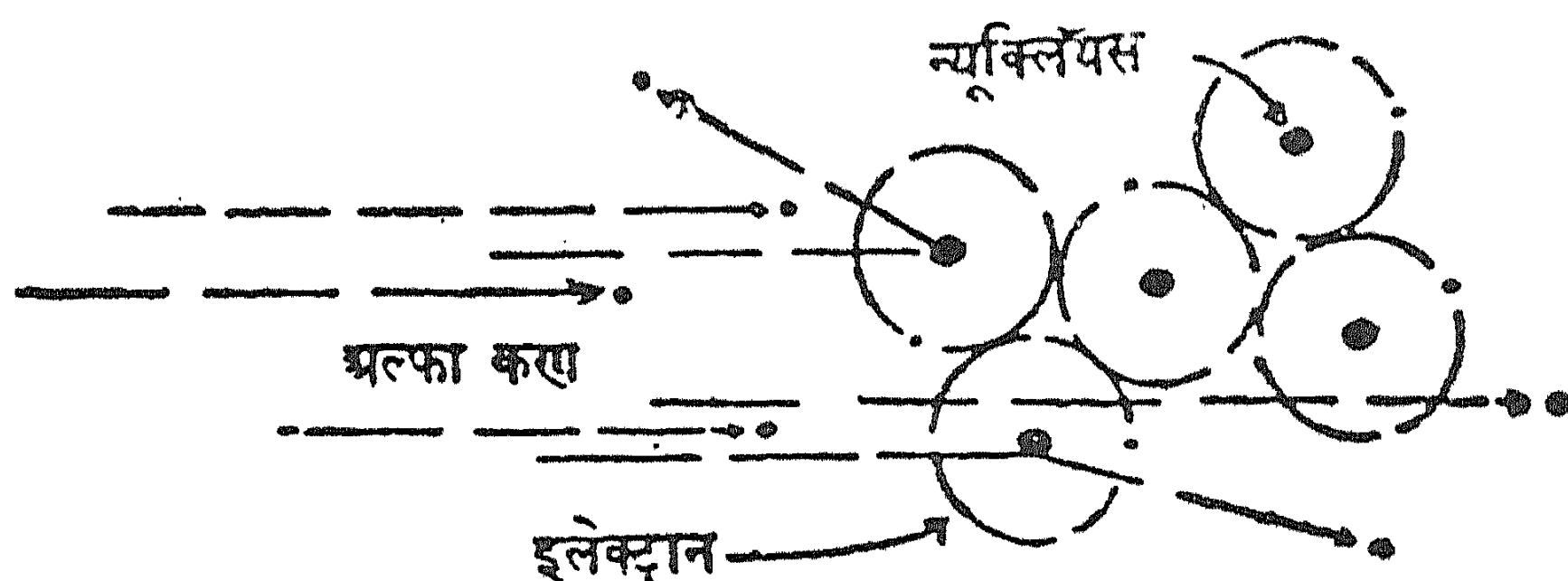
अंत में, 1911 में रदरफोर्ड ने इसका कारण जान लिया। (उनके साथ काम करने वालों को पता चल गया कि उन्हें कोई समाधान मिल गया है क्योंकि जब कभी वे किसी कठिन समस्या को सुलझा लेते थे तब वे उच्च स्वर से 'ईसाई सैनिको, आगे बढ़ो' वाला गाना गाने लगते थे) उनका हल यह था—परमाणुओं में एक बहुत सूक्ष्म और भारी केन्द्रीय भाग होता है जिसे केन्द्रक (न्यूक्लियस) कहते हैं। केन्द्रक से बहुत दूर इलेक्ट्रॉन होते हैं जो बहुत तेजी से केन्द्रक की परिक्रमा करते हैं। प्रत्येक इलेक्ट्रॉन एक विशेष कक्षा में घूमता है। इलेक्ट्रॉन विभिन्न वेगों से घूमते हैं। जो इलेक्ट्रॉन केन्द्रक से दूरतम होते हैं वे लगभग 600 मील प्रति सेकण्ड की चाल से घूमते हैं, परन्तु जो उसके निकट होते हैं वे 90,000 मील प्रति सेकण्ड की चाल से घूमते हैं—प्रकाश की चाल से लगभग आधी।



रदरफोर्ड ने टाम्सन की मुनक्केवाली केक के बजाय परमाणु की संरचना की

तुलना सौर परिवार से की। उन्होंने कहा कि जिस प्रकार सौर परिवार के केन्द्र में सूर्य है उसी तरह परमाणु के केन्द्र में केन्द्रक होता है। जिस तरह सूर्य से बहुत दूरियों पर ग्रह, कक्षाओं में घूमते रहते हैं उसी तरह केन्द्रक से बहुत अधिक दूरियों पर इलेक्ट्रॉन घूमते रहते हैं।

यदि परमाणु का अधिकांश भाग रिक्तक है तो स्पष्ट हो जाता है कि अल्फा कण क्यों सोने की पन्नी में से होकर जा सके। यदि परमाणु में एक सूक्ष्म परन्तु भारी केन्द्रक है जिस पर धन आवेश है तो वह कुछ अल्फा कणों को विक्षिप्त करेगा

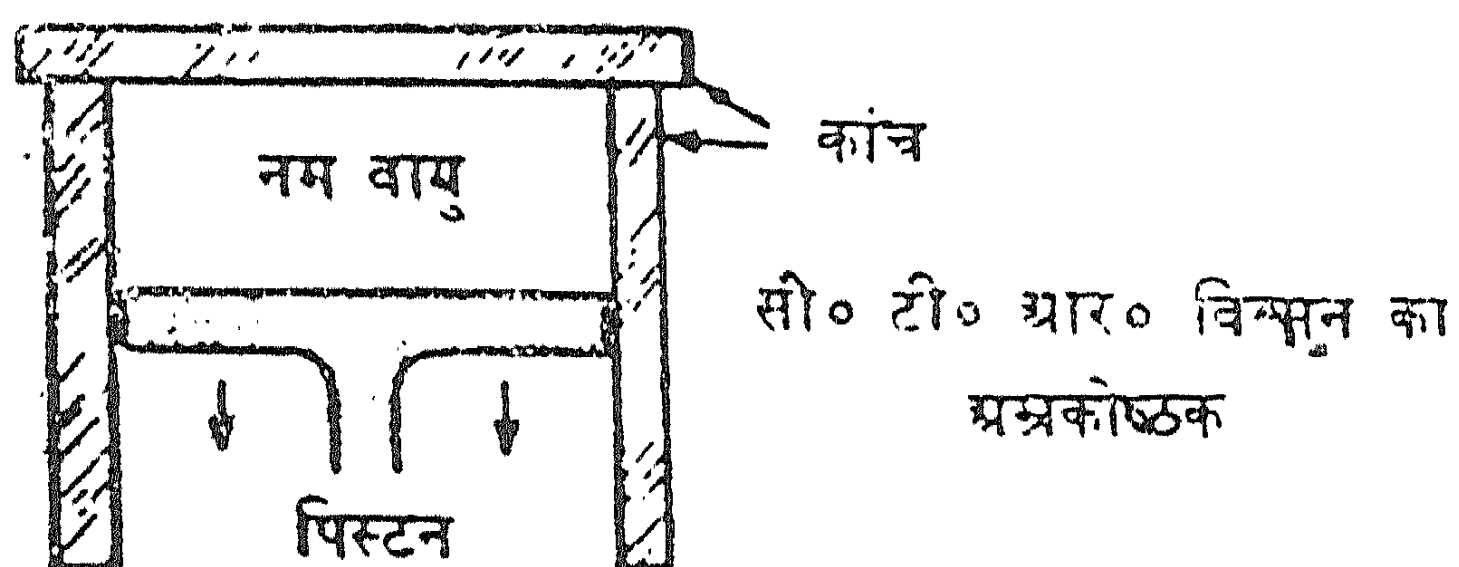


और उन थोड़े से अल्फा कणों को पीछे की ओर भी उछाल देगा जो सोने के परमाणुओं से टकरायेंगे। (समान आवेश से युक्त वस्तुएं एक-दूसरे को प्रतिकर्षित करती हैं जैसे धन, धन को और ऋण, ऋण को। विपरीत आवेश एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं जैसे धन, ऋण को या ऋण, धन को।)

यद्यपि रदरफोर्ड के मन में परमाणु का एक अस्पष्ट चित्र बन चुका था, फिर भी बहुत से प्रश्नों के उत्तर अभी अज्ञात थे। केन्द्रक का निर्माण किस चीज से होता है? इलेक्ट्रॉनों के ऋण विद्युत् आवेशों का सन्तुलन किससे होता है?

रदरफोर्ड ने एक और प्रयोग किया जिससे इन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने में सहायता मिली। यह प्रयोग भी पहले प्रयोग जैसा था। परन्तु इस बार रेडियम से निकलने वाले अल्फा कणों का लक्ष्य सोने की पन्नी नहीं बल्कि नाइट्रोजन गैस थी।

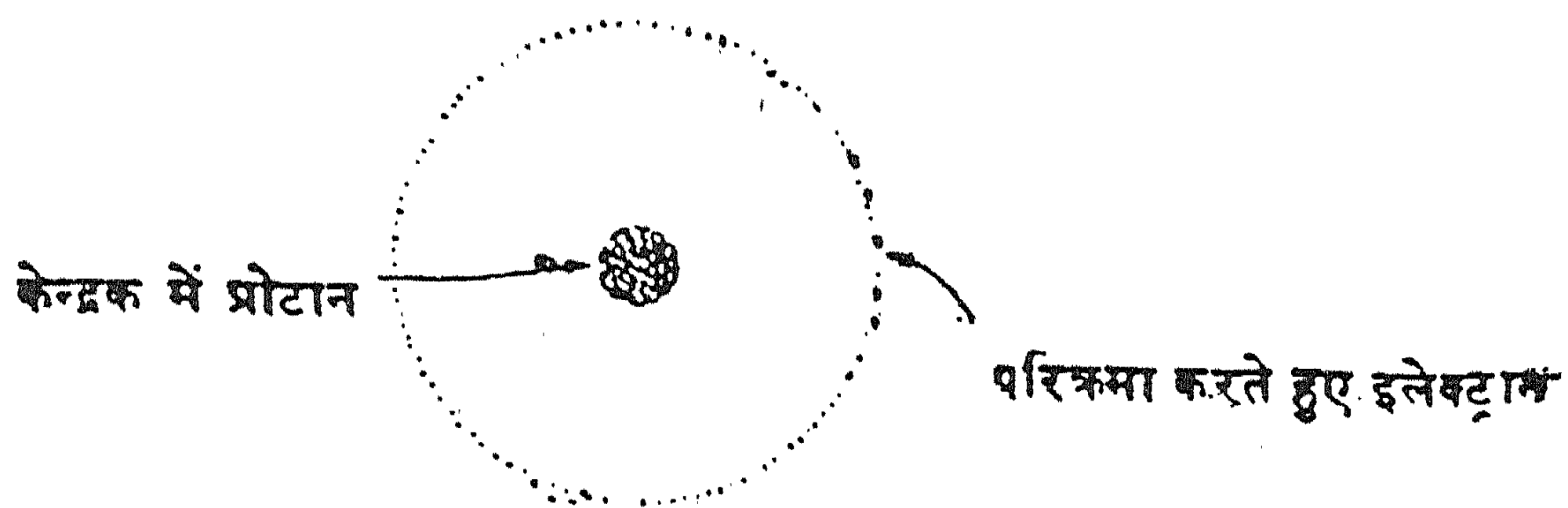
इस प्रयोग में काम आनेवाला एक महत्वपूर्ण उपकरण अभ्रकोष्ठक (क्लाउड चेम्बर) था जिसको सी० टी० आर० विल्सन ने आविष्कृत किया था। मूलतः अभ्रकोष्ठक जलवाष्प से भरा हुआ एक मर्तबान है। मर्तबान का पेंदा एक चल पिस्टन के रूप में होता है। जब पिस्टन को सहसा नीचे की ओर ले जाते हैं तब मर्तबान के भीतर की वायु फैलती है और तापमान गिरता है। यदि उस क्षण अभ्रकोष्ठक में से विद्युत् से आवेशित कुछ कण गुजरें तो उनके पथों पर जल-वाष्प संघनित हो जाएगी और आप जल-बिन्दुओं की लीक को देख सकते हैं या उनका फोटो भी ले सकते हैं। ये लीकें बताती हैं कि आवेशित कण किस मार्ग से गए हैं।



जैसी कि रदरफोर्ड को आशा थी, नाइट्रोजन के साथ किए गए इस प्रयोग में अधिकांश अल्फा कण नाइट्रोजन परमाणुओं में से होकर निकल गये, परन्तु कुछ अल्फा कण उनके केन्द्रकों से टकराकर मुड़ गये। रदरफोर्ड ने परमाणु के जिस रूप की कल्पना की थी, यह उसका एक और प्रमाण था; अर्थात् परमाणु का अधिकांश भाग रिक्त होता है और उसके केन्द्र में एक सूक्ष्म केन्द्रक होता है।

रदरफोर्ड ने देखा कि जब नाइट्रोजन तथा अन्य गैसों पर अल्फा कणों की गोलाबारी की जाती है तब गोलाबारी के बाद धन विद्युत् से आवेशित हाइड्रोजन के कुछ परमाणु बच रहते हैं। (हाइड्रोजन परमाणु के केन्द्रक में सामान्यतः केवल एक प्रोटोन होता है और कोई न्यूट्रॉन नहीं होता। एक इलेक्ट्रॉन केन्द्र की परिक्रमा करता रहता है। यदि यह इलेक्ट्रॉन हट जाए तो हाइड्रोजन परमाणु में केवल एक प्रोटान बच रहता है जिस पर धन आवेश होता है) इस तथ्य से रदरफोर्ड को उसका एक सबसे महत्वपूर्ण विचार प्राप्त हुआ। उन्होंने कहा कि प्रत्येक तत्त्व के परमाणुओं में इसी प्रकार के एक या एक से अधिक हाइड्रोजन परमाणु होते हैं जो धन विद्युत् से आवेशित होते हैं। रदरफोर्ड ने इन धन आवेशित हाइड्रोजन-परमाणुओं को प्रोटोन कहा। जिस यूनानी शब्द से प्रोटान शब्द की व्युत्पत्ति हुई है उसका अर्थ है, प्रथम।

अब रदरफोर्ड ऐसी स्थिति में थे कि वे परमाणु का अधिक पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर सकें। इसके अनुसार परमाणु के केन्द्र में केन्द्रक होता है जो भारी तथा धन आवेशित प्रोटानों से निर्मित होता है। इस केन्द्रक से बहुत दूरी पर अपेक्षाकृत बहुत हल्के इलेक्ट्रॉन होते हैं जो ऋण आवेश से युक्त होते हैं और जो केन्द्रक की उसी तरह परिक्रमा करते रहते हैं, जैसे ग्रह सूर्य की।





रदरफोर्ड के दिए नमूने ने परमाणु से सम्बन्धित बहुत-सी बातों का स्पष्टीकरण किया। परन्तु उनके एक शिष्य, नील्सबोर (1885-1962) की नजर एक समस्या पर पड़ी। सूर्य की परिक्रमा करने वाले ग्रहों पर कोई विद्युत् आवेश नहीं होता परन्तु न्यूक्लियस की परिक्रमा करने वाले इलेक्ट्रॉनों पर ऋण विद्युत् आवेश होता है। उन्हें मालूम था कि विद्युत् आवेश से युक्त कोई वस्तु जब घूमती है तब वह ऊर्जा-तरंगों का विकिरण करती है। चूंकि तरंगें पैदा करने से ऊर्जा का क्षय होता है अतः जब इलेक्ट्रॉन की सारी ऊर्जा समाप्त हो जाए तब उसे केन्द्रक में आ गिरना चाहिए। बोर ने हिसाब लगाया कि  $\frac{1}{10,00,00,000}$  सेकंड के भीतर ही ऐसा

हो जाना चाहिए। तो परमाणुओं का अस्तित्व कैसे कायम रह सकता है जबकि यह सिद्ध किया जा सकता है कि एक सेकंड के भीतर ही प्रत्येक परमाणु को समाप्त हो जाना चाहिए।

बोर ने इस समस्या का एक समाधान मालूम किया जो क्वैन्टम-सिद्धान्त पर आधारित था। इस सिद्धान्त को सर्वप्रथम मैक्स प्लैन्क ने 1900 में प्रतिपादित किया था। इस सिद्धान्त का पूर्ण निरूपण इस पुस्तक में करना सम्भव नहीं है। फिर भी हम इसकी आधारभूत धारणाओं का संक्षिप्त उल्लेख कर सकते हैं। इनके अनुसार ऊर्जा, जो सतत प्रतीत होती है, वास्तव में पृथक् इकाइयों से निर्मित होती है जिन्हें क्वैन्टा कहते हैं। यह परमाणु-सिद्धान्त के समान है क्योंकि परमाणु-सिद्धान्त के अनुसार पदार्थ, जो सतत प्रतीत होता है, वास्तव में पृथक् इकाइयों से निर्मित होता है जिन्हें परमाणु कहते हैं। दूसरे शब्दों में प्रकाश या ताप जैसी ऊर्जा सतत प्रवाह के रूप में नहीं निकलती बल्कि छोटी पोटलियों या क्वैन्टा के रूप में चलती है।

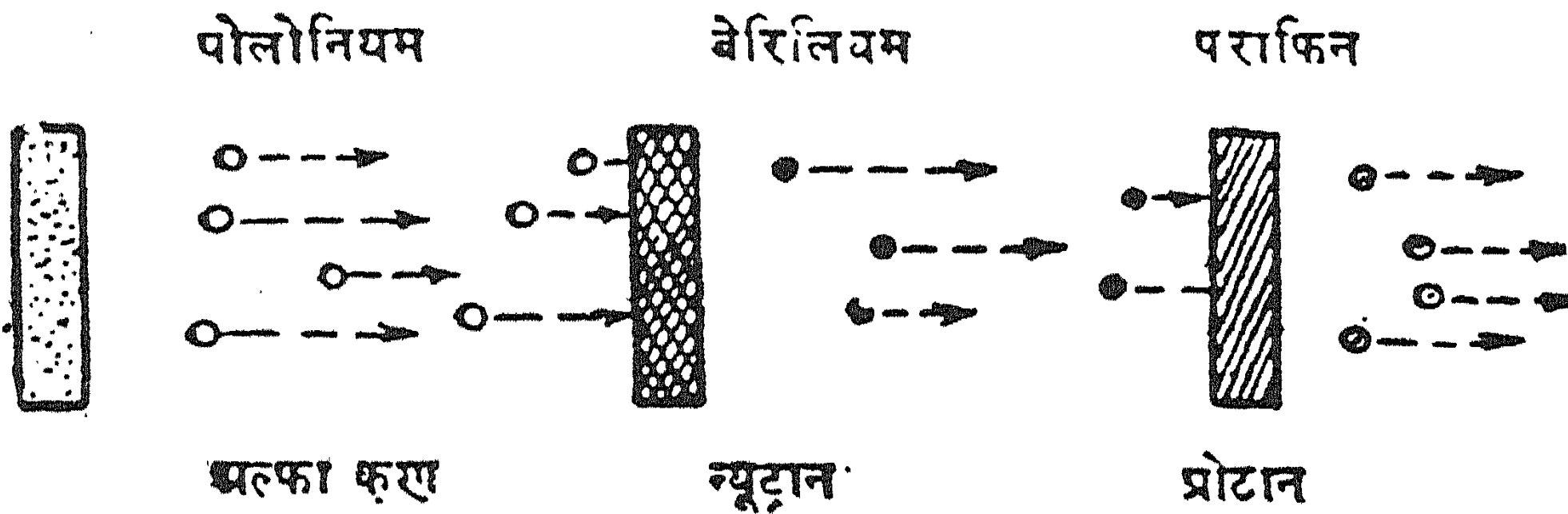
रदरफोर्ड के परमाणु-नमूने के साथ प्लैन्क के क्वैन्टम-सिद्धान्त को जोड़ने में बोर सफल हुए। परमाणु के भीतर इलेक्ट्रॉनों की गति के सम्बन्ध में उन्होंने तीन आधारभूत नियम प्रतिपादित किये—

1. ऐसे पथ बहुत ही कम हैं जिन पर इलेक्ट्रान, केन्द्रक की परिक्रमा कर सकते हैं।
2. इन पथों में से किसी पर घूमते समय इलेक्ट्रान ऊर्जा का विकिरण नहीं करते।
3. इलेक्ट्रान जब एक पथ से कूद कर दूसरे पथ पर जाते हैं तभी वे ऊर्जा देते या लेते हैं। यह ऊर्जा एक अकेले क्वैन्टम के रूप में होती है।

इस प्रकार जब तक इलेक्ट्रॉन अपने सामान्य पथों में रहते हैं तब तक वे ऊर्जा का व्यय नहीं करते। इससे इस बात का स्पष्टीकरण हो जाता है कि परमाणु का स्वरूप कैसे कायम रहता है।

बोर ने 1913 में परमाणु का जो विवरण प्रस्तुत किया वह बिलकुल पूर्ण प्रतीत होता था। लेकिन केन्द्रक अब भी रहस्य ही बना हुआ था। केन्द्रक के विषय में जो सिद्धान्त सामान्यतः उस समय स्वीकृत था उसके अनुसार उसमें प्रोटानों के साथ इलेक्ट्रॉन भी होते हैं। ये इलेक्ट्रॉन उन इलेक्ट्रॉनों के अतिरिक्त थे जो कक्षा में परिक्रमा करते रहते थे।

बहुत से वैज्ञानिक केन्द्रक की यथार्थ रचना मालूम करने का प्रयत्न कर रहे थे। तीन वैज्ञानिकों ने, जो एक-दूसरे के कार्यों से सर्वथा अनभिज्ञ थे, 1920 में एक ही विचार प्रस्तुत किया। रदरफोर्ड (इंग्लैंड), विलियम डी. हार्किन्स (संयुक्त राज्य) और आस्मे मैसन (आस्ट्रेलिया) इन तीनों ने भविष्यवाणी की कि केन्द्रक में एक और कण होता है। वे इस बात में सहमत थे कि उस कण की संहति या भार लगभग प्रोटान की संहति के बराबर है परन्तु उस पर कोई विद्युत् आवेश नहीं है। हार्किन्स ने उनका वर्णन इस तरह किया, 'यह दूसरा, कम प्रचुर कणों का दल है जिस पर शून्य आवेश होता है।' उन्होंने उन्हें न्यूट्रान कहा क्योंकि उन पर विद्युत् आवेश नहीं था, अतएव वे न्यूट्रल (उदासीन) थे।



बारह वर्ष बाद रदरफोर्ड के शिष्य जेम्स चैडविक (जन्म 1891) ने न्यूट्रान का पता लगाया। उन्होंने बेरिलियम तत्त्व पर अल्फा कणों की गोलाबारी की। उन्होंने पाया कि ऐसा करने से बेरिलियम से कुछ कण बाहर निकलते हैं। वे कण बहुत दूर तक जाते हैं और वे चुम्बक के किसी ध्रुव से विचलित नहीं होते हैं। चूंकि उन पर चुम्बक का कोई प्रभाव नहीं पड़ता अतः चैडविक ने सोचा कि वे आवेशहीन या उदासीन होंगे। चूंकि परमाणुओं से टकराकर उनमें से प्रोटानों को बाहर निकालते थे अतः चैडविक ने सोचा कि उनकी संहति प्रोटानों की संहति के बराबर होगी।

यह बात वैसी ही है जैसे एक बिलियर्ड गेंद को मारना। यदि यह गेंद बिलियर्ड गेंद से बहुत हल्की होगी तो बिलियर्ड गेंद अपनी जगह से नहीं हटेगी। परन्तु यदि दूसरी गेंद लगभग बिलियर्ड गेंद जितनी भारी होगी तो वह बिलियर्ड गेंद को हिला देगी। इस आधार पर चैडविक ने घोषणा की कि उसने उस न्यूट्रान का पता लगा लिया है जिसकी भविष्यवाणी बारह वर्ष पूर्व की गयी थी।

तो, केन्द्रक में केवल प्रोटान ही नहीं होते । इसमें न्यूट्रान भी होते हैं जिनकी संहति प्रोटान के बराबर होती है परन्तु जिन पर कोई आवेश नहीं होता । न्यूट्रान की खोज के साथ परमाणु का वह चित्र पूर्ण हो जाता है जिसकी चर्चा के साथ हमने इस अध्याय को आरम्भ किया था ।

केन्द्रक में प्रोटान और न्यूट्रान की कल्पना करने के लिए हाल में दो मॉडलों का सुझाव दिया गया है । एक मॉडल खोलनुमा है जिसके अनुसार प्रोटान और न्यूट्रान केन्द्रक के भीतर विभिन्न स्तरों पर वैसे ही घूमते रहते हैं जैसे इलेक्ट्रान केन्द्रक के बाहर विभिन्न स्तरों पर घूमते रहते हैं । खोलनुमा मॉडल ने इस बात का बहुत अच्छी तरह से स्पष्टीकरण किया है कि कुछ परमाणु क्यों बहुत स्थायी होते हैं और पृथ्वी पर प्रचुर मात्राओं में पाये जाते हैं । द्रव-बंद-मॉडल, केन्द्रक की कल्पना जल की बूंद के रूप में करता है । इसके अनुसार केन्द्रक की आकृति द्रव की गोल बूंद की तरह होती है और इसमें वही पृष्ठ तनाव होता है जो जल बिन्दु की आकृति को कायम रखता है । इन मॉडलों को इसलिए चुना गया है क्योंकि वे सामान्यरूप से केन्द्रक के क्रियाकलाप का स्पष्टीकरण करने में सहायक हो सकते हैं । वैज्ञानिक अब भी ऐसे प्रमाणों को ढूँढ़ने के प्रयत्न में हैं जिनसे केन्द्रक के अधिक यथार्थ मॉडल की कल्पना की जा सके जिससे केन्द्रक की पूर्ण व्याख्या की जा सके ।

क्या इसका अर्थ यह है कि सब परमाणु एक जैसे होते हैं ? नहीं । यद्यपि एक तत्त्व के सब परमाणु एक जैसे होते हैं । परन्तु भिन्न-भिन्न तत्त्वों के परमाणु एक-दूसरे से भिन्न होते हैं । भिन्नता का कारण यह है कि आधारभूत कणों की संख्याएं उनमें भिन्न-भिन्न होती हैं ।

सबसे हल्के तत्त्व, हाइड्रोजन, के केन्द्रक में केवल एक प्रोटान होता है और कोई न्यूट्रान नहीं होता । एक इलेक्ट्रान कक्षा में घूमता रहता है । चूंकि किसी तत्त्व का द्रव्यमान-संख्या उसके प्रोटानों और न्यूट्रानों की सम्मिलित संख्या के बराबर होती है अतः हाइड्रोजन की द्रव्यमान-संख्या केवल एक है । (इलेक्ट्रान इतन हल्के होते हैं कि द्रव्यमान-संख्या की गणना करते समय उनकी उपेक्षा कर दी जाती है ।) किसी परमाणु के भार को व्यक्त करने का एक तरीका द्रव्यमान-संख्या है । आक्सीजन के केन्द्रक में आठ प्रोटान और आठ न्यूट्रान होते हैं तथा आठ इलेक्ट्रान होते हैं । अतः इसकी द्रव्यमान-संख्या सोलह है । यूरेनियम-235 में 92 प्रोटान, 143 न्यूट्रान और 92 इलेक्ट्रान होते हैं; इसकी द्रव्यमान-संख्या 235 है ।

तत्त्व विभिन्न भारों वाले हो सकते हैं । प्रत्येक भार को समस्थानिक (आइसोटोप) कहते हैं । हमने अभी कहा है यूरेनियम की द्रव्यमान-संख्या 235 है । परन्तु दूसरे प्रकार के यूरेनियम में जिसे यूरेनियम-238 कहते हैं, 92 प्रोटान, 92 इलेक्ट्रान और 146 न्यूट्रान होते हैं । रासायनिक दृष्टि से यह यूरेनियम-235 जैसा ही है



परन्तु इसकी द्रव्यमान-संख्या अधिक है क्योंकि इसमें तीन न्यूट्रान अधिक होते हैं। तो समस्थानिक ऐसे परमाणु हुए जिनमें प्रोटानों की संख्या तो वही होती है परन्तु न्यूट्रानों की संख्या भिन्न होती है।

1932 में न्यूट्रान की खोज के साथ परमाणु का आधारभूत चित्र पूर्ण हो गया। परन्तु नये सिद्धान्तों के आधार पर वैज्ञानिक ऐसे कणों का वर्णन करने लगे जिनका अभी तक पता नहीं चला था परन्तु जिनके बारे में उनका विश्वास था कि वे परमाणु में होते जरूर हैं। अतः 1930 वाले दशक में भौतिकी की एक नयी शाखा का जन्म हुआ जिसका उद्देश्य था प्रारंभिक कणों का अध्ययन। यह एक विचित्र नाम है क्योंकि इस मामले में दो बातें निश्चित हैं—एक तो यह कि प्रारंभिक कण प्रारंभिक नहीं हैं बल्कि बहुत ही जटिल हैं, और दूसरी यह कि कण केवल कण ही नहीं हैं बल्कि उनमें से कुछेक, ऊर्जा-तरंगों की तरह व्यवहार करते हैं और उनकी संहति नहीं होती।

इस तलाश में जो पहला कण मिला वह इलेक्ट्रान जैसा था परन्तु वह धन आवेश से युक्त था। इसका पता कैलिफोर्निया इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नालोजी के कार्ल डी० ऐन्डर्सन (जन्म 1905) ने ब्रह्माण्ड-किरणों के अध्ययन के दौरान 1932 में पाया। इसे पाजिट्रान कहा गया। उन्होंने देखा कि कुछ परमाणुओं से जब ब्रह्माण्ड किरणें टकराती हैं तब एक ऐसा कण निकलता है जो बिल्कुल इलेक्ट्रान की तरह व्यवहार करता है लेकिन उस पर विद्युत का धन आवेश होता है। इसका जीवन-काल एक सेकंड के लगभग अरबवें भाग के बराबर होता है अतः आप समझ सकते हैं कि पाजिट्रान का पता पहले क्यों नहीं लग सका था?

1935 में किओटो विश्वविद्यालय (जापान) के हिडेकी युकावा (जन्म 1907) ने एक दूसरे कण, मेसान की भविष्यवाणी की। उन्होंने कहा कि मेसान वह ऊर्जा-बंधन या गोद है जो केन्द्रक के भीतर कणों को बांधे रखता है। ब्रह्माण्ड-किरणों के अपने अनुसंधान के फलस्वरूप कार्ल ऐन्डर्सन ने भी मेसान का पता लगाया था। बाद में मालूम हुआ कि मेसान दो प्रकार के होते हैं—एक भारी जिन्हें पाई मेसान कहते हैं और दूसरे हल्के जिन्हें म्यू मेसान कहते हैं।

1931 में आस्ट्रिया के एक भौतिकी विशेषज्ञ, वोल्फगैंग पाउली (1900-1958), ने भविष्यवाणी की कि कुछ तत्त्वों से और भी एक प्रकार का कण उत्सर्जित होता है। इस कण में संहति नहीं होती है और परमाणुओं के विघटन के समय जो ऊर्जा लुप्त होती (अध्याय 9 देखिये) हुई प्रतीत होती है उसके लिए ये ही कण उत्तरदायी हैं। 1956 में कहीं जाकर ये कण एक विशाल न्यूक्लीय रिएक्टर से निकलते हुए पाए गए। इन्हें न्यूट्रिनो कहते हैं।

जब पाजिट्रान और इलेक्ट्रान टकराते हैं तब दोनों लुप्त हो जाते हैं और ऊर्जा उत्पन्न होती है। इसीलिए पाजिट्रान को प्रतिइलेक्ट्रान भी कहते हैं। इससे इस

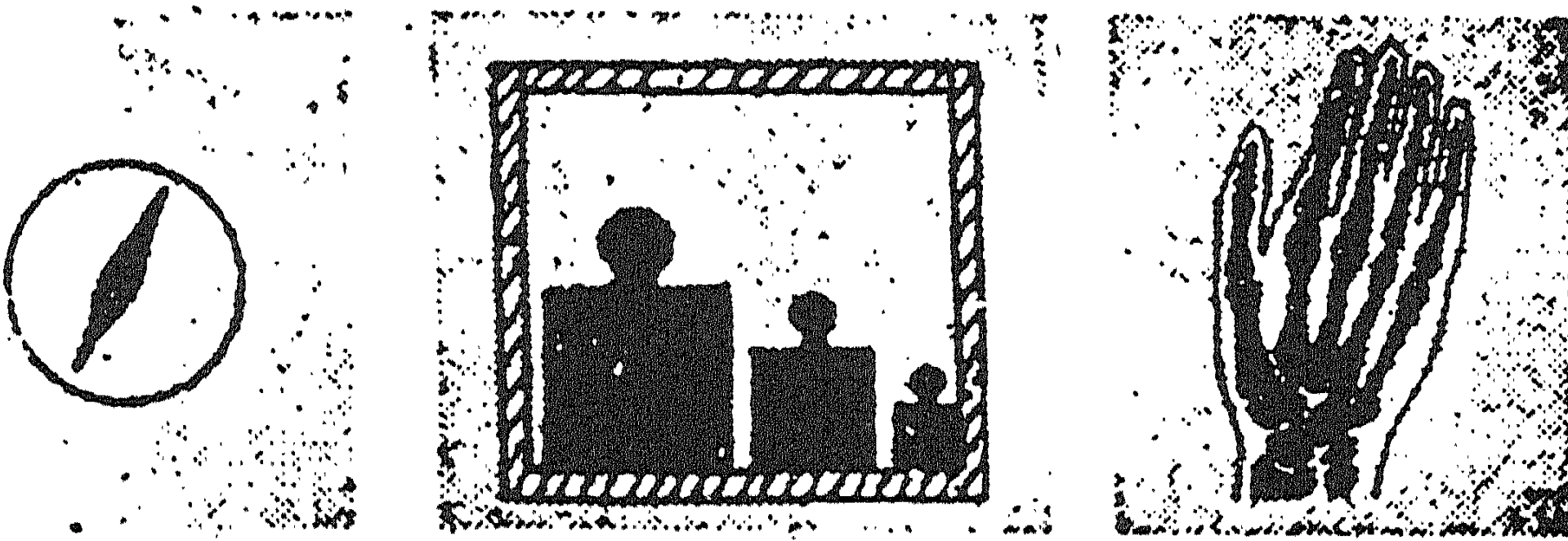


विश्वास की उत्पत्ति हुई कि सम्भवतः प्रत्येक कण का एक प्रतिकण होता है। अब यह विश्वास सत्य सिद्ध हो चुका है। परमाणु के भीतर, कुल तीस से अधिक कण और प्रतिकण पाए जा चुके हैं।

इस सबसे हमें परमाणु का एक पूर्ण चित्र उपलब्ध होता है। न्यूक्लियस में मुख्यतः प्रोटान और न्यूट्रान होते हैं और उसके बाहर परिक्रमा करने वाले इलेक्ट्रानों के आवरण होते हैं। इनके अतिरिक्त लगभग तीस प्रारंभिक कण और प्रतिकण हैं। परमाणुओं की संरचना का जो ज्ञान हमने प्राप्त किया है उसकी सहायता से हम एक्स-किरणों, रेडियोधर्मिता तथा सबसे महत्वपूर्ण सफलता, पारमाणविक शक्ति की उत्पत्ति का रहस्य समझ सकते हैं।

## एक्स-किरणों तथा रेडियोधर्मिता

सन् 1896 के प्रथम दिन विश्व के बहुत से वैज्ञानिकों को डाक से ऐसे फोटोग्राफ मिले जो अत्यन्त असाधारण थे। एक फोटोग्राफ में एक मजबूत पेटी के भीतर पड़ी कुतुबनुमा (दिक्सूचक यंत्र) की सुई दिखाई देती थी। दूसरे में एक बंद बक्स के भीतर पड़े बाट दिखाई देते थे। सबसे अधिक उल्लेखनीय वह फोटो थी जिसमें हाथ के अन्दर की हड्डियों का ढांचा दिखायी देता था !



विल्हेम कोन्राड रान्ट्जन (1845-1923) ने, जो वर्जबर्ग विश्वविद्यालय (जर्मनी) में भौतिकी के प्रोफेसर थे, प्रमुख भौतिकीविज्ञों के पास ये फोटोग्राफ भेजे थे। पलक मारते वे, रहस्यपूर्ण एक्सकिरणों के आविष्कर्ता के रूप में, विश्व-विख्यात हो गए।

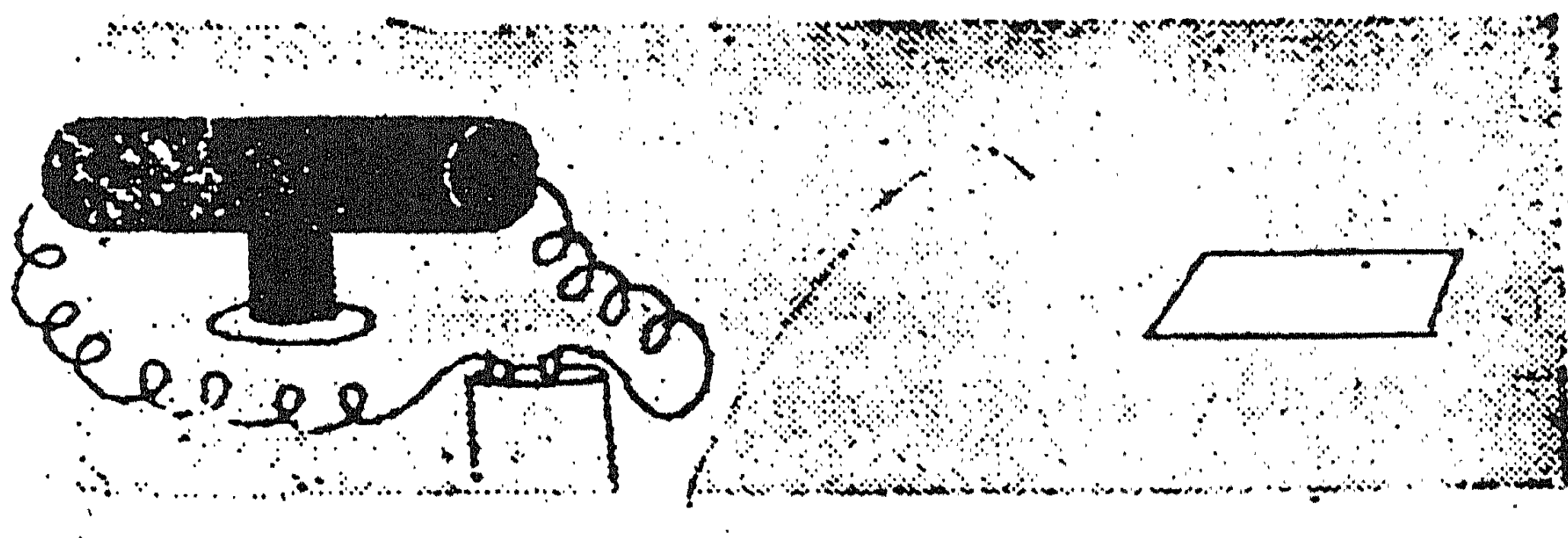
रान्ट्जन ने, ऋणाग्र-किरणों के दौरान संयोग से एक्स-किरणों का आविष्कार कर लिया। वे क्रुक्स-नली के साथ प्रयोग कर रहे थे। आपको याद होगा कि इसी उपयोगी उपकरण की सहायता से इलेक्ट्रान का आविष्कार हुआ था। (देखिये अध्याय 8) क्रुक्स नली एक खोखली नहीं होती थी जिसमें से वायु निकाल ली गयी होती थी। नली के दोनों सिरों पर जो धातु की पट्टिकाएं, ऋणाग्र और धनाग्र, होती थीं, वे एक विद्युत् परिपथ से सम्बन्धित होती थीं। जब विद्युत् प्रवाहित की जाती थी तो नली में भिन्न प्रकार की दीप्तियां भर जाती थीं। चूंकि दीप्तियां



विल्हेल्म रान्ट्जन

ऋणाग्र से आती हुई प्रतीत होती थीं इसलिए उनका नाम ऋणाग्र-किरणें रखा गया था।

एक महत्वपूर्ण प्रयोग में रान्ट्जन ने नली पर काला गत्ता लपेट दिया ताकि किरणें पार्श्वों से बाहर न जा सकें। फिर, उन्होंने प्रयोगशाला की बत्तियों को बुझाया और गत्ते के आवरण की जांच के लिए विद्युत् को प्रवाहित किया। यह पहले से ही मालूम था कि ऋणाग्र-किरणें वायु में एक इंच के कुछ अंश से अधिक दूर नहीं जा सकतीं। अतः रान्ट्जन को किसी किरण के दिखने की आशा नहीं थी। उनको कितना आश्चर्य हुआ होगा जब उन्होंने देखा कि नली से लगभग एक गज की दूरी पर स्थित उनकी बेंच पर हरे रंग की तरंगें झिलमिला रही हैं। हुआ यह था कि उनकी मेज पर संयोग से एक गत्ते का बना पर्दा पड़ा था जिस पर एक प्रतिदीप्त रासायनिक पदार्थ (ऐसा पदार्थ जो कुछ प्रकार के प्रकाशों या ऋणाग्र-किरणों के सम्पर्क में आने से चमकता है) का लेप किया गया था। वही गत्ता उस समय चमक रहा था।

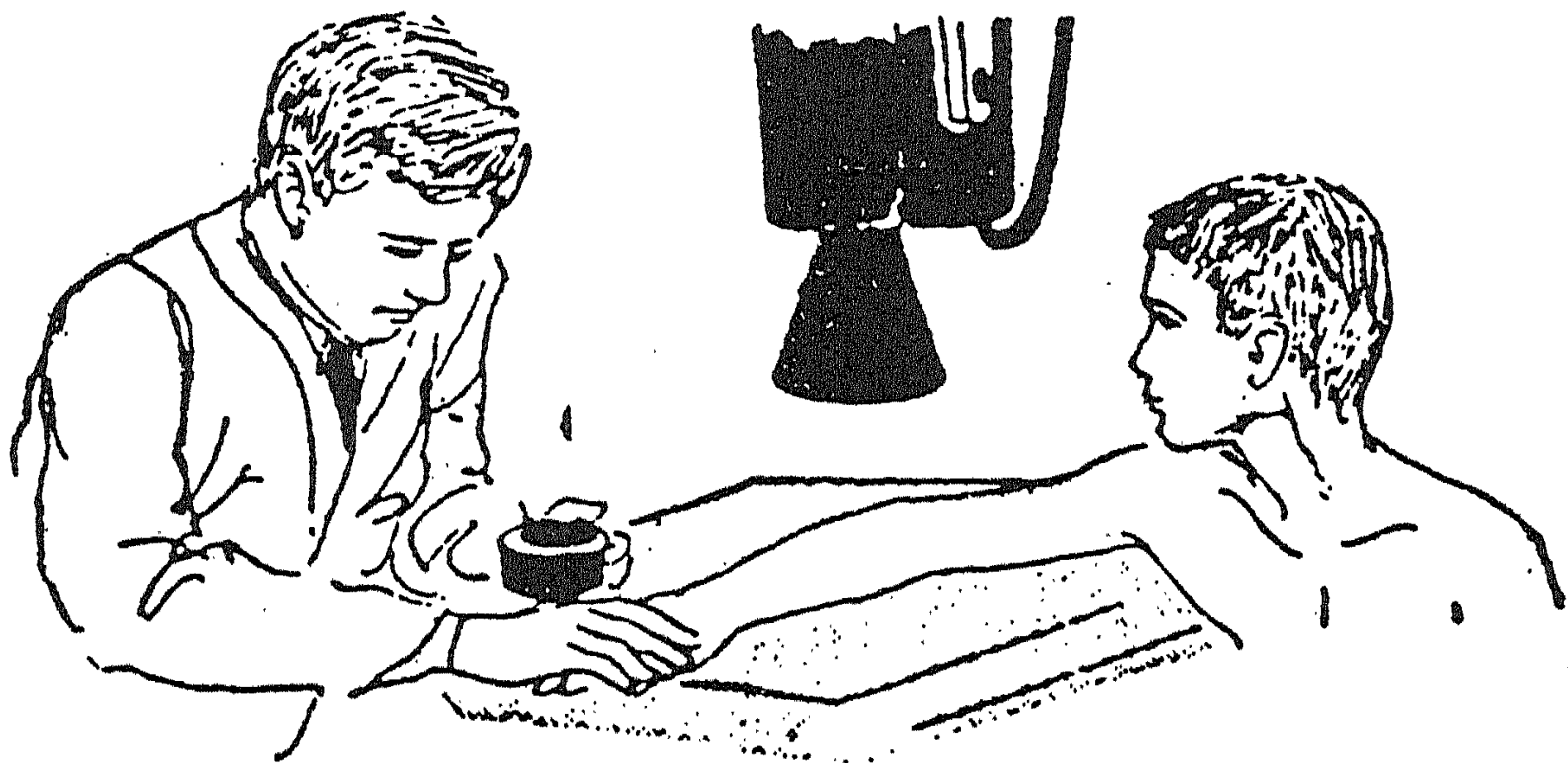


रान्ट्जन एक बहुत योग्य और गम्भीर वैज्ञानिक थे। जो चीज पर्दे को दीप्त कर रही थी, उसकी अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए उन्होंने कार्य आरम्भ

कर दिया। उस पर्दे और नली के बीच उन्होंने भिन्न-भिन्न पदार्थों को रखा। लकड़ी और एल्यूमिनियम से चमक कुछ धीमी पड़ गयी परन्तु सीसे के एक टुकड़े ने चमक को बिल्कुल बन्द कर दिया। एक दिन रान्ट्जन ने, वैसे ही, अपने हाथ को नली और प्रतिदीप्त पर्दे के बीच रख दिया। उन्होंने पर्दे पर विचित्र प्रकार की छायाएं देखीं। सहसा उन्होंने महसूस किया कि नमूना उन्हीं के हाथ का ही था। जिस किरण का उन्होंने आविष्कार किया था वह उनके हाथ में से गुजर सकती थी और पर्दे पर उनकी हड्डियों और मांस की, क्रमशः गहरी और हल्की छाया डाल रही थी। बाद में, उन्हें मालूम हुआ कि फोटो वाली फिल्म को ढकने वाले कागज में से होकर जाने में भी वे किरणें समर्थ थीं। अतः उन्होंने अपना हाथ आच्छादित फोटो-फिल्म और नली के बीच रखा; जब फिल्म को धोया तो हड्डियों और मांस का चित्र उभर आया। इसी विधि से रान्ट्जन ने वे फोटोग्राफ बनाए थे जिन्होंने वैज्ञानिक-क्षेत्रों में तहलका मचा दिया था।

दो महीने तक रान्ट्जन ने इन विचित्र किरणों का अध्ययन किया। उन्होंने देखा कि ऋणाग्र-किरणें जब धनाग्र पट्टिका से टकराती हैं तब ये किरणें निकल आती हैं। लेकिन वे उन सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं मालूम कर सके जो इन किरणों के बारे में उनके मन में उठते थे। चूंकि 'एक्स' अज्ञात राशि का प्रतीक माना जाता है अतः उन्होंने इन किरणों का नाम एक्स किरण रखा।

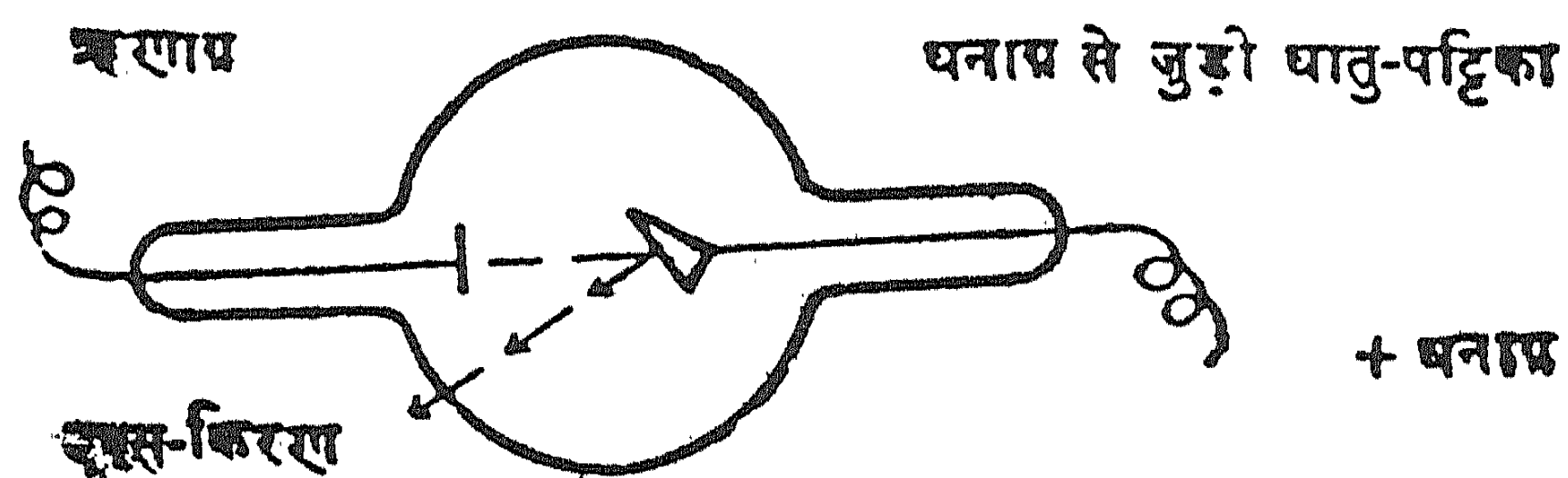
चिकित्सकों ने शीघ्र ही एक्स किरणों की उपयोगिता को समझ लिया। अब वे उन वस्तुओं का फोटो ले सकते थे जो सदा शरीर के भीतर छिपी रहती थीं। कुछ ही महीनों के भीतर रोग के निदान तथा टूटी हड्डियों को जोड़ने के लिए डॉक्टर लोग, अस्पतालों में एक्स किरणों से सहायता लेने लगे।



आजकल डॉक्टर तथा दंत-चिकित्सक जिन एक्स-किरण यंत्रों का उपयोग करते हैं वे उसी सिद्धान्त पर आधारित हैं जिस पर रान्ट्जन की प्रथम नली आधारित थी। इन यंत्रों में ऋणाग्र-किरणें धनाग्र से जुड़ी कठोर धातु-पट्टिका



पर डाली जाती हैं। वहां से निकली एक्स-किरणें एक खिड़की के रास्ते, रोगी के शरीर में से गुजर जाती हैं। रोगी के पीछे फोटो-फिल्म रखकर डॉक्टर या दंत-चिकित्सक हड्डी या दांत की छाया का फोटो खींच सकता है और बाद में उसका उपयोग रोग-निदान या उपचार के लिए कर सकता है।



रान्ट्जन द्वारा एक्स किरणों की घोषणा किये जाने के कुछ ही सप्ताह के भीतर, ऐन्ट्वायन हेनरी बेक्केरल (1852-1908) ने फ्रेंच अकेडमी ऑव साइंस में उनकी चर्चा सुनी और फ्रांस में लिये गए प्रथम एक्स-किरण फोटोग्राफों को देखा। उन्हें प्रतिदीप्ति और प्रतिदीप्त स्फटिकों में बहुत समय से दिलचस्पी थी और रान्ट्जन के कार्य से उन्हें एक बात सूझी। उन्होंने यह जानने के लिए कार्य आरम्भ किया कि प्रतिदीप्त स्फटिक भी एक्स किरण छोड़ते हैं कि नहीं।

इसके लिए उन्होंने यह तरीका अपनाया। उन्होंने एक फोटो वाली प्लेट को मोटे काले कागज में लपेटा और परीक्षाधीन स्फटिक को उस पर रखकर उसे धूप में रखा ताकि स्फटिक दीप्त हो सके। उनका तर्क था कि यदि प्रतिदीप्त स्फटिक से एक्स-किरणें निकलती होंगी तो वे कागज के आवरण का भेद कर फोटो वाली प्लेट को धुंधला कर देंगी।

एक महीने में बेक्केरल ने भिन्न-भिन्न प्रकार के बहुत से स्फटिकों का परीक्षण किया और पाया कि उन स्फटिकों में से बहुत से सचमुच फोटो वाली प्लेटों को धुंधला कर देती हैं। बेक्केरल को विश्वास हो गया कि एक्स किरणें, प्रतिदीप्ति का एक अंग हैं।

फिर भी उन्होंने परीक्षण जारी रखने का निश्चय किया। एक बुधवार को उन्होंने यूरेनियम लवण के स्फटिकों का उपयोग किया। उन्होंने फोटो वाली प्लेट को ठीक किया और उसके ऊपर स्फटिकों को रखा। अब वे उसे बाहर, धूप में रखने ही वाले थे कि बादल घिर आये और बेक्केरल ने प्लेट और स्फटिक को एक अंधेरी दराज में रख दिया। वे वहां रविवार तक पड़े रहे, जिज्ञासावश उन्होंने प्लेट को धोने का निश्चय किया। चूंकि स्फटिक धूप में नहीं रखे गए थे और प्रतिदीप्त नहीं थे अतः बेक्केरल को विश्वास था कि उन्होंने एक्स किरणें नहीं दी होंगी और फोटो वाली प्लेट पर कोई निशान नहीं पड़ा होगा।

परन्तु बेक्केरल को अप्रत्याशित फल मिला ! यही नहीं कि प्लेट पर स्फटिकों

की रूप-रेखाएं बन गयी थीं, बल्कि वे इतनी साफ भी थीं जितनी बेक्केरल ने कभी नहीं देखी थीं। क्यों? उन्हें मालूम था कि स्फटिक तब तक प्रतिदीप्त नहीं होते जब तक उन पर सूर्य का परा-बैंगनी प्रकाश न पड़े। ये स्फटिक धूप में नहीं रखे गए थे। यदि वे धूप में रखे गए होते तो भी धूप से हटाने के एक सेकण्ड के भीतर ही उनकी प्रतिदीप्ति समाप्त हो जाती। परन्तु प्लेट पर बनी स्पष्ट फोटो बता रही थी कि प्लेट जब से दराज में पड़ी थी तभी से उस पर किरणों की वर्षा होती रही थी।

बेक्केरल ने यही प्रयोग भिन्न-भिन्न स्फटिकों पर किया। जिन स्फटिकों में यूरेनियम था उन सबने किरणें उत्सर्जित कीं। ऐसा प्रतीत होता था कि वे सदा ही विकिरण करते रहेंगे। इससे इस सम्भावना को त्याग दिया गया कि यह किसी ऐसी रासायनिक प्रतिक्रिया के कारण होता है जो शीघ्र ही समाप्त हो सकती है। तो फिर कौन-सी चीज किरणें उत्सर्जित करती है? बेक्केरल का विश्वास था कि विकिरण किसी रूप में यूरेनियम से सम्बन्धित है परन्तु उस समय उन्होंने इस दिशा में अनुसंधान जारी नहीं रखा।

इसी विराम काल में मैरी क्यूरी (1867-1934) ने, जो पेरिस भौतिकी की एक युवती छात्रा थीं, यूरेनियम पर अनुसंधान करने की आज्ञा मांगीं। उन्हें हाल ही में मास्टर की डिग्री मिली थी और वे डॉक्टर की डिग्री प्राप्त करना चाहती थीं। इसके लिए यह भी आवश्यक था कि वे कोई मौलिक अनुसंधान करें। उन्होंने सोचा कि इसके लिए यूरेनियम अच्छा विषय है क्योंकि उस समय अधिकांश वैज्ञानिक एक्स-किरणों की ओर आकर्षित थे इसलिए इस बात की कम आशंका थी कि उनसे पहले कोई व्यक्ति यूरेनियम के बारे में कोई आविष्कार कर लेगा।

उन वर्षों में, 1900 के ठीक पहले, मैरी क्यूरी दो तरह का जीवन व्यतीत कर रही थीं। एक ओर तो वे भौतिकी की गम्भीर छात्रा थीं और दूसरी ओर वे निष्ठावान पत्नी और माता थीं। उनके पति पियरे क्यूरी, औद्योगिक भौतिकी और रसायन के म्युनिसिपल स्कूल में भौतिकी के युवा अध्यापक थे। उनकी पुत्री इरीन, 12 सितम्बर 1897 को पैदा हुई थी। इस पुत्री के जन्म के थोड़े ही समय बाद मैरी ने यूरेनियम का अध्ययन आरम्भ किया।

बेक्केरल की तरह फोटोग्राफी पर अनुसंधान करने की उनकी योजना नहीं थी। उन्होंने अपना ध्यान किरणों के दूसरे गुण पर केन्द्रित किया...जिस वायु से होकर ये किरणें गुजरती थीं उसे विद्युत् से युक्त कर सकती थीं। पियरे क्यूरी और उनके भाई जैकक्स, ने हाल ही में एक संशोधित विद्युत्-मापी का आविष्कार किया था जो वायु में उपस्थित विद्युत् की बहुत अल्प मात्राओं को भी माप सकता था। ये विद्युत् धाराएं एक विद्युन् परिपथ को पूरा करती थीं जिससे एक सुई डोलती थी। इस तरह विद्युत् की यथार्थ मात्रा मापी जा सकती थी।

मैरी क्यूरी के अनुसंधान का प्रथम लक्ष्य यह मालूम करना था कि यूरेनियम से निकलने वाली किरणों को कोई चीज प्रभावित कर सकती है कि नहीं। उन्होंने पाया कि यूरेनियम या उसकी किरणों पर न तो रासायनिक संयोजनों, ऊष्मा या प्रकाश का और न एक्स किरणों का कोई प्रभाव पड़ता है। इसके बाद उन्होंने यह पता लगाना शुरू किया कि क्या यूरेनियम के अतिरिक्त अन्य किन्हीं तत्त्वों में भी यह शक्ति है। प्रत्येक ज्ञात रासायनिक तत्त्व का परीक्षण करने के बाद उन्होंने पाया कि केवल थोरियम किरणों का विकिरण करता है। इस समय मैरी ने निश्चय किया कि किरणों का विकिरण करने की इस क्षमता का कोई नाम रखना चाहिए। उन्होंने सुझाव दिया कि इसे रेडियोधर्मिता कहा जाए और इससे युक्त तत्त्व को रेडियोधर्मी तत्त्व कहा जाए।

यहां मैरी की प्रगति रुक गई। उन्होंने सब ज्ञात तत्त्वों का परीक्षण कर लिया था और पाया था कि केवल दो तत्त्व यूरेनियम और थोरियम रेडियोधर्मी हैं। इसके आगे क्या किया जाए और कहां?

जिस स्कूल में पियरे पढ़ाते थे उसमें खनिज सिलाखण्डों का बहुत बड़ा संग्रह था। मैरी ने प्रत्येक खण्ड की जांच कर यह मालूम करने का निश्चय किया कि वह रेडियोधर्मी है कि नहीं। उन्होंने सोचा कि जिन चट्टानों में यूरेनियम या थोरियम होगा वे रेडियोधर्मी होंगी, शेष नहीं।

उनकी आशा के अनुसार परीक्षण चल रहा था। क्रमशः उन्होंने पिचब्लेन्ड की, जिससे यूरेनियम प्राप्त किया जाता है, जांच की। उन्हें जितनी आशा थी, वह उससे चार गुना अधिक रेडियोधर्मी साबित हुआ। पहले तो उन्होंने सोचा कि शायद मापने में भूल हो गयी है। उन्होंने बार-बार उसकी रेडियोधर्मिता को मापा उन्होंने उस कच्ची धातु में उपस्थित यूरेनियम की मात्रा को भी बार-बार मापा। उनके माप बिलकुल ठीक थे। ऐसी हालत में, केवल एक कारण हो सकता था—पिचब्लेन्ड में कोई ऐसी वस्तु है जो यूरेनियम से बहुत अधिक रेडियोधर्मी है। मैरी ने सब ज्ञात तत्त्वों को पहले ही जांच लिया था। तो क्या पिचब्लेन्ड में कोई नया तत्त्व उपस्थित था?

पियरे अभी तक मैरी को उनके काम में केवल सलाह देते रहे थे, अब उन्होंने उनकी सहायता के लिए अपना काम छोड़ दिया। मई 1898 से आठ वर्ष तक, जब कि एक यातायात दुर्घटना में पियरे की मृत्यु हो गयी, ये दोनों एक जान होकर काम करते रहे। उन्होंने उस तत्त्व को ढूंढना आरम्भ कर दिया, जो उनके विचार से, पिचब्लेन्ड में था। रासायनिक क्रियाओं द्वारा उन्होंने पिचब्लेन्ड के सब ज्ञात तत्त्वों को पकाया, छाना और अलग कर दिया। उनकी खोज का क्षेत्र जैसे-जैसे सिमटता गया, उन्हें ऐसा महसूस होता गया कि पिचब्लेन्ड में एक नहीं बल्कि दो नये रेडियोधर्मी स्रोत हैं। जुलाई 1898 में उन्होंने एक स्रोत



को पा लिया। यह यूरेनियम से 100 गुना शक्तिशाली था। इस नये तत्त्व का नाम इस दम्पति ने पोलोनियम रखा। यह नाम मैरी की जन्मभूमि पोलैंड की स्मृति में रखा गया।

फिर भी, उन्हें अभी वह दूसरा तत्त्व, जिसकी वे तलाश कर रहे थे और जो पोलोनियम से भी अधिक शक्तिशाली था, नहीं मिला था। परन्तु उसके अस्तित्व में उन्हें पहले से भी अधिक विश्वास हो चुका था। 26 दिसम्बर 1898 को उन्होंने एक नये तत्त्व के अस्तित्व की घोषणा की और सुझाव दिया कि उसका नाम रेडियम रखा जाए। उन्हें मालूम था कि रेडियम 'अत्यधिक रेडियोधर्मी' है। उन्होंने हिसाब लगाया कि पिचब्लेन्ड में उसकी मात्रा बहुत कम रही होगी। अतः रेडियम का सूक्ष्म-सा कण प्राप्त करने के लिए भी पिचब्लेन्ड की अत्यधिक मात्रा आवश्यक थी।

उन्होंने एक टन पिचब्लेन्ड से कार्य आरम्भ किया। यूरेनियम, जो उस समय एक सस्ती धातु था और मुख्यतः कांच को रंगने के काम आता था, पहले ही पिचब्लेन्ड से अलग कर दिया गया था। पिचब्लेन्ड के उस पहाड़ में कहीं रेडियम था और उसकी उन्हें तलाश थी।

चार वर्ष तक वे दोनों परिश्रम करते रहे, अधिकांश समय लकड़ी के एक परित्यक्त शेड में रहते थे जिसका वे प्रयोगशाला के रूप में उपयोग करते थे। ग्रीष्म ऋतु में वह बहुत गरम हो जाता था और जाड़े की ऋतु में स्टोव, तापमान को हिमांक से बहुत ऊपर नहीं रख पाता था। पियरे प्रायः निराश हो जाते थे परन्तु मैरी ऐसी कोई बात सुनना नहीं चाहती थी और शीघ्र ही उन्हें काम पर लौटा लाती थी।

अंत में, रेडियम का पीछा उस कच्ची धातु की अत्यल्पतर मात्राओं में किया जाने लगा। उसका काम बहुत नाजुक और कठिन हो गया क्योंकि उनके पास उपकरण अपर्याप्त थे। अन्ततोगत्वा, 1902 में उन्होंने एक टन पिचब्लेन्ड में से  $\frac{1}{10}$  ग्राम बहुमूल्य विशुद्ध रेडियम-लवण प्राप्त किया। उन्होंने उसके परमाणु भार का हिसाब लगाया और पाया कि वह 225 है। इससे उसे आधिकारिक रूप प्राप्त हो गया। इतने वर्षों के परिश्रम के बाद वे संसार के समक्ष घोषणा कर सके कि एक नये तत्त्व, रेडियम का आविष्कार हो गया है।

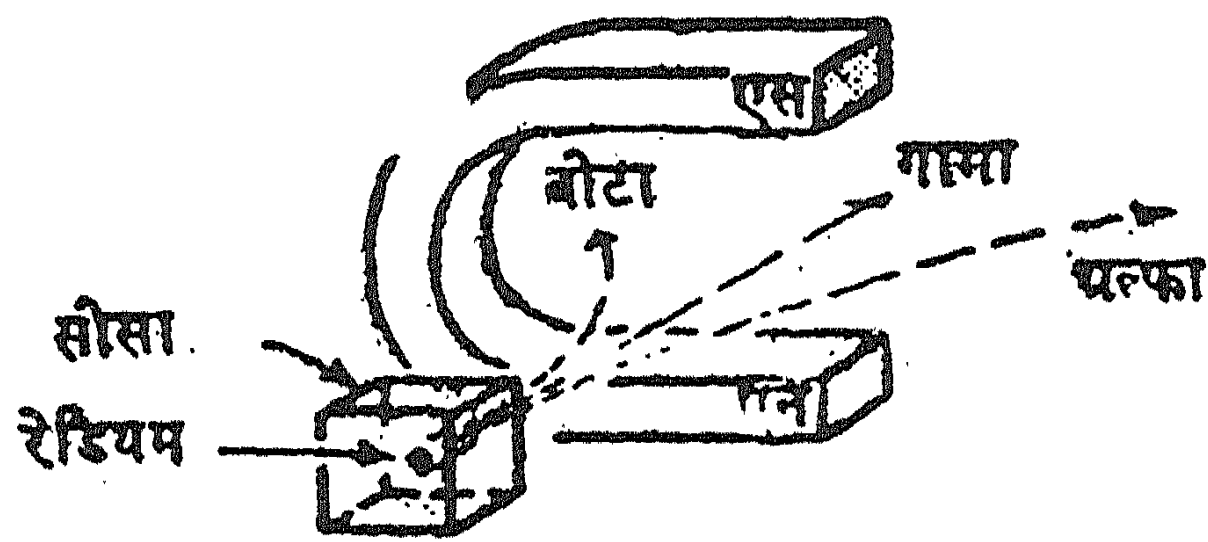
रेडियम जितना शक्तिशाली था, उसकी उन्होंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। वह यूरेनियम से दस लाख गुना से भी अधिक रेडियोधर्मी था। वह केवल किरणें ही नहीं देता बल्कि प्रकाश और ऊष्मा भी देता है। वह कांच को रंजित करता है और आसपास की वायु को विद्युत् युक्त बनाता है। वह जीवाणुओं को मारता है और बीजों को विसंक्रमित करता है। उसकी पिन की घुंडी के बराबर मात्रा यदि प्रयोगशाला के चहे के ऊपर रख दी जाए तो पन्द्रह घंटे में वह मर



। त्वचा के पास रखने से पीड़ाजनक घाव हो जाता है जैसा कि पियरे ने अपनी बांह पर रखकर मालूम किया ।

बाद में, उसकी शक्ति के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त की जा चुकी । यदि उसकी किरणें शरीर पर लगातार पड़ती रहें तो विकिरण-रोग हो जाता जिससे शरीर को बहुत क्षति पहुंचती है । रेडियम से प्रभावित लोगों के जो बच्चे पैदा होते हैं उनमें विकिरण से होने वाले बहुत से दोष पाये जाते हैं । दूसरी ओर यह केन्सर की कुछ किस्मों के उपचार में बहुत प्रभावकारी है । विकिरण, स्वस्थ कोशिकाओं की अपेक्षा केन्सर की कोशिकाओं को अधिक तेजी से नष्ट करता है ।

इस शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में जो प्रयोग किए जा रहे थे उनसे वैज्ञानिकों को, जिसमें क्यूरी दम्पति भी थे, पता चला कि रेडियोधर्मिता के दौरान रेडियोधर्मी तत्वों से केवल किरणें ही नहीं निकलती हैं बल्कि सूक्ष्म कण भी निकलते रहते हैं । परन्तु, रेडियोधर्मिता क्या है, इस जटिल प्रश्न का उत्तर उन्हें तब तक नहीं मिला जब तक अर्नेस्ट रदरफोर्ड, जो परमाणु-संरचना विषयक कार्य के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं, तथा फेडरिक साडी (1877-1956) ने एक बहुत सरल प्रयोग नहीं किया ।



सीसे की एक पेट्टी में रेडियम जैसे रेडियोधर्मी पदार्थ की सूक्ष्म मात्रा रखी गयी । विकिरण के निकलने के लिए पेट्टी में एक झिरी थी । झिरी के ऊपर फोटोग्राफी की प्लेट रखी गयी और पेट्टी तथा प्लेट के बीच एक चुम्बकीय क्षेत्र स्थापित किया गया । कुछ समय बाद, धोने पर प्लेट पर तीन रेखाएं पायी गयीं । रदरफोर्ड और साडी ने महसूस किया कि इन तीन रेखाओं के लिए विभिन्न प्रकार के तीन कण उत्तरदायी हैं । उन्होंने, यूनानी वर्णमाला के प्रथम तीन अक्षरों के नाम पर, उन कणों का नाम अल्फा, बीटा और गामा रखा ।

अध्ययन से मालूम हुआ कि अल्फा कणों द्वारा निर्मित रेखा चुम्बक की तरफ मुड़ती है । इसके मुड़ने की दिशा से ज्ञात हुआ कि अल्फा कणों पर धन आवेश होता है । बीटा कण उनसे विपरीत दिशा में मुड़ते हैं जिससे सिद्ध होता है कि उन पर ऋण आवेश है । परन्तु गामा किरणों पर चुम्बकीय क्षेत्र का कोई प्रभाव नहीं

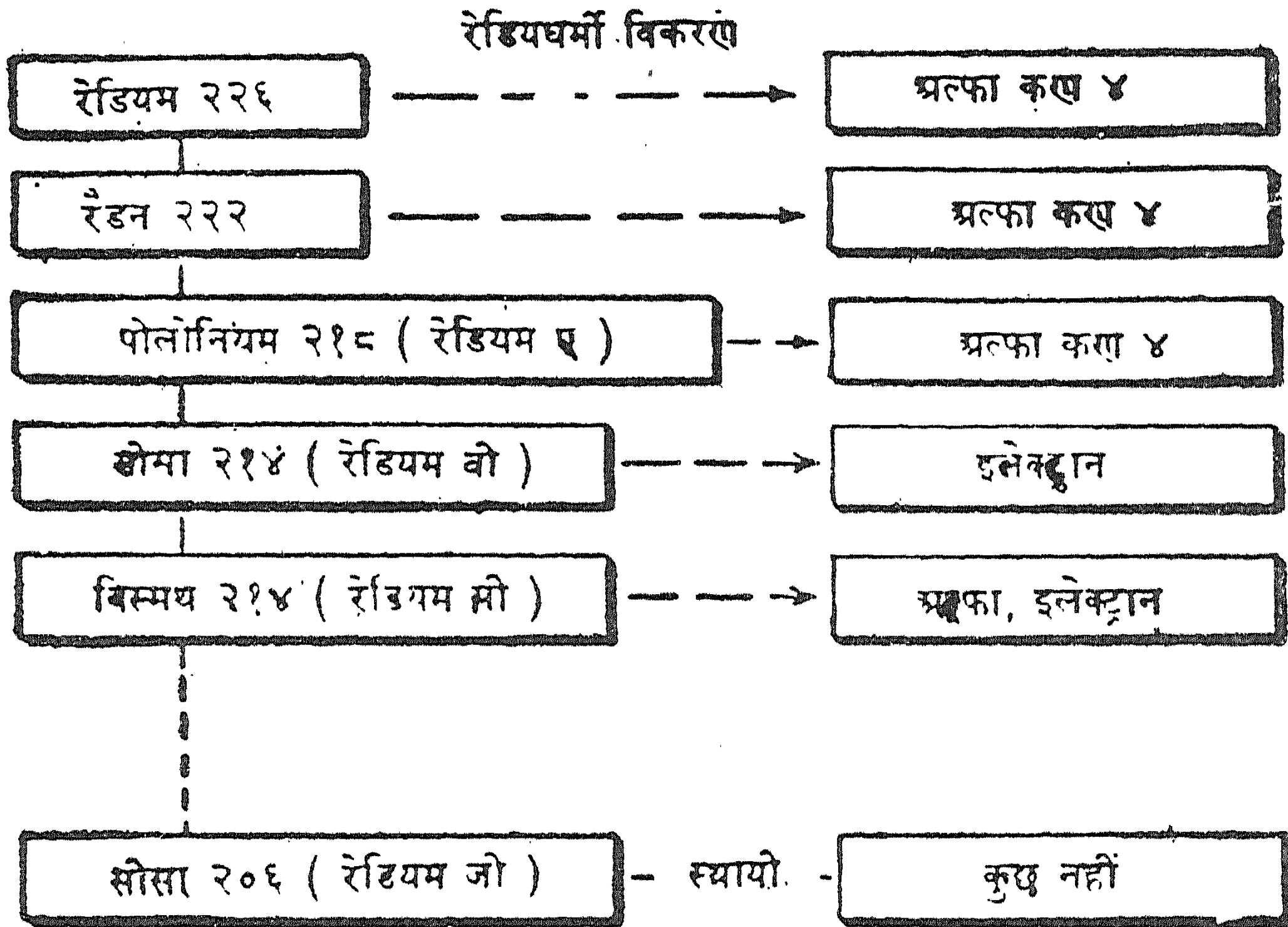
पड़ता । वे सीधे गमन करती हैं । चुम्बक उन्हें नहीं मोड़ सकता ।

वह जानकारी कि चुम्बकीय क्षेत्र में किरणों के भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यवहार करते हैं, कहानी का केवल एक अंश था । अब रदरफोर्ड यह जानना चाहते थे कि वास्तव में ये कण क्या हैं । इस सम्बन्ध में उनकी प्रथम खोज अल्फा किरणों के बारे में थी । उन्होंने कुछ अल्फा किरणों को कांच-तली में एकत्र किया । कांच तली में पड़ी सामग्री का विश्लेषण करने पर पता चला कि उसमें हीलियम है । उन्होंने देखा कि अल्फा किरण वस्तुतः हीलियम के परमाणु हैं परन्तु ऐसे परमाणु जिनके ऋण-इलेक्ट्रान उनसे दूर हो चुके हैं और जो धन आवेश से युक्त हैं । हीलियम की तरह इसका परमाणु भार भी चार था । उसके बाद उन्होंने पाया कि बीटा किरण भी इलेक्ट्रान ही थीं जिनकी खोज हाल ही में जे० जे० टाम्सन ने की थी । (अध्याय 8 देखिए) गामा किरणें उन एक्स किरणों के समान सिद्ध हुईं जिनका आविष्कार रान्टजन ने किया था ।

1902 में उन्होंने रेडियोधर्मिता की व्याख्या इस प्रकार की : रेडियोधर्मी तत्त्वों के परमाणु निरन्तर कणों और किरणों का विकिरण करते रहते हैं । रेडियोधर्मी परमाणुओं के भीतर ऊर्जा का कोई ऐसा स्रोत है जो कणों को बाहर फेंकता रहता है । जब भी परमाणु में से कोई कण बाहर निकलता है तब वह परमाणु परिवर्तित होकर दूसरे प्रकार का परमाणु बन जाता है । ऐसा होने से मूल तत्त्व परिवर्तित होकर दूसरा तत्त्व बन जाता है ।

उदाहरण के लिए, रेडियम पर जो कुछ निरन्तर बीतती रहती है उसका विवरण यह है । रेडियम का परमाणु भार 226 है । रेडियम से अल्फा कण सदा निकलते रहते हैं । (आपको याद होगा, अल्फा कणों का परमाणु भार चार है ।) हर बार जब रेडियम से अल्फा कण निकलता है तब रेडियम दो प्रोटानों और दो न्यूट्रानों की कमी हो जाती है और उसका परमाणु भार 226 से घट कर 222 हो जाता है । वह एक नया परमाणु, रैडन बन जाता है । क्रमशः रैडन में से एक अल्फा कण निकलता है और वह रेडियम-ए या पोलोनियम 218 बन जाता है । रेडियम-ए एक अल्फा कण बाहर निकालता है और रेडियम-बी या सीसा 214 बन जाता है । इसके बाद, रेडियम-बी में से एक इलेक्ट्रान निकलता है जिससे वह रेडियम-सी या बिस्मथ 214 बन जाता है । रेडियोधर्मी विघटन की यह प्रक्रिया तब तक चालू रहती है जब तक कि मूल रेडियम एक स्थायी तत्त्व, सीसा, में परिवर्तित नहीं हो जाता । सीसे को स्थायी इसलिए कहते हैं क्योंकि वह रेडियोधर्मी नहीं है । उसमें से कण या किरणें बाहर नहीं निकलतीं, अतः वह परिवर्तित नहीं होता ।

यह एक क्रांतिकारी विचार था । पहले ऐसा विश्वास था कि तत्त्व वे पदार्थ हैं जिनका विघटन नहीं हो सकता और परिवर्तित नहीं हो सकते । बहुत से



वैज्ञानिकों को रदरफोर्ड के निष्कर्षों को स्वीकार करने में बहुत कठिनाई अनुभव हुई क्योंकि वे उनके सबसे बड़े आधारभूत विश्वासों के विरुद्ध थे।

एक्सरे और रेडियधर्मिता की कहानी इस बात का उदाहरण है कि किस प्रकार एक वैज्ञानिक आविष्कार प्रायः दूसरे आविष्कार का मार्ग प्रशस्त करता है। रान्ट्जन ऋणाग्र-किरणों का अध्ययन कर रहे थे और उन्होंने एक्सरे का आविष्कार किया। बेक्केरल एक्स-रे का अध्ययन कर रहे थे और परिणाम हुआ, रेडियोधर्मिता का आविष्कार। क्यूरी दम्पति, रेडियोधर्मिता का अध्ययन कर रहे थे और उन्होंने एक नये तत्व, रेडियम, का आविष्कार किया। बाद में, रदरफोर्ड ने इन आविष्कारों का सम्बन्ध, परमाणु-संरचना की बढ़ती हुई जानकारी से स्थापित कर दिया। विज्ञान के भवन का निर्माण इसी तरह से हुआ है—एक-एक ईंट करके प्रत्येक ईंट अपने से पहले रखी गयी ईंट पर आधारित होती है।



## परमाणु-ऊर्जा

‘दस सेकण्ड शेष’ । सम्पूर्ण प्रदेश को प्रकाशित करता हुआ हरी दीप्ति वाला एक राकेट ज्यों ही ऊपर उठा, न्यू मेक्सिको के मरुस्थल की उषा से पहले की काली नीरवता भंग हो गयी । ‘नौ सेकण्ड-आठ सेकण्ड’ उस दीप्ति के ठीक नीचे इस्पात की एक मीनार थी जिसकी चोटी पर वह विचित्र साधन रखा था जो संसार में पहले कभी नहीं देखा गया था । ‘सात सेकण्ड-छः सेकण्ड’ वैज्ञानिक तथा सैनिक एवं सरकारी अधिकारी 5, 10 और 30 मील की दूरियों पर कंक्रीट से निर्मित निरीक्षण-कक्षों में भरे पड़े थे । ‘पांच सेकण्ड-चार सेकण्ड ।’ सेकण्ड अधिकाधिक लम्बे प्रतीत होने लगे थे । ‘तीन सेकण्ड ।’ एक दूसरा राकेट ऊपर उठा और मरुस्थल के ऊपर उसकी अद्भुत हरी दीप्ति छा गयी । ‘दो सेकण्ड ।’ उषा का धुंधला प्रकाश पूर्व दिशा में दिखायी देने लगा था । ‘एक सेकण्ड’ । एक भयंकर नीरवता सारे प्रदेश पर छा गयी ।

‘दागो’ ।

सहस्रों सूर्य से भी अधिक तीव्र प्रकाश से आकाश और कई मीलों तक मरुस्थल जगमगा उठा । तीस सेकण्ड बाद इतने जोर का विस्फोट हुआ कि मीनार से 5 मील दूर स्थित आदमी भी गिर गये । विस्फोट के बाद इतना भीषण गर्जन होता रहा मानो, एक निरीक्षक के शब्दों में, ‘वह प्रलय की सूचना थी । एक उबलता





और उमड़ता हुआ बादल बना और धीरे-धीरे कुकुरमुत्ते की शकल बनाता हुआ, ऊपर उठा। जब पवन 'बादल' को उड़ा ले गए तब देखा गया कि मीनार गायब हो चुकी थी। उसके स्थान पर रेगिस्तान में 25 फीट गड्ढा हो गया था। वहां की रेत, गहरे हरे कांच की एक चिकनी चट्ट बन गयी थी।

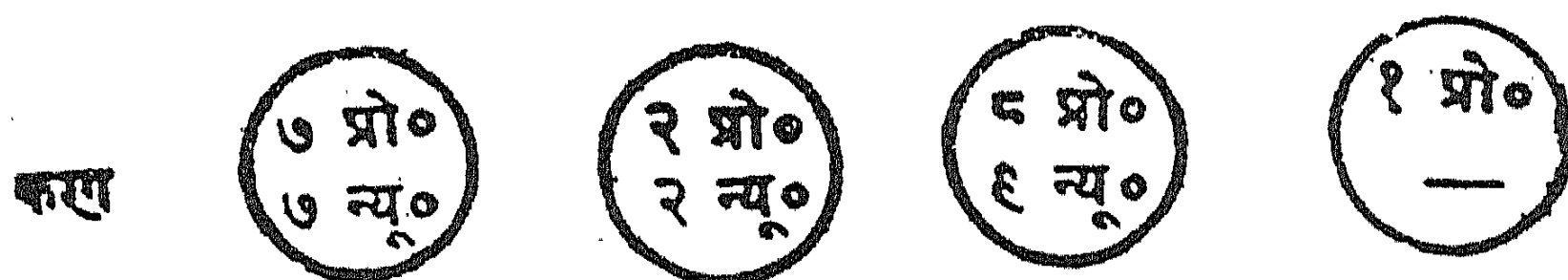
16 जुलाई 1945 का प्रातः का यह क्षण 5 बजकर 30 मिनट, इतिहास के चार महानतम वैज्ञानिक आविष्कारों में से एक के जन्म का क्षण था। यह आविष्कार उतना ही महत्वपूर्ण या जितना अग्नि, पहिए और विद्युत् का। मनुष्य ने ऊर्जा के सबसे शक्तिशाली स्रोत, परमाणु ऊर्जा की प्रथम बार परीक्षा की थी। यह घटना थी प्रथम परमाणु बम का विस्फोट। मनुष्य ने जान लिया था कि परमाणु का विखण्डन कैसे किया जा सकता है और जो ऊर्जा अभी तक केन्द्रक के भीतर बन्द पड़ी थी उसे उसने मुक्त कर लिया था।

प्रथम परमाणु बम बनाने के लिए वैज्ञानिकों और इंजिनियरों का एक बहुत बड़ा दल चार वर्ष तक काम करता रहा था। प्रथम परमाणु बम के निर्माण की योजना आरम्भ करने के बीस वर्ष से भी पहले 1919 में अर्नेस्ट रदरफोर्ड ने उस दिशा में पहला कदम उठाया था जिसकी चरम परिणति न्यू मैक्सिको के मरुस्थल में 1945 की उस महत्वपूर्ण प्रातः बेला में होनी थी।

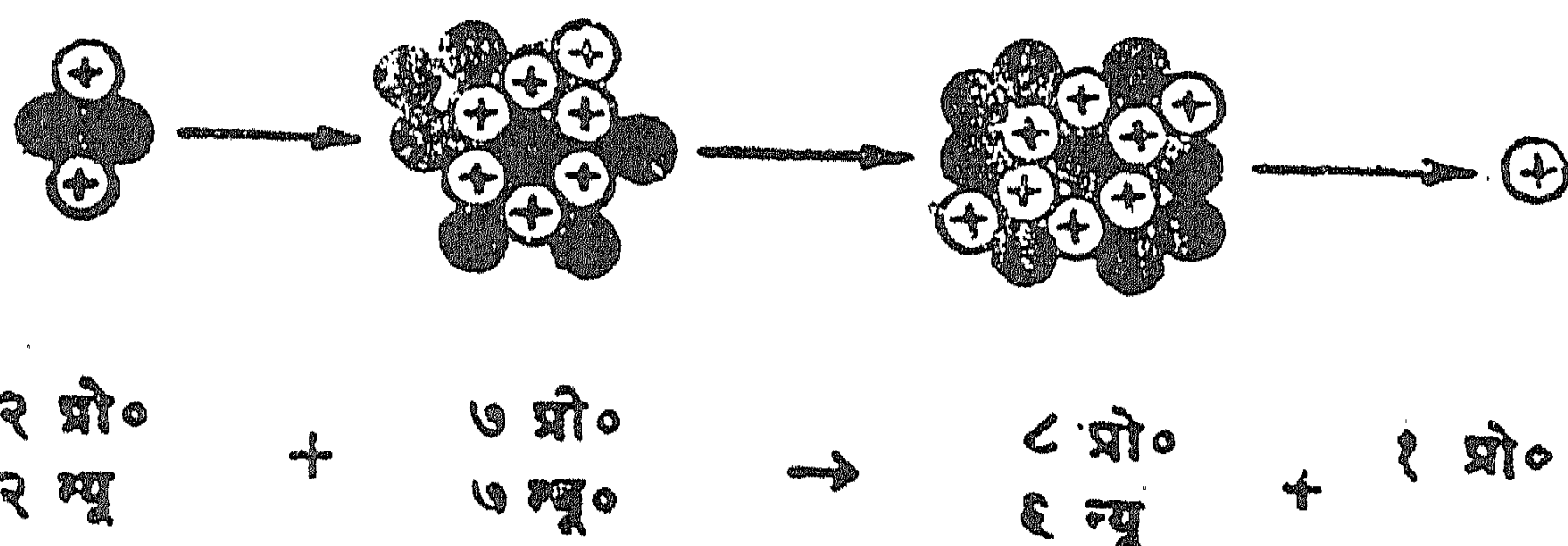
रदरफोर्ड, नाइट्रोजन गैस पर अल्फा कणों की बौछार कर रहे थे। (अल्फा कण, हीलियम परमाणुओं के केन्द्रक होते हैं जिनमें से प्रत्येक में दो प्रोटान और दो न्यूट्रान होते हैं।) इसी प्रयोग के परिणामस्वरूप वे पहले यह घोषणा कर चुके थे कि प्रोटान सभी परमाणुओं में होते हैं। (अध्याय 8 देखिए) अब उन्हें एक नयी बात दिखाई दी। बौछार के बाद, प्रोटान तो उपस्थित थे ही; आक्सीजन की थोड़ी-सी मात्रा भी उपस्थित मिली। (वास्तव में वह आक्सीजन का एक समस्थानिक था जिसमें एक न्यूट्रान अधिक था) किसी न किसी तरह नाइट्रोजन और अल्फा कणों के संयोग से एक भिन्न तत्त्व उत्पन्न हो गया था।

प्रयोग के आरम्भ में आक्सीजन बिलकुल नहीं थी; तो प्रयोग के दौरान वह सहसा कैसे प्रकट हो गयी? सम्बन्धित परमाणुओं में कणों की संख्या पर विचार कीजिए।

तत्त्व नाइट्रोजन + अल्फा कण → आक्सीजन + प्रोटान



होता यह है कि वास्तव में अल्फा कण सचमुच नाइट्रोजन के केन्द्रक में प्रवेश करता है और एक प्रोटान को बाहर धकेल देता है इसके फलस्वरूप जो केन्द्रक बनता है वह वास्तव में आक्सीजन का ऐसा परमाणु होता है जिसमें आठ प्रोटान और नौ न्यूट्रान होते हैं। मूल नाइट्रोजन केन्द्रक से जो प्रोटान बाहर धकेल दिया जाता है वह स्वतंत्र बना रहता है।



इस तरह प्रथम बार एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में परिवर्तित करना सम्भव हुआ। यह परमाणु का विखण्डन नहीं था परन्तु इससे वैज्ञानिकों को परमाणु के भीतर पहुंचने और उसका विखंडन प्रारम्भ करने का रास्ता दिख गया।

दुर्भाग्यवश, यह तरीका ऐसा था जिसमें निशाना लग भी सकता था और चूक भी सकता था और प्रायः चूक जाता था। 3,00,000 अल्फा कणों में से केवल एक केन्द्रक से टकराता था और एक प्रोटान को उखाड़ देता था। यह स्पष्ट था कि केन्द्रक पर निशाना लगाने के लिए कोई बेहतर तरीका मालूम करना होगा।

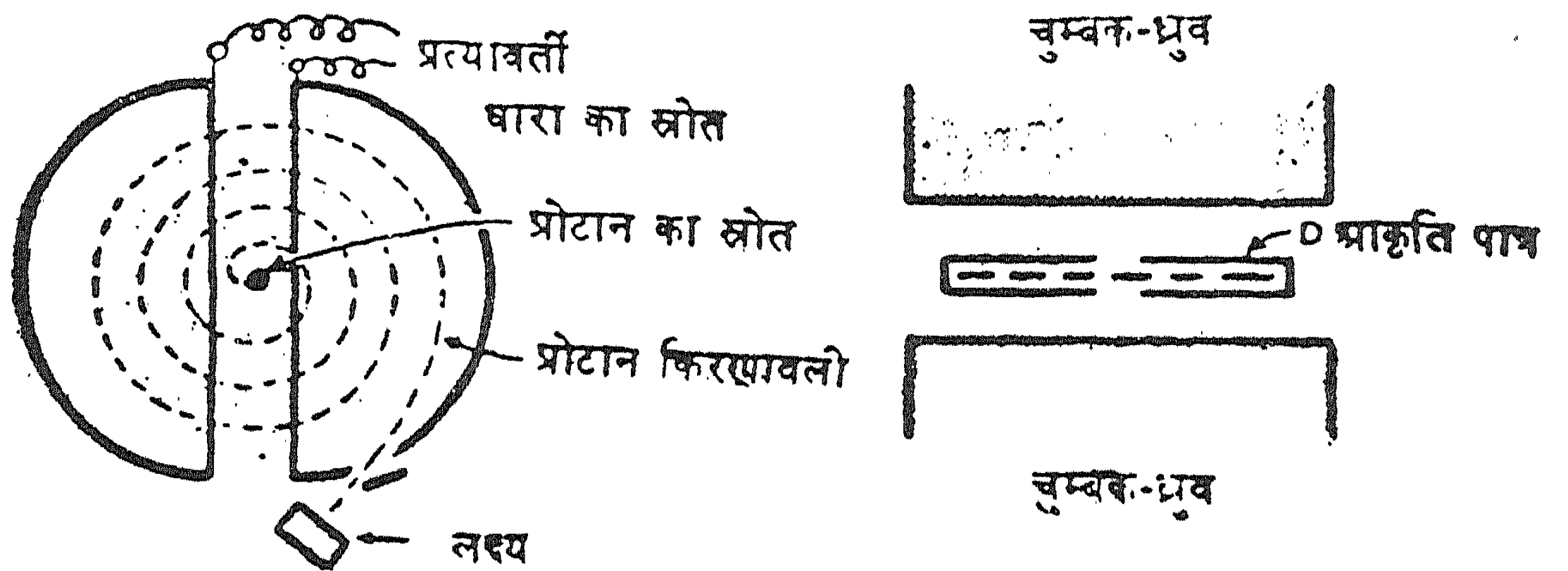
बेहतर तरीका यही था कि विभिन्न प्रकार के त्वरकों में से किसी एक का उपयोग किया जाए। प्रत्येक त्वरक किसी न किसी कण की गति को अधिकाधिक तीव्र कर देता है और फिर इसे किसी पारमाणविक लक्ष्य की ओर दे मारता है।

कण की चाल उसे दी गयी ऊर्जा पर निर्भर होती है। यह ऊर्जा विद्युत् आवेश की वोल्टता या दबाव से सम्बन्धित होती है। इस ऊर्जा को मापने की इकाई, इलेक्ट्रॉन वोल्ट है। एक इलेक्ट्रॉन वोल्ट उस ऊर्जा को कहते हैं जो प्रत्येक इलेक्ट्रॉन को एक वोल्ट दबाव से प्राप्त होती है। प्रत्येक त्वरक का उद्देश्य इतनी काफी वोल्टता उत्पन्न करना होता है कि कणों को वांछित चालों तक त्वरित किया जा सके।

सच्चे अर्थों में उच्च वोल्टता उत्पन्न करने का प्रथम उपाय सर जान कार्राफ्ट (जन्म 1897) और अर्नेस्ट वाल्टन (जन्म 1903) ने केम्ब्रिज (इंग्लैंड) की कैवेन्डिश प्रयोगशाला में 1929 में मालूम किया था। एक विद्युत् परिपथ का निर्माण कर वे 8,00,000 वोल्ट तक उत्पन्न करने में सफल हुए। इससे उन प्रोटोनों

को बहुत ऊर्जा दी जा सकी, जिनका वे त्वरण कर रहे थे और उससे जो परिणाम प्राप्त हुए वे बहुत विस्मयकारी थे। परन्तु उनका वर्णन करने के पूर्व हम कुछ शब्द एक अन्य प्रकार के त्वरक के बारे में कहेंगे।

अर्नस्ट आर्लैन्डो लारेन्स (1901-1958) जो कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में कार्य कर रहे थे, कण-त्वरण के प्रश्न पर एक दूसरी दृष्टि से विचार कर रहे थे। उनके परिश्रम का परिणाम एक छोटी-सी चार इंची मशीन थी जिसे वे साइक्लोट्रान कहते थे। साइक्लोट्रान में D की आकृति वाले दो पात्र होते हैं जो पीठ-से-पीठ मिलाकर रखे होते हैं। उन्हें चुम्बक के दोनों ध्रुवों के बीच रखा जाता है और विद्युत् से आवेशित किया जाता है। उनके बीच से एक कण गुजारा जाता है। D-आकृति के पात्रों के बीच वाले स्थान को कण जब भी पार करता है तब उसे एक वैद्युत् धक्का लगता है जिससे वह अधिकाधिक फैलते हुए वृत्त में अधिकाधिक तेजी के साथ घूमता है। (चुम्बक, कण को वृत्ताकार पथ पर घुमाता रहता है और सीधा बाहर निकल जाने से रोकता है।) अंत में वह पात्र के किनारे पहुंचता है और एक दरार में से होकर 'संचायक कक्ष' में प्रवेश करता है जहां वह लक्ष्य परमाणु के केन्द्रक से टकरा दिया जाता है।

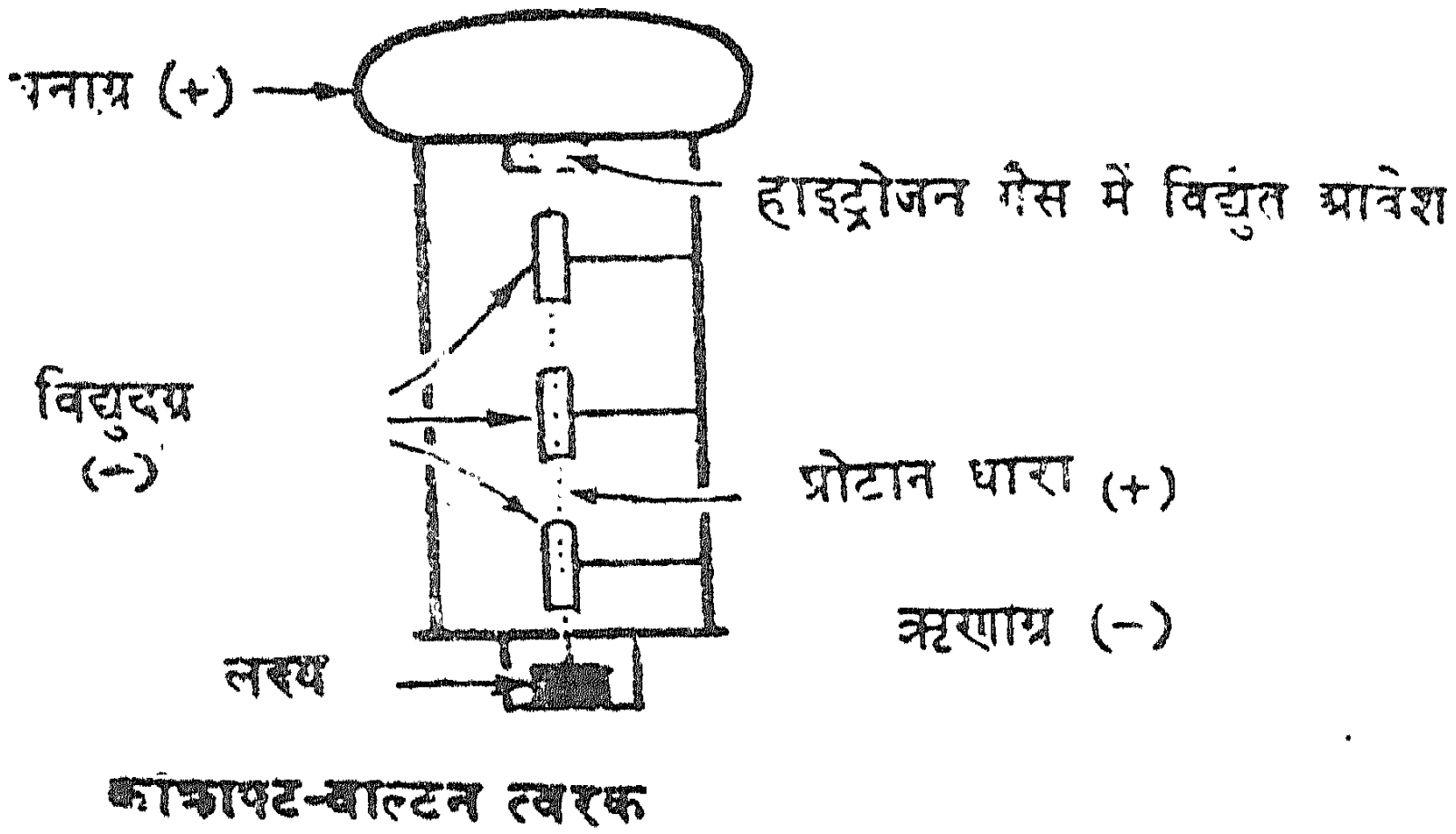


साइक्लोट्रान

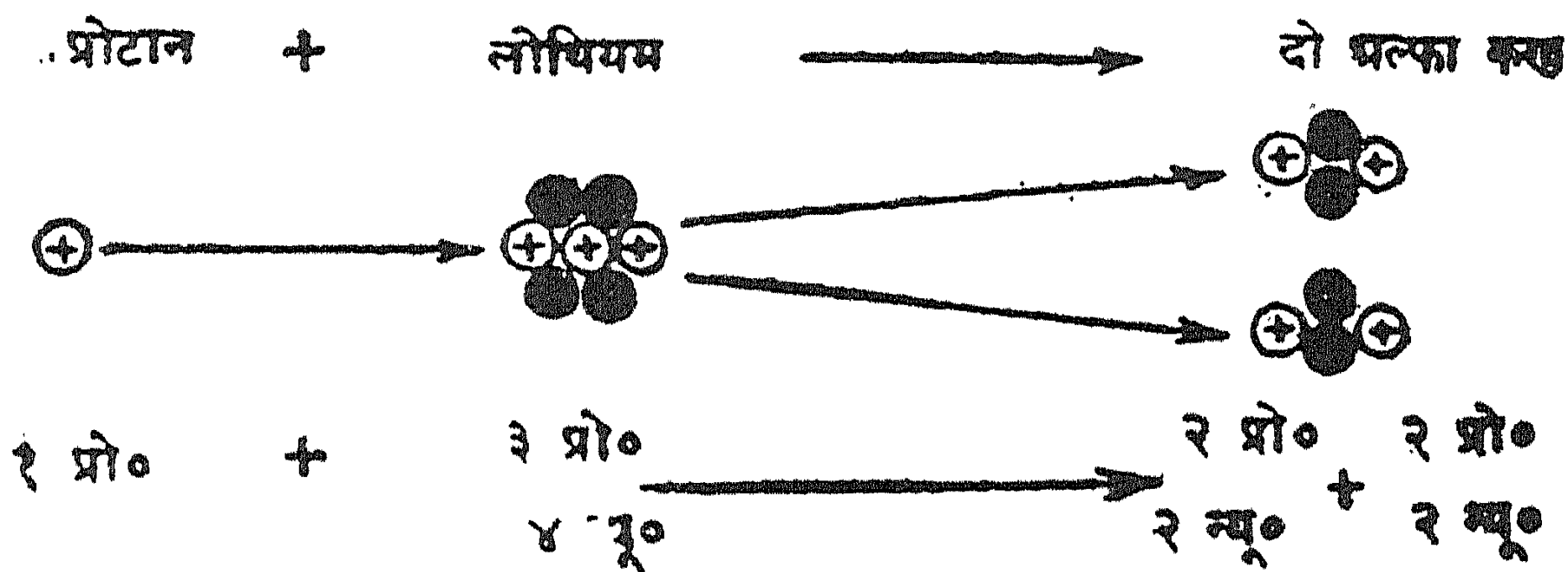
तब से [अधिकाधिक बड़े साइक्लोट्रानों का निर्माण किया गया] है जो साइक्लोट्रान के सिद्धान्त पर आधारित हैं, जैसे सिन्क्रोट्रान और बीटाट्रान। ये कणों को 33 अरब इलेक्ट्रान वोल्टों तक की ऊर्जा दे सकते हैं।

आइए, अब काक्रापट तथा वाट्सन की तरफ लौट चलें और उनके प्रारम्भिक उदाहरण का अध्ययन करें। पारमाणविक लक्ष्यों पर गोलाबारी करने के लिए गोली के रूप में उन्होंने प्रोटानों को चुना जो कि हाइड्रोजन परमाणुओं के धन आवेशित केन्द्रक थे। प्रोटानों को प्राप्त करने के लिए उन्होंने हाइड्रोजन गैस में विद्युत् धारा प्रवाहित की। इससे हाइड्रोजन परमाणुओं से एकमात्र इलेक्ट्रान अलग हो गए और केवल धन आवेशित प्रोटान बचे रहे। उन्होंने प्रोटानों को

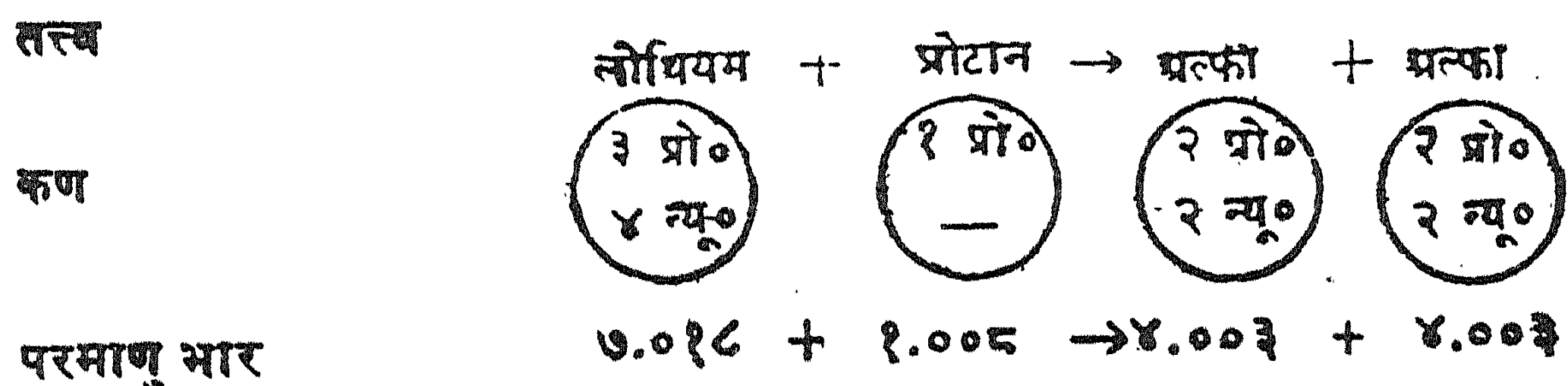
इसलिए चुना क्योंकि उनके त्वरक में, कणों को त्वरित करने के लिए, ऋण-आवेशित विद्युदग्रों की पंक्ति से काम लिया जाता था। जैसे-जैसे ऋण विद्युदग्र धन-प्रोटानों को आकर्षित करते थे, धन-प्रोटान अधिकाधिक तीव्र गति से युक्त होते जाते थे।



1932 में काक्राफ्ट और वाल्टन ने कुछ 7,00,000 इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा वाले प्रोटानों से लीथियम तत्त्व के परमाणुओं पर प्रहार किया। उन्होंने पाया कि जब एक प्रोटान लीथियम के केन्द्रक से टकराता था तब दो अल्फा कण निर्मुक्त होते थे। यह परमाणु का छिलना मात्र नहीं था। लीथियम का केन्द्रक सचमुच विखंडित होकर दो अल्फा कणों या हीलियम-केन्द्रकों का निर्माण कर रहा था।



इस प्रयोग में यह क्रिया होती थी—



कणों की संख्याओं की अपेक्षा परमाणु भार अधिक है क्योंकि कई साल पहले



यह सहमति हो गयी थी कि प्रोटान को ठीक 1 के बजाय 1.008 माना जाए। उपर्युक्त भारों का हिसाब लगाने पर हम पाते हैं कि लीथियम और प्रोटान का सम्मिलित भार 8.026 है परन्तु दोनों अल्फा कणों का सम्मिलित भार केवल 8.006 है। इसका अर्थ हुआ कि संहति में 0.020 इकाइयों की कमी हो गई।

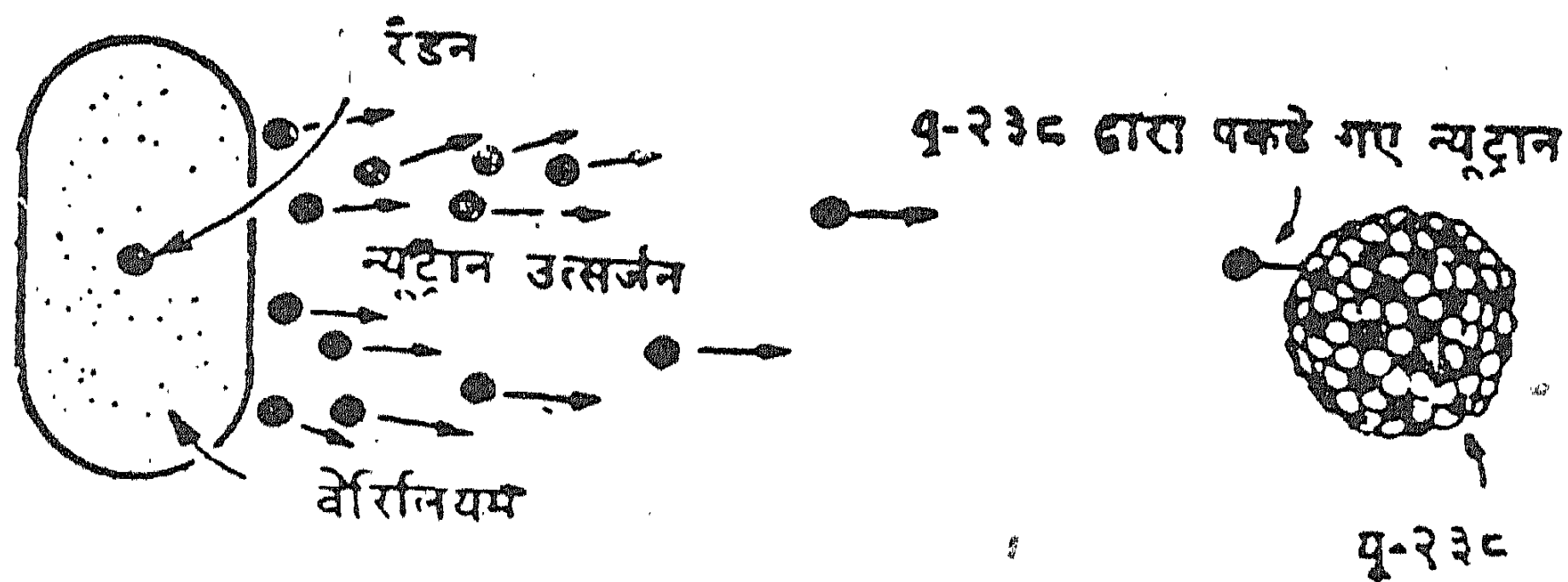
लुप्त भार क्या बना है? वह कहां चला गया? विज्ञान-जगत् के लिए वह एक सर्वाधिक उत्तेजनापूर्ण क्षण था जब यह सिद्ध हुआ कि जो भार लुप्त हुआ है वह ऊर्जा में परिवर्तित हो गया है। लीथियम परमाणु के विखण्डन के दौरान जो संहति लुप्त हुई वह ऊर्जा में परिवर्तित हो गयी और उस ऊर्जा ने दोनों नवनिर्मित अल्फा कणों को निकाल फेंका।

जो ऊर्जा उत्पन्न हुई उसकी मात्रा उस ऊर्जा के बराबर पायी गयी जिसकी आशा आइन्स्टाइन के प्रसिद्ध समीकरण  $E=mc^2$  से की जा सकती थी। इस समीकरण में  $E$  ऊर्जा है,  $m$  संहति और  $c^2$  प्रकाश की चाल का वर्ग है। वास्तव में आइन्स्टाइन के इस समीकरण की सत्यता का, जिसे उन्होंने सत्ताईस वर्ष पूर्व प्रतिपादित किया था, यह प्रथम प्रमाण था। (अध्यायाय 7 देखिए)

यह परमाणु का विखण्डन था, उसका छिलना मात्र नहीं था। लीथियम का परमाणु दो समान हीलियम-केन्द्रकों में परिवर्तित हो गया था। परन्तु परमाणु के विखण्डन का यह कोई अच्छा तरीका नहीं था। केन्द्रक पर प्रहारों की दर बहुत कम थी। प्रत्येक परमाणु के विखण्डन के लिए एक प्रोटान का होना आवश्यक था। परिणामस्वरूप जैसे ही प्रोटानों का आना रुक जाता था वैसे ही परमाणुओं का विखण्डन भी बंद हो जाता था।

एनरिको फर्मी (1901-1954), जो एक भौतिकी विज्ञ थे और 1934 में रोम में कार्य कर रहे थे, कुछ दिलचस्प प्रयोगों में लगे थे। वे जानना चाहते थे कि विभिन्न तत्त्वों के केन्द्रकों पर न्यूट्रानों की बौछार करने का क्या परिणाम होगा। कांच की एक बंद नली में बेरिलियम का चूर्ण और रैडन रखकर उन्होंने न्यूट्रान प्राप्त किए। रेडियोधर्मी रैडन से अल्फा कण निकलते थे जो बेरिलियम के न्यूट्रानों को निकाल देते थे और न्यूट्रानों की बौछार लक्ष्य-केन्द्रकों पर करते थे। उनके हिसाब के मुताबिक केन्द्रकों पर निशाना लगाने के लिए, अल्फा कणों और प्रोटानों की अपेक्षा न्यूट्रान अधिक उपयुक्त सिद्ध होते थे। न्यूट्रानों का मुख्य लाभ है कि वे विद्युत् की दृष्टि से उदासीन होते हैं और अल्फा कणों और प्रोटानों की तरह धन आवेश से युक्त नहीं होते। अतः वे सब परमाणुओं के केन्द्रकों के धन आवेशों द्वारा प्रतिकर्षित नहीं होते और वे अधिक आसानी से केन्द्रक पर सीधी चोट कर सकते हैं।

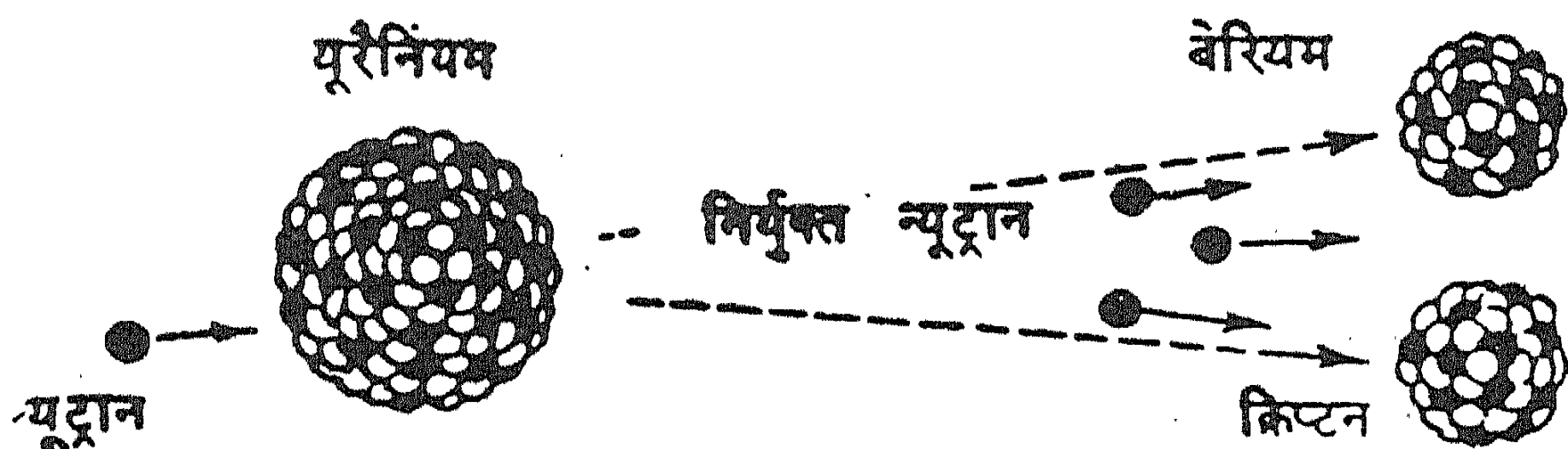
जब फर्मी ने यूरेनियम के परमाणुओं का, जिनकी द्रव्यमान (संहति) संख्या 238 है, लक्ष्य के रूप में प्रयोग किया तब जो परमाणु प्राप्त हुए उनकी द्रव्यमान-



संख्या 239 थी। फर्मी ने निष्कर्ष निकाला कि यूरेनियम परमाणुओं ने न्यूट्रॉनों को ग्रहण कर लिया है और वह एक नये परमाणु में परिवर्तित हो गया है जिसकी द्रव्यमान-संख्या 239 है।

चार वर्ष बाद तीन वैज्ञानिकों—ओटो हैन, फ्रिट्ज स्ट्रासमन और लाइस मीटनर ने बर्लिन में फर्मी के प्रयोगों को दोहराया। उन्हें वैसे ही परिणाम की आशा थी और उनकी आशा पूर्ण हुई। परन्तु चूंकि हैन और स्ट्रासमन रसायनशास्त्री थे उन्होंने दो भिन्न-भिन्न हल्के तत्वों, बेरियम और क्रिप्टन, की उपस्थिति का भी पता लगा लिया। उनको इस बात का भी संदेह हुआ कि रेडियोमधीन तत्वों पर न्यूट्रॉनों की बौछार से बहुत बड़ी मात्राओं में ऊर्जा उत्पन्न होती है।

ये दोनों वैज्ञानिक इस प्रयोग के परिणामों को अच्छी तरह नहीं समझ सके। अतः उन्होंने लाइस मीटनर से परामर्श किया जो एक भौतिकी विज्ञानी थीं। उन्होंने अनुमान लगाया कि ये परिणाम, आइन्स्टाइन के इस सिद्धान्त के प्रमाण थे कि संहति को ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है। उनका मत था कि न्यूट्रॉन यूरेनियम परमाणु को दो बराबर भागों में विभाजित कर देता है। इससे दो हल्के तत्व बेरियम और क्रिप्टन उत्पन्न होते हैं और इस प्रतिक्रिया में प्रत्येक परमाणु के विखंडन से बीस करोड़ इलेक्ट्रॉन बोल्ट ऊर्जा उत्पन्न होती है। मीटनर ने इस प्रतिक्रिया का नाम परमाणु-विखंडन रखा।



1939 में जर्मनी में, सारे विश्वविद्यालयों से यहूदियों के हटाने का आन्दोलन चल रहा था। लाइस मीटनर यहूदी थीं और उनके गिरफ्तार होने की आशंका थी। वे अवकाश बिताने के बहाने हार्लैंड चली गयीं और अपने साथ हैन और स्ट्रासमन के कार्य की जानकारी भी लेती गयीं। वहां से वे स्वीडन भाग गयीं।

उस समय ओटो आर० फ्रिश, जो मीट्नर के भतीजे थे, कोपेनहेगन में नील्स बोर की प्रयोगशाला में कार्य कर रहे थे। जब मीट्नर ने पारमाणविक विभंजन की बात उन्हें बताई तब वे दोनों दौड़े-दौड़े नील्स बोर के पास गये जो भौतिकी शास्त्रियों के एक सम्मेलन में भाग लेने के लिए अमेरिका के लिए रवाना होने ही वाले थे। उन्होंने उन दोनों से कहा कि वे उन प्रयोगों को दोहरायें, यूरेनियम पर न्यूट्रानों की बौछार करें और ऊर्जा की निर्मुक्ति पर विशेष ध्यान दें। बोर को तत्काल प्रस्थान करना था अतः वे प्रयोग के परिणाम की प्रतीक्षा न कर सके।

बोर, सम्मेलन में भाग लेने के लिए वाशिंगटन डी० सी० गए। 28 जनवरी 1939 वाले अधिवेशन में सम्मेलन के दो प्रमुख वैज्ञानिक अपने ही वार्तालाप में पूर्णतः लीन थे। उनमें से एक थे लम्बे कद के डेन्मार्क निवासी नील्स बोर जो अभी कोपेनहेगन से आए थे और दूसरे थे छोटे कद वाले इटैलियन एनरिको फर्मी जो फासिस्ट इटली से भागने के लिए इसलिए बाध्य हुए थे क्योंकि उनकी पत्नी यहूदी थीं। कुछ ही मिनटों में सब लोगों का ध्यान बोर और फर्मी पर केन्द्रित हो गया। वे दोनों उस पत्र को पाकर बहुत उत्तेजित-से थे जिसे फ्रिश ने भेजा था। मीट्नर का मत ठीक निकला था। यूरेनियम के परमाणु का विखंडन सम्भव था और उस क्रिया में अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न होती थी। उनके शब्दों में—‘ऐसा प्रतीत होता है कि रचना की दृष्टि से यूरेनियम का केन्द्रक कम स्थायी है और न्यूट्रान को ग्रहण करने के बाद लगभग समान आकार वाले दो-केन्द्रकों में विभाजित हो सकता है।’

फ्रिश और मीट्नर द्वारा वर्णित प्रयोग इतना स्पष्ट था कि सम्मेलन में भाग लेने वाले कई वैज्ञानिक दौड़कर कार्नेगी संस्थान में परमाणु विखण्डक के पास गए और उस प्रयोग को दोहराया, अर्थात् यूरेनियम परमाणुओं पर न्यूट्रानों की बौछार की। उन्हें भी वे ही परिणाम प्राप्त हुए और उन्होंने समझा कि अमरीका में यूरेनियम परमाणु का विखंडन करने में वे लोग ही प्रथम थे। परन्तु शीघ्र ही मालूम हो गया कि टेलीफोन से सूचना पाकर दूसरे वैज्ञानिकों ने भी उसी समय उस प्रयोग को कोलम्बिया विश्वविद्यालय, जान्स हापकिन्स विश्वविद्यालय और कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में किया था। वास्तव में अब ऐसा माना जाता है कि अमरीका में सर्वप्रथम कोलम्बिया विश्वविद्यालय में यूरेनियम का परमाणु विखंडित किया गया था। वाशिंगटन रवाना होने से पूर्व फर्मी ने, जो वहां अध्यापक थे, ठीक उसी प्रयोग को करने का सुझाव दिया था।

परमाणु का विखंडन स्वयं में कोई बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं थी। लीथियम के परमाणु का विखंडन पहले ही हो चुका था। परन्तु यूरेनियम परमाणु के विखंडन का महत्त्व इसलिए अधिक था, क्योंकि इसके दौरान न्यूट्रान उत्पन्न होते थे। इसका अर्थ यह था कि प्रथम यूरेनियम परमाणु के विखंडन से जो न्यूट्रान उत्पन्न



होंगे वे आस-पास के अन्य परमाणुओं का विखंडन कर सकेंगे और इस क्रिया की बार-बार पुनरावृत्ति होती जाएगी। जिस प्रकार निरन्तर सिगरेट पीने वाला व्यक्ति नये सिगरेट को पिछले सिगरेट से जलाता है उसी प्रकार शृंखलित परमाणिक क्रिया की आशा की जा सकती थी। अर्थात्, पिछले परमाणु के विखंडन से उत्पन्न न्यूट्रानों से नये परमाणुओं का विखंडन किया जा सकता था।

1939 के दौरान, सारे अमरीका में भौतिकी विज्ञ मुख्य रूप से इन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के प्रयत्न में लगे रहे—क्या यूरेनियम परमाणु के विखंडन के समय न्यूट्रान उत्सर्जित होते हैं? क्या उनका उपयोग शृंखलित क्रिया आरम्भ करने के लिए किया जा सकता है? दिसम्बर 1939 के रिव्यू आफ माडर्न फिजिक्स (आधुनिक भौतिकी की समीक्षा) नामक पत्रिका में विखण्डन से सम्बन्धित 100 निबंधों को संक्षिप्त रूप से प्रकाशित किया गया था। निष्कर्ष यह थे—हां, न्यूट्रान उत्सर्जित होते हैं। हां, उपयुक्त दशाओं में शृंखलित क्रिया आरम्भ करना सम्भव है।

यह भी मालूम किया गया कि यूरेनियम के तीन समस्थानिकों में से केवल एक, यूरेनियम 235, का विखण्डन किया जा सकता है। प्राकृतिक यूरेनियम में भिन्न-भिन्न भारों वाले परमाणु होते हैं जिन्हें समस्थानिक कहते हैं। इसका अधिकांश भाग, 99.3 प्रतिशत, यूरेनियम 238 होता है जिसके केन्द्रक में 92 प्रोटान और 146 न्यूट्रान होते हैं। यूरेनियम 235 बहुत अल्प मात्रा में (0.7 प्रतिशत) होता है। इसके केन्द्रक में भी 92 प्रोटान होते हैं जिससे वह रासायनिक दृष्टि से पूर्वोक्त से भिन्न नहीं होता परन्तु उसमें न्यूट्रान केवल 143 होते हैं। तीसरा समस्थानिक, यूरेनियम 234, लेश मात्र होता है (.006 प्रतिशत)। उसमें 92 प्रोटान और 142 न्यूट्रान होते हैं।

यूरेनियम 238 न्यूट्रान को पकड़ता मात्र है, विखण्डित नहीं होता है। यूरेनियम 234 इतनी कम मात्रा में होता है कि वह उपेक्षणीय है। केवल यूरेनियम 235 विखण्डित होता है।

यूरेनियम 235 की बहुत अल्प मात्रा पर शोधकार्य करके फर्मी मार्च 1940 तक इस निष्कर्ष पर पहुंच गए कि परमाणु ऊर्जा उत्पन्न करने का सुराग मिल गया है। यूरेनियम के उस समस्थानिक, यूरेनियम 235 का पता चल गया था जो विखंडित किया जा सकता था और इस क्रिया के दौरान न्यूट्रान निर्मुक्त करता था; उन अवस्थाओं को भी मालूम कर लिया गया था जिनमें शृंखलित क्रिया सम्भव हो सकती थी।

अंत में, पारमाणविक विखंडन से सम्बन्धित सिद्धान्तों और प्रयोगों को जांचा गया। 2 दिसम्बर 1942 को फर्मी ने शिकागो विश्वविद्यालय के स्टैग्नेफील्ड वाले स्टैण्ड के नीचे स्थित स्क्वैश खेलने के मैदान में शृंखलित क्रिया आरम्भ करने

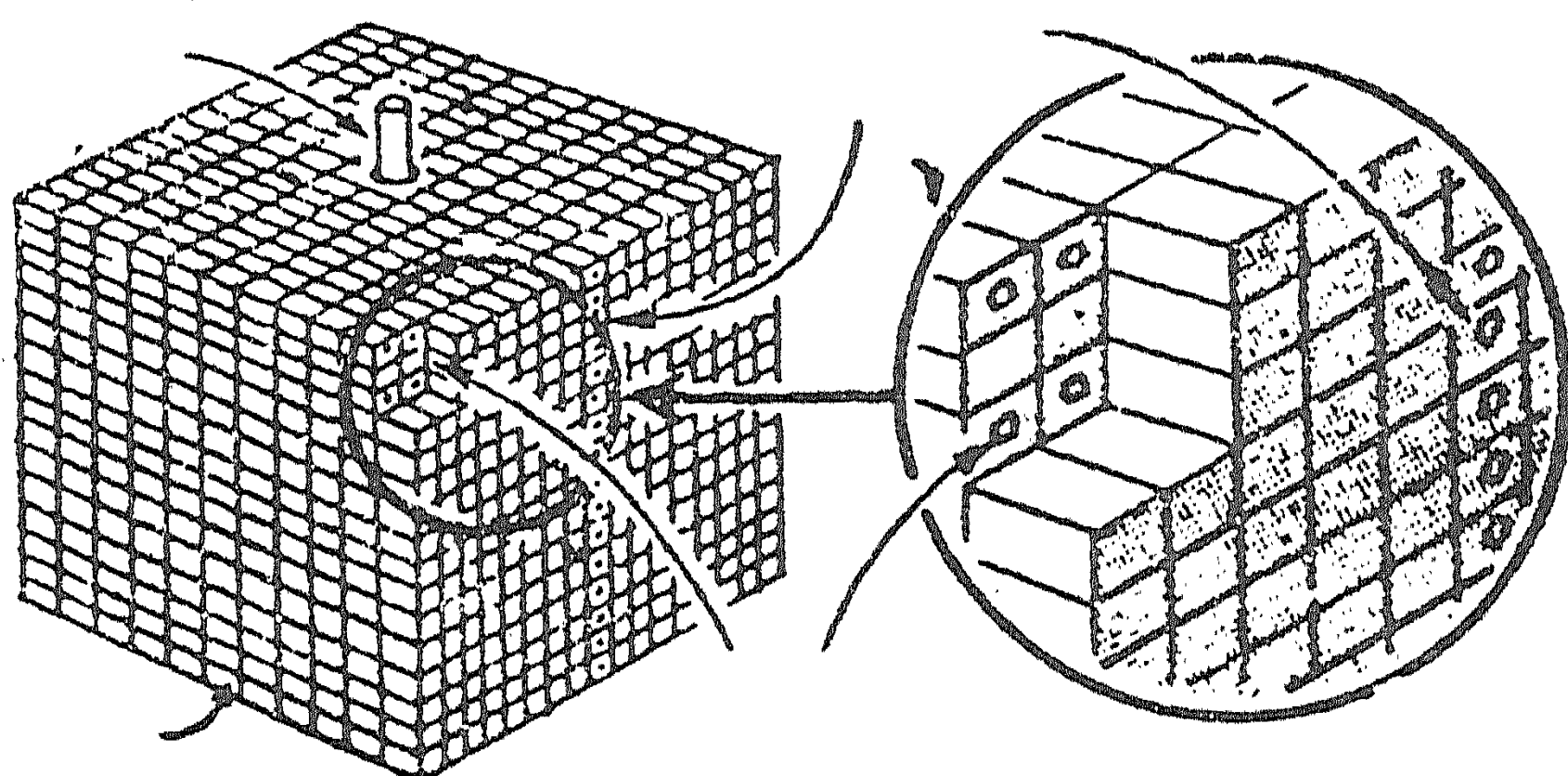


के उद्देश्य से यूरेनियम और ग्रैफाइट के एक पुंज का निर्माण किया। एक वर्ष पूर्व उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय में एक पुंज का निर्माण किया था परन्तु शृंखलित क्रिया आरम्भ करने में वे सफल नहीं हो सके थे।

शिकागो वाले पुंज में 12,400 पौंड यूरेनियम और यूरेनियम आक्साइड को ग्रैफाइट की ईंटों के बीच रखा गया था। पुंज को ठंडा करने के लिए ग्रैफाइट में बनी नालियों में से पानी बहाया जाता था। नालियां ग्रैफाइट से बनाई गयी थीं। प्रतिक्रिया को इच्छानुसार नियंत्रित या बंद करने के लिए ग्रैफाइट में कैडमियम दंड लगाए गए थे जो कि न्यूट्रानों को जज्ब कर सकते थे।

कैडमियम दंड

कैडमियम के दंड



ग्रैफाइट की ईंटें

यूरेनियम के दंड

उस दिन तेज हवा चल रही थी और उस क्रीडा क्षेत्र में लगभग बीस आदमी थे। कुछ तो पुंज के बिल्कुल पास थे। शेष, नियंत्रण पट्ट के पास, छज्जे पर थे। फर्मी, वहीं से परीक्षण का निर्देशन कर रहे थे।

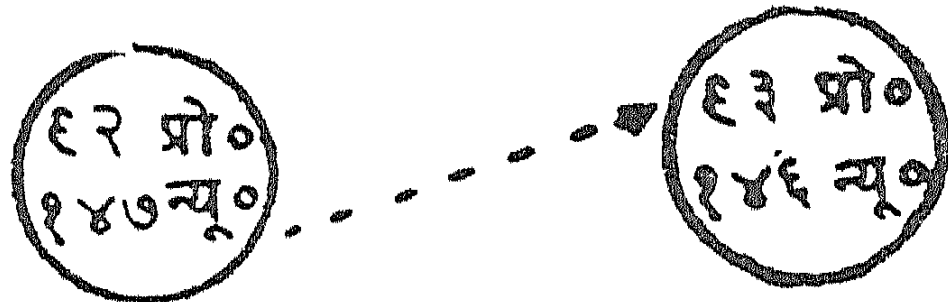
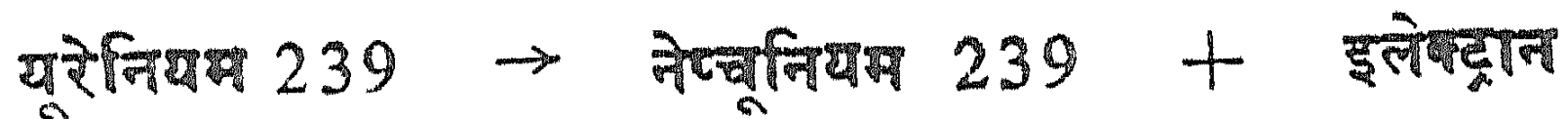
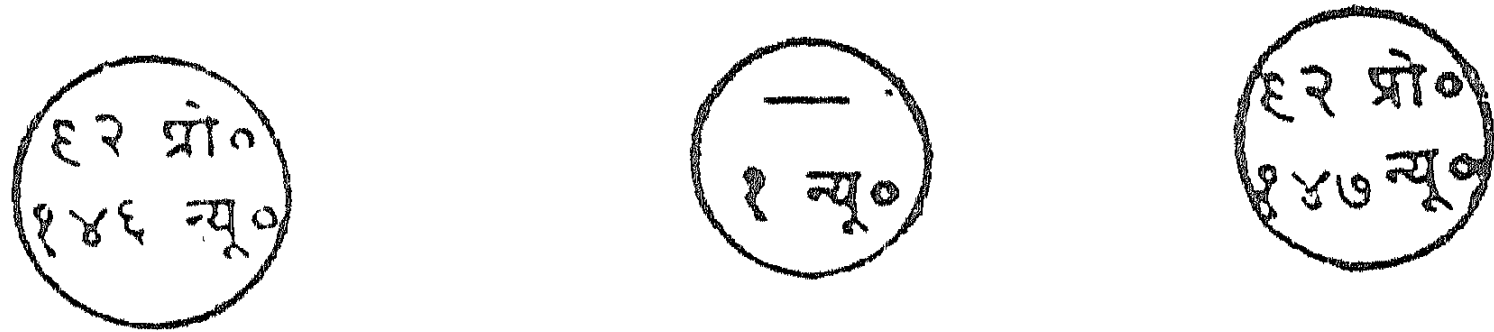
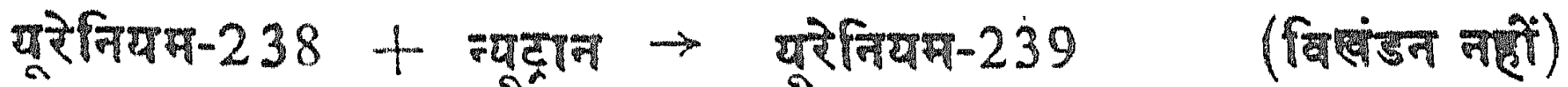
सुबह 9 बजकर 54 मिनट पर परीक्षण आरम्भ हुआ। फर्मी ने निर्देश किया कि नियंत्रण दंड निकाल लिये जाएं। दस बजे आपाती सुरक्षा नियंत्रण दंड, जिसे जिप नाम दिया गया था, निकाल लिया गया और छज्जे से बांध दिया गया। फिर अंतिम दंड को बहुत धीमे-धीमे निकाल लिया गया। मापकों की टिक-टिक अधिकाधिक तीव्र होती गयी। सबने, वहां पैदा हो रही और कमरे में फैल रही, तनाव की स्थिति का अनुभव किया।

सहसा फर्मी इत्मीनान की मुद्रा में आ गए। उन्होंने कहा, 'भई, मुझे तो भूख लगी है, आओ खाना खाने चलें।' मध्याह्नोत्तर 2 बजे वे लोग लौटकर आए और परिणामों की पड़ताल करने लगे। 3 बजकर 21 मिनट पर फर्मी मुस्कराये और अत्यन्त शान्त भाव से बोले, 'प्रतिक्रिया आत्मनिर्भर है।' परीक्षण सफल रहा। उन्होंने पारमाणविक विखंडन की शृंखलित क्रिया चालू कर दी थी जो स्वयं

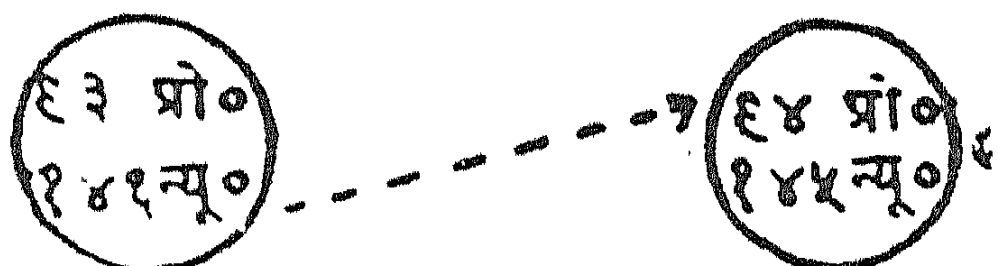
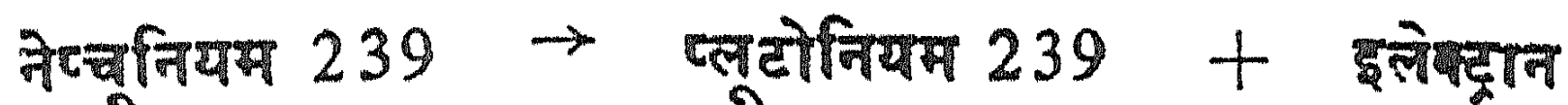
को स्वयं जारी रखेगी। प्रतिक्रिया को अट्ठाईस मिनट तक जारी रहने दिया गया। तब फर्मी ने आदेश दिया कि कैडमियम दंड को प्रविष्ट कर दिया जाए। मापकों की टिक-टिक मंद पड़ गयी और प्रतिक्रिया बंद हो गयी।

विखंडन के लिए आवश्यक शुद्ध यूरेनियम 235 को प्राप्त करना कठिन था। उससे परमाणु ऊर्जा के अनुसंधान की प्रगति में बाधा पड़ी। प्राकृतिक यूरेनियम 140 पाँड में केवल एक पाँड यूरेनियम-235 होता है। प्राकृतिक यूरेनियम-235 को पृथक् करना, आरम्भ में, जटिल और खर्चीला कार्य था।

ऐसी स्थिति में, वैज्ञानिकों को यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि पारमाणविक पुंज के उत्पादनों में एक नया तत्व प्लूटोनियम है जो खंडनीय है। उसके निर्माण की प्रक्रिया इस प्रकार थी—



(यूरेनियम 239 का एक न्यूट्रॉन स्वयं विखंडित होकर एक प्रोटॉन और एक इलेक्ट्रॉन बन जाता है)



(नेप्चूनियम 239 भी, यूरेनियम 239 की तरह विखंडित होता है)

यह भी मालूम हुआ कि यूरेनियम की तुलना में, प्लूटोनियम दो कारणों से अधिक उपयोगी है। चूंकि यह रासायनिक दृष्टि से यूरेनियम से भिन्न है अतः यह पुंज के यूरेनियम से अधिक आसानी से पृथक् किया जा सकता है। इससे भी बड़ी

बात यह है कि प्लूटोनियम का निर्माण यूरेनियम 238 से होता है जो प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, दुर्लभ यूरेनियम 235 से नहीं।

परमाणु-विखंडन के प्रयोगों में लीन, अमरीका के वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया कि उन्होंने ऊर्जा का एक नया और शक्तिशाली स्रोत मालूम कर लिया है। घटनाएं द्वितीय विश्वयुद्ध का सामना कर रही थीं और सैनिक तथा राजनीतिक दृष्टि से परमाणु-ऊर्जा महत्त्वपूर्ण हो गयी। वैज्ञानिकों को मालूम था कि पारमाणविक विखंडन का उपयोग ऐसे बमों को बनाने के लिए किया जा सकता है जिनकी तुलना में अन्य सब बम पटाखे-से लगेंगे। उदाहरणार्थ, डॉ० मीट्ज़नर सिद्ध कर चुकी थीं कि यूरेनियम का एक परमाणु जब विखंडित होता है तब 20 करोड़ इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा उत्पन्न होती है। इसकी तुलना टी० एन० टी० से कीजिए जिसमें प्रत्येक अणु केवल दस इलेक्ट्रान वोल्ट उत्पन्न करता है।

अगस्त 1939 में अलबर्ट आइन्स्टाइन ने राष्ट्रपति रूजवेल्ट को एक पत्र लिखा था कि वे अति शीघ्र परमाणु बम बनाने के लिए धन स्वीकृत करें। राष्ट्रपति को इस विषय में जो सूचना दी गयी उससे वे बहुत प्रभावित हुए और बम निर्माण के लिए उन्होंने शीघ्र ही कार्य आरम्भ करवा दिया। मामला वाकई बहुत जल्दी का था। परमाणु विखंडन का ज्ञान जर्मनों को सबसे पहले प्राप्त हुआ था। और अफवाह गरम थी कि जर्मन लोग बड़ी तत्परता से परमाणु बम बनाने में लगे हुए हैं।

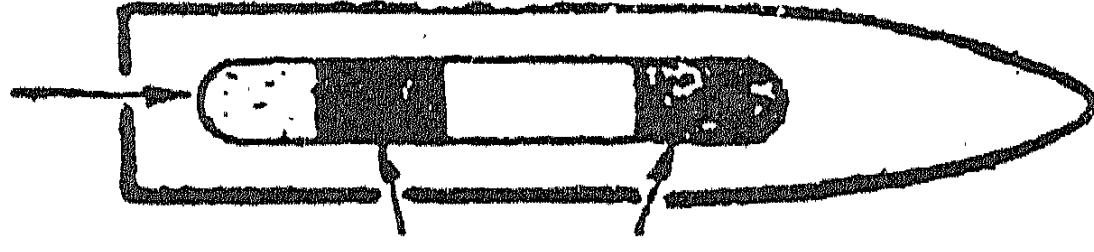
16 जुलाई 1945 तक परमाणु बम के निर्माण से सम्बन्धित बहुत-सी इंजिनियरी समस्याएं हल की जा चुकी थीं। प्रथम परीक्षात्मक विस्फोट के परिणाम हम पढ़ ही चुके हैं। परन्तु आत्मश्लाघा के लिए समय नहीं था और वैज्ञानिक तथा इंजिनियर ऐसा दूसरा बम बनाने में जुट गए जिसे शत्रु के विरुद्ध इस्तेमाल किया जा सके। 6 अगस्त 1945 को संयुक्त राज्य ने जापान के हिरोशिमा शहर पर परमाणु बम गिरा दिया।

बम छोटा था। 10 फीट लम्बा, व्यास में 28 इंच और 9000 पौण्ड भारी। उसकी विस्फोटक शक्ति, टी० एन० टी० के 2,00,000 पौण्ड के बराबर थी। उससे जितनी मृत्युएं और विनाश हुआ, उसकी कल्पना किसी को भी नहीं थी।

आरम्भ में ही यह बात ज्ञात थी कि यूरेनियम-235 या प्लूटोनियम का एक विशेष परिमाण—न्यूनतम संहति—ही परमाणु बम का 'घोड़ा' है। दूसरे शब्दों में, यदि यूरेनियम-235 या प्लूटोनियम की मात्रा न्यूनतम संहति से कम होगी तो किसी भी तरह से उसमें विस्फोट नहीं होगा और यदि मात्रा, न्यूनतम संहति से अधिक होगी तो विस्फोट किसी तरह भी रोका नहीं जा सकेगा।

शायद कभी भविष्य में यह बताया जा सकेगा कि परमाणु बम किस तरह कार्य करता है। यह तब सम्भव होगा जब युद्ध असम्भव हो जाएगा। इस समय तो

विस्फोटक



यूरेनियम २३५

हम केवल सरकारी वक्तव्य का उल्लेख कर सकते हैं। 'बहुत तेजी से परमाणु बम को सज्जित करने का प्रत्यक्ष उपाय यह था कि एक बंदूक के एक भाग को गोली के रूप में दूसरे भाग पर, जो लक्ष्य के रूप में हो, छोड़ा जाए।' दूसरे शब्दों में, बम की न्यूनतम संहति को दो भागों में अलग-अलग रखा जाता था। उपयुक्त क्षण पर एक भाग को दूसरे भाग से टकराया जाता था जिससे न्यूनतम संहति बन जाती और विस्फोट हो जाता था।

सामान्य टी० एन० टी० बम, विस्फोट से उत्पन्न तेज झोंकों द्वारा विनाश उत्पन्न करता है। परन्तु परमाणु बम चार विभिन्न प्रकारों से विनाश करता है। पहले, तेज झोंकों द्वारा, जैसा कि हर तरह के बम-विस्फोटों से होता है। परन्तु परमाणु बम का तेज झोंका बहुत प्रबल होता है इसलिए विनाश भी अधिक होता है। दूसरे, विस्फोट से उत्पन्न ऊष्मा के कारण तापमान, दसियों लाख अंशों तक चढ़ जाता है, और मीलों तक आग लग जाती है। तीसरे, विकिरण से विनाश होता है। जब बम फटता है तब सब प्रभावित लोगों को गामा किरणों और न्यूट्रॉनों के कारण विकिरण-रोग हो जाता है। चौथे, रेडियोधर्मी धूल से होने वाला विनाश सबसे अधिक महत्व का हो गया है जबसे अधिकाधिक बड़े परमाणु बमों और हाइड्रोजन बमों का निर्माण होने लगा है। जब इन बड़े बमों का विस्फोट होता है तब रेडियोधर्मी पदार्थ, सूक्ष्म धूल के रूप में वायुमण्डल में दूर तक ऊपर फेंक दिए जाते हैं। बाद में, यह खतरनाक धूल मनुष्यों, पशुओं तथा खाद्य वस्तुओं आदि पर बहुत धीरे-धीरे गिरती रहती है तथा और अधिकाधिक विकिरण-रोग उत्पन्न करती रहती है।

प्रथम परमाणु बम से जो विनाश हुआ उसके तखमीने बहुत भयावह हैं। शहर के केन्द्र में चार वर्ग मील क्षेत्र का, आंधी और आग से पूर्णतः सफाया हो गया। शहर के दो-तिहाई से अधिक मकान नष्ट हो गए। 70,000 आदमी मर गए और 1,35,000 आदमी घायल हो गए। घायल व्यक्तियों की सहायता करने का कोई उपाय नहीं था। पैंतालीस अस्पतालों में से बयालीस नष्ट हो गए। दो सौ डॉक्टरों में से एक सौ अस्मी मर गए या घायल हो गए तथा 1780 नर्सों में से 1654 या तो मर गयीं या घायल हो गयीं।

9 अगस्त 1945 को दूसरा परमाणु बम दूसरे शहर नागासाकी पर गिराया गया। इससे द्वितीय विश्वयुद्ध का अन्त हो गया। ये बम तो आरम्भ मात्र थे। अब



तो उनसे बड़े और अधिक शक्तिशाली बम बन चुके हैं जिनकी विस्फोटक हिंसा शक्ति 5,00,000 टन टी० एन० टी० के बराबर है। राष्ट्रपति आइजनहावर के कथनानुसार, 1953 में संयुक्त राज्य में परमाणु बमों का इतना बड़ा भंडार था जिसकी विस्फोट क्षमता उन सारे बमों और गोलियों की सम्मिलित क्षमता से कई गुना अधिक थी जिनका उपयोग दोनों पक्षों द्वारा सारे द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान किया गया था।

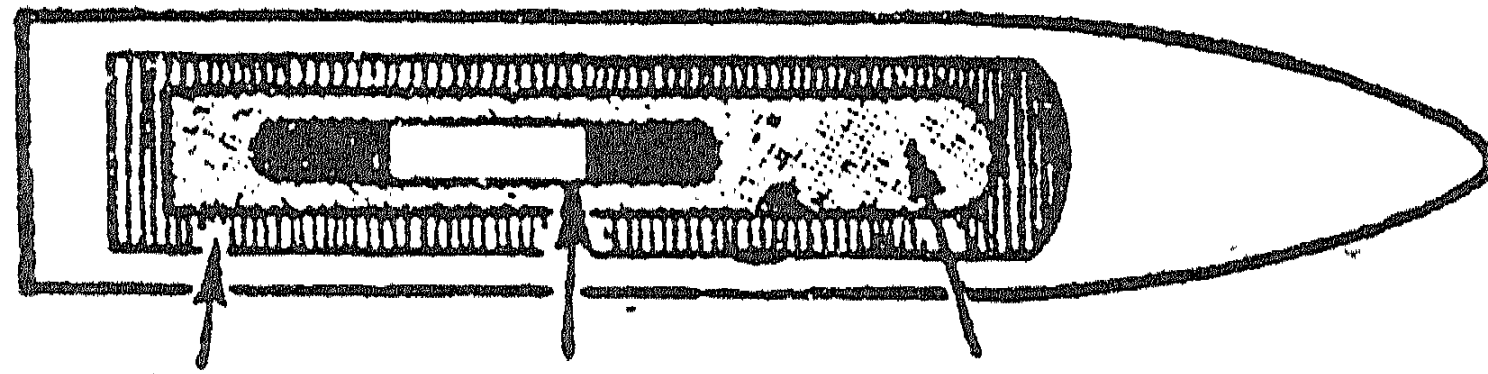
1 नवम्बर 1952 को वैज्ञानिकों ने एक नये प्रकार के बम का परीक्षण किया जो परमाणु बम से कई गुना अधिक शक्तिशाली था। यह बम, हाइड्रोजन परमाणुओं के जुड़ने या समेकन से बनता है इसलिए उसे हाइड्रोजन बम या हा-बम कहते हैं। इस बम में, मानव उस ऊर्जा-निर्माण की नकल करता है जो सूर्य तथा अन्य तारों में निरन्तर होता रहता है।

परमाणु ऊर्जा-विषयक अध्ययन से मालूम हुआ है कि ऊर्जा की अत्यधिक मात्रा, या तो बहुत भारी या हल्के, तत्त्वों से प्राप्त की जा सकती है। जब यूरेनियम जैसे भारी परमाणुओं का विखंडन होता है तब जो टुकड़े बनते हैं उनका सम्मिलित भार, मूल परमाणु के भार से कम होता है। संहति में जो कमी होती है वह ऊर्जा बन जाती है। परन्तु जब हल्के तत्त्वों को समेकित किया जाता है तब जो नया परमाणु बनता है उसका भार पृथक् अवस्था के सम्मिलित भार से कम होता है। संहति की यह कमी ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। चूंकि परमाणुओं का समेकन (संगलन) बहुत उच्च तापमान पर सम्भव है अतः इस क्रिया को ताप-न्यूक्लीय अभिक्रिया कहते हैं।

समेकन-प्रतिक्रिया में, सबसे हल्के तत्त्व, हाइड्रोजन, का उपयोग किया जाता है। उस हाइड्रोजन का, जिससे हम परिचित हैं और जिसका परमाणु भार एक है, उपयोग नहीं किया जाता। हाइड्रोजन के दो भारी समस्थानिकों, ड्यूटेरियम और ट्रिशियम, के बीच अधिक अच्छी समेकन प्रतिक्रिया होती है। (आपको याद होगा कि एक ही तत्त्व के ऐसे परमाणु जिनके केन्द्रकों में प्रोटानों की संख्या समान हो परन्तु न्यूट्रानों की संख्या भिन्न हो, समस्थानिक कहलाते हैं।)

ड्यूटेरियम (एक प्रोटान, एक न्यूट्रान) के केन्द्रक का जब ट्रिशियम (एक प्रोटान, दो न्यूट्रान) के केन्द्रक के साथ समेकन होता है तब हीलियम का एक परमाणु और एक न्यूट्रान प्राप्त होता है तथा अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है। सबसे बड़ी समस्या यह थी कि दोनों केन्द्रकों को कैसे मिलाया जाए क्योंकि दोनों पर धन आवेश होता है और वे एक-दूसरे को प्रतिकर्षित करते हैं।

यह मालूम था कि दोनों केन्द्रकों का विलयन तभी सम्भव है जब तापमान दसियों लाखों अंशों का हो। पृथ्वी पर इतना उच्च ताप उत्पन्न करने का कोई उपाय सम्भव नहीं होता था। परन्तु परमाणु बम के निर्माण से यह सम्भव हो



यूरेनियम की खोल      परमाणु बम      ड्यूटेरियम और ट्रिशियम

गया। परमाणु बम के विस्फोट से 15 करोड़ अंश तक ताप उत्पन्न होता है जो सूर्य के आंतरिक ताप से भी अधिक है। इस ताप पर ड्यूटेरियम और ट्रिशियम के न्यूक्लियस इतनी तीव्र गति से चलते हैं कि उनका समेकन हो सकता है। अतः प्रत्येक हाइड्रोजन बम के 'घोड़े' के तौर पर एक परमाणु बम का होना आवश्यक है।

परमाणु बम केवल छोटे आकारों का हो सकता है क्योंकि इसकी न्यूनतम संहति सीमित है। ज्यों ही न्यूनतम संहति के बराबर मात्रा हो जाती है, विस्फोट हो जाता है और यूरेनियम की अतिरिक्त मात्रा व्यर्थ जाती है। परन्तु हाइड्रोजन बम के आकार की कोई सीमा नहीं अतः उससे होने वाले विनाश की भी कोई सीमा नहीं है। जहां परमाणु बमों की माप टी० एन० टी० के हजारों टनों या किलोटनों में की जाती है वहां हाइड्रोजन बम की माप टी० एन० टी० के लाखों टनों या मेगाटनों में की जाती है।

आरम्भ से प्रत्येक को आशा थी कि परमाणु शक्ति को उपयोग जीवन को अधिक समृद्ध बनाने में किया जायगा। परमाणु बम और हाइड्रोजन बम के निर्माण के बाद के वर्षों में वैज्ञानिकों ने यह मालूम करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया कि परमाणु ऊर्जा का उपयोग मृत्यु के बजाय जीवन के पक्ष में कैसे किया जा सकता है।

परमाणु ऊर्जा के उपयोग का सबसे स्पष्ट उपाय यह है कि रिएक्टर (अभिक्रियक) में जो ऊष्मा उत्पन्न होती है उससे काम लिया जाए। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य में अधिकांश भाप जनित्रों द्वारा उत्पन्न की जाती है। अभी तक कोयला, तेल या प्राकृतिक गैस को जलाकर पानी को गरम और भाप में परिवर्तित किया जाता था। यह भाप जनित्रों के टरबाइनों को घुमाती थी। अब परमाणु रिएक्टरों से प्राप्त ऊष्मा से जल को भाप में परिवर्तित किया जा सकता है। एक पाँड यूरेनियम से उतनी ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है जितनी तीस लाख पाँड कोयले से।

अभी तक परमाणु से जो विद्युत् पैदा की जाती है वह पारम्परिक तरीकों से पैदा की गई विद्युत से महंगी होती है। इसका कारण यह नहीं है कि इसका ईंधन बहुत महंगा है बल्कि यह कि संयंत्र का निर्माण बहुत अधिक निरापद रूप में करना

पड़ता है ताकि विकिरण बाहर निकलकर खतरा उत्पन्न न कर सके।

हम अभी परमाणु-युग के आरम्भिक काल में ही हैं। ज्यों-ज्यों हम अधिक कार्यकुशल होते जाएंगे और अधिकाधिक यंत्रों का निर्माण होता जाएगा, व्यय निश्चय ही कम होता जाएगा।

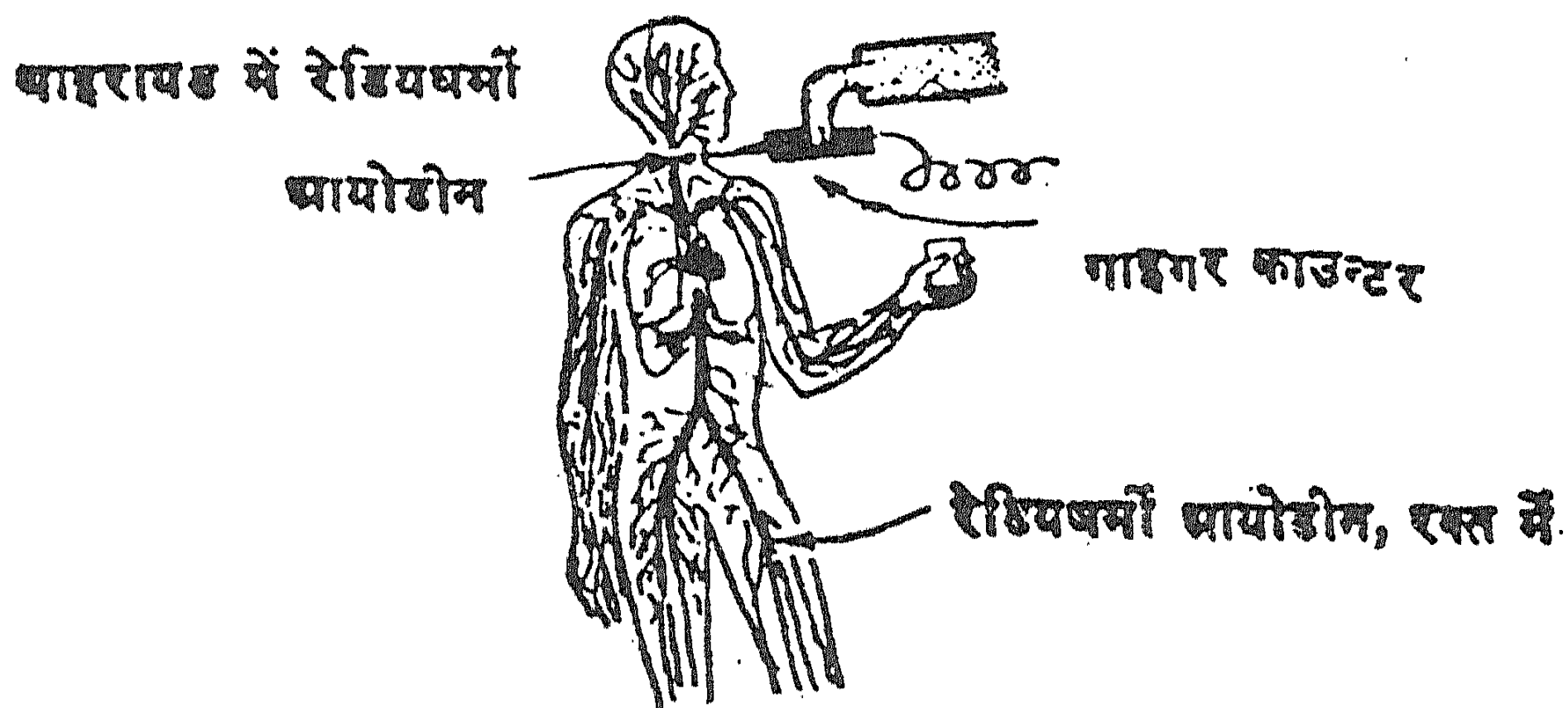
छोटे-छोटे परमाणु रिएक्टरों से अन्य काम लिये जा रहे हैं। 1955 में संयुक्त राज्य ने प्रथम परमाणु-पनडुब्बी, नाटिलस, का निर्माण किया। इसमें शक्ति का स्रोत यूरेनियम का एक गोला था जिसका आकार गोल्फ की गेंद के बराबर था। प्रथम वर्ष में नाटिलस ने 50,000 मील से अधिक यात्रा की और इस बीच उसे फिर से ईंधन लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी। आजकल संयुक्त राज्य की नौ सेना में लगभग बीस परमाणु-पनडुब्बियां हैं। 1961 में संयुक्त राज्य ने परमाणु शक्ति वाले प्रथम समुद्री जहाज को जल में उतारा था। उसका नाम एन० एस० (न्यूक्लियर शिप) सवन्ना रखा।

परन्तु रिएक्टरों में ऊष्मा उत्पन्न करना, परमाणु-ऊर्जा से काम लेने का एकमात्र उपाय नहीं है। रिएक्टर के भीतर न्यूट्रानों के तीव्र प्रवाह का एक अन्य उपयोग है। बहुत से तत्त्वों पर जब इन न्यूट्रानों की बाँछार होती है तब वे एक न्यूट्रान को पकड़ लेते हैं। केन्द्रक में इस फालतू न्यूट्रान के प्रवेश के कारण वे तत्त्व रेडियोधर्मी हो जाते हैं। चूंकि वे तत्त्व सामान्यतः रेडियोधर्मी हैं अतः जब अतिरिक्त न्यूट्रान के कारण वे रेडियोधर्मी हो जाते हैं तब हम उन्हें कृत्रिम रेडियोधर्मी कह देते हैं। अतिरिक्त न्यूट्रान से इनके परमाणु के भार में भी परिवर्तन हो जाता है अतः उन्हें विकिरण समस्थानिकाएं (रेडिया आइसोटोप) भी कहते हैं।

कोई तत्त्व चाहे प्रकृत्या रेडियोधर्मी हो चाहे कृत्रिम रूप से ऐसा बनाया गया हो, उसकी क्रिया समान होती है। वह निरंतर किरणों और कणों को उत्सर्जित करता रहता है। विकिरण की इस निर्मुक्ति के कारण ही ये विकिरण समस्थानिकाएं इतनी उपयोगी होती हैं।

विकिरण समस्थानिकाओं के बहुत से उपयोग अब तक ज्ञात हो चुके हैं। इन उपयोगों को तीन सामान्य वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

प्रथम यह कि जीवित वस्तुओं अर्थात् प्राणियों और पौधों में विकिरण समस्थानिकाओं का अनुसारक (ट्रेसर) के रूप में उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ यदि डॉक्टर किसी रोगी के थाइरायड ग्रंथि की परीक्षा करना चाहता है तो वह उसे एक ऐसा पेय देता है जिसमें रेडियोधर्मी आयोडीन (आयोडीन 131) की थोड़ी-सी बूंदें हों। आयोडीन शरीर में प्रवेश कर जाने पर गाइगर काउन्टर जैसे यंत्रों द्वारा उनके पथ का अनुसरण किया जा सकता है। गाइगर काउन्टर रेडियोधर्मी आयोडीन से निकलने वाले कणों को ग्रहण करता जाता है। रोगी के गले के सामने गाइगर काउन्टर को रखकर डॉक्टर यह माप सकता है

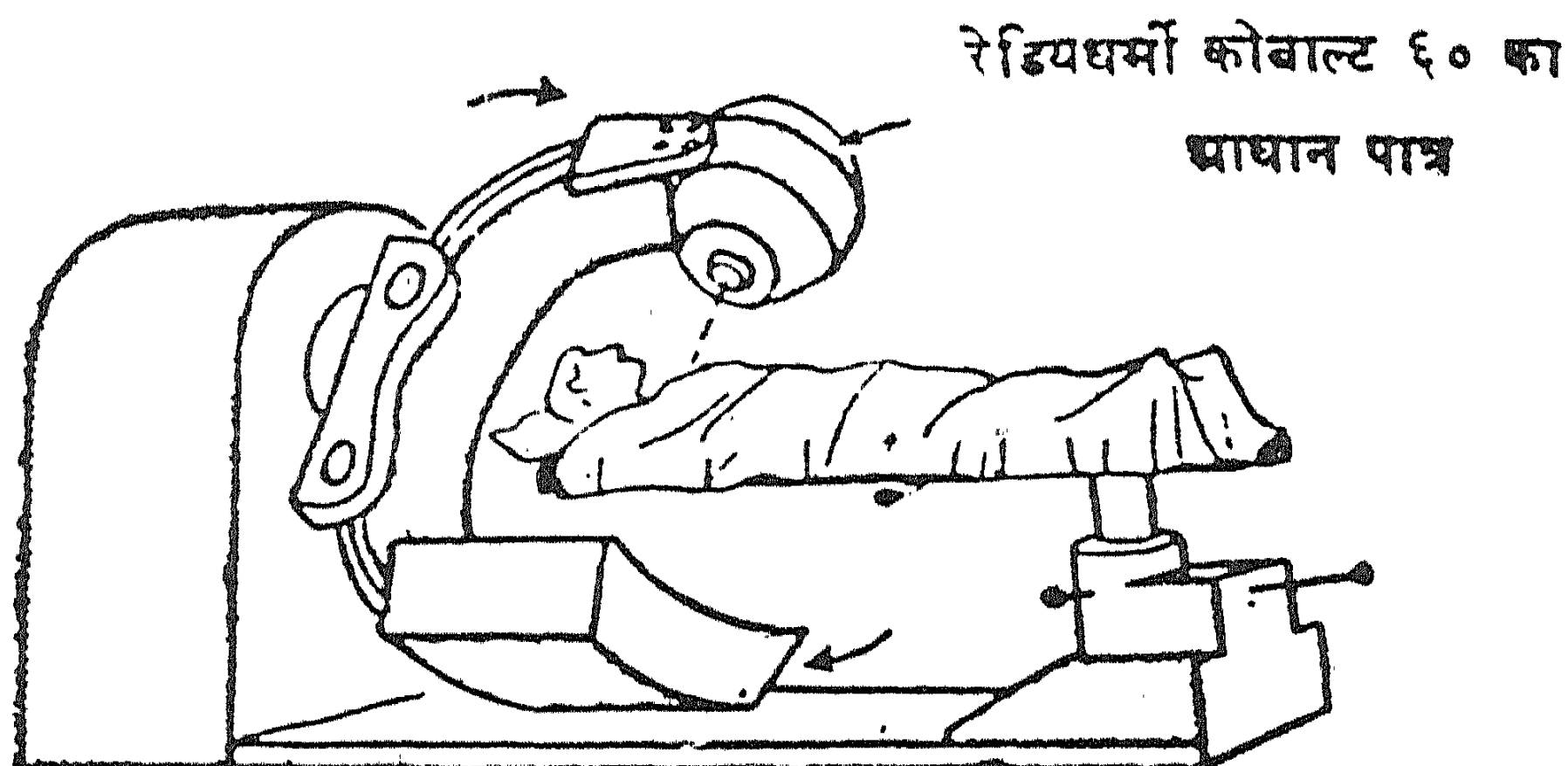


कि थाइरायड ग्रंथि किस दर से आयोडीन को ग्रहण कर रही है। इस जानकारी के आधार पर थाइरायड की कुछ बीमारियों का निदान किया जा सकता है। थाइरायड की विभिन्न बीमारियाँ, रक्त में रेडियोधर्मी आयोडीन की मात्रा को माप कर डॉक्टर इन बीमारियों को मालूम कर सकता है। रेडियोधर्मी अनुसारक का

महत्त्व इस बात में है कि उससे  $\frac{1}{1,00,000}$  ग्राम से भी छोटी मात्राओं का पीछा

और पैमाइश उनके विकिरण के आधार पर किया जा सकता है। इस प्रकार, रेडियोधर्मी पदार्थ की मात्रा रोगी को खिलाने या पिलाने की आवश्यकता नहीं होती अतएव उसके शरीर में कोई गड़बड़ी नहीं होती।

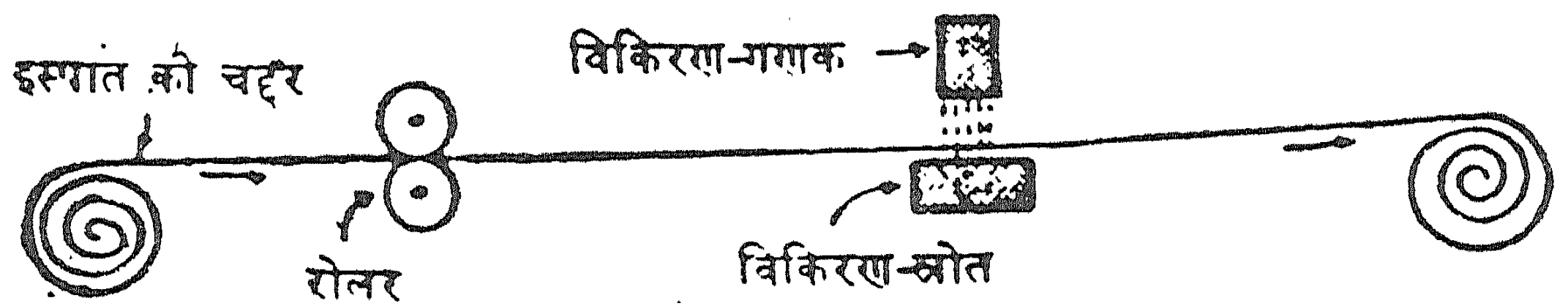
दूसरा उपयोग यह है कि अधिक शक्तिशाली विकिरण समस्थानिकाओं से बीमारी का उपचार किया जाता है। डॉक्टर जानते हैं कि रेडियम या एक्स किरणें कैंसर की कोशिकाओं को स्वस्थ कोशिकाओं की अपेक्षा अधिक तेजी से नष्ट करती हैं। परन्तु रेडियम बहुत महंगा है और कठिनाई से उपलब्ध होता है और कुछ अवस्थाओं में एक्स किरणें स्वस्थ टिस्सुओं को भी क्षति पहुंचाती हैं। रेडियोधर्मी कोबाल्ट 60, विकिरण के पुराने साधनों से अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ और





बहुत सस्ता भी है। एक औंस कोबाल्ट 60 का मूल्य 17,000 डालर के लगभग होता है परन्तु वह उतना ही विकिरण देता है जितना 50,00,000 डालर का रेडियम !

अंत में, विकिरण समस्थानिकाओं का उद्योग में उपयोग होता है। सामान्यतः उसका उपयोग इस तरह होता है—जिस पदार्थ की परीक्षा करनी होती है उसके नीचे रेडियम स्रोत को रखा जाता है। उस पदार्थ में से गुजरने वाले विकिरण की मात्रा से पदार्थ की मोटाई का पता चलता है। उदाहरणार्थ इस्पात के कारखानों में इस्पात की चद्दरों को इस तरीके से माप कर मालूम किया जा सकता है कि उनकी मोटाई एक समान है कि नहीं।



हम परमाणु युग के बिल्कुल आरम्भिक काल में पहुँच चुके हैं और मानव-जाति चौराहे पर खड़ी है। एक रास्ता तो परमाणु ऊर्जा के अधिकतर विकास तथा शान्तिमूलक उपयोगों की ओर ले जाता है। दूसरा रास्ता, इस ग्रह पर विद्यमान जीवन के विनाश की ओर ले जाने वाला है। प्रश्न यह है कि हम लोगों के जीवन और स्वास्थ्य में सुधार करेंगे या कि अधिकाधिक बड़े और भयावह बम बनाते जायेंगे?

## जर्नीत खगोल

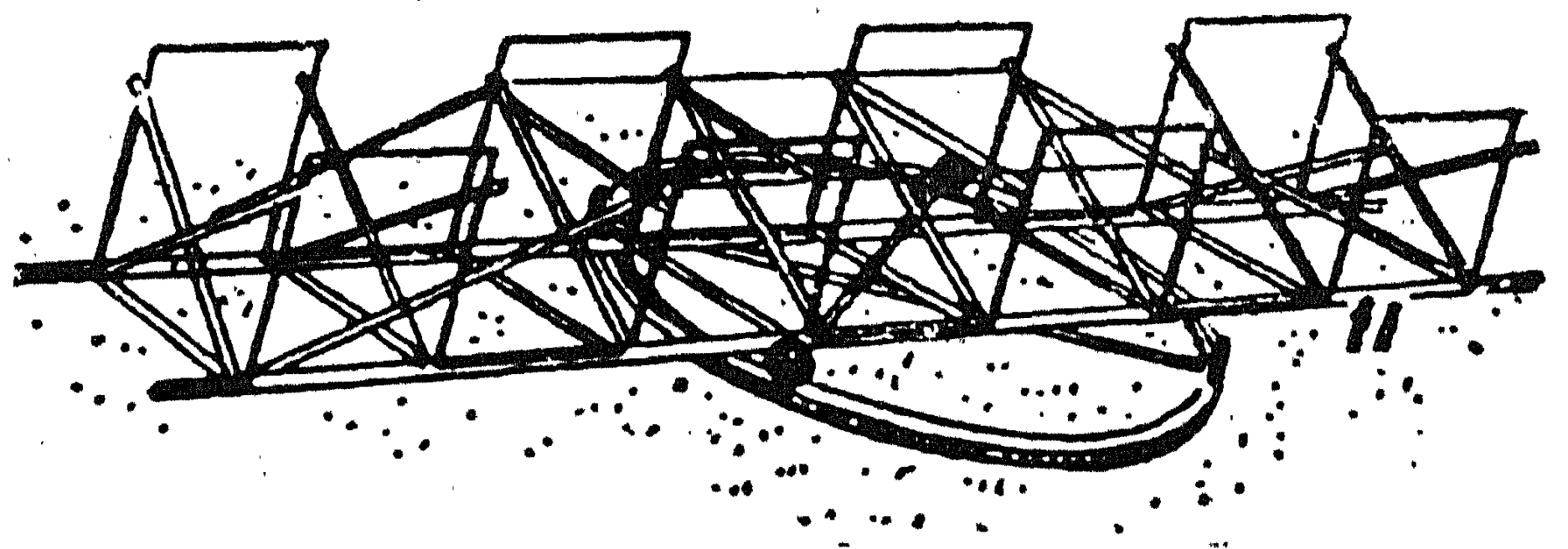
बहुत से लोग ऐसा समझते हैं कि खगोल प्राचीनतम विज्ञान है। इतिहास के आरम्भ से ही मनुष्य आकाश में दीखने वाले सूर्य और चन्द्रमा, तारों और ग्रहों को समझने और जानने का प्रयत्न करता रहा है। इतिहास के अधिकांश भाग में उसने खगोल का अध्ययन बिना किसी व्यावहारिक उद्देश्य से किया। परन्तु आजकल हम आकाश का अध्ययन नये उद्देश्यों से करते हैं। राकेटों, अंतरिक्ष यात्रियों और चन्द्रमा पर उतरने की इच्छा ने प्राचीन खगोल विज्ञान के अध्ययन के लिए नये और बहुत व्यावहारिक कारण प्रस्तुत किये हैं। सौभाग्य से आकाश-मण्डल के अध्ययन के लिए हमारे समय में एक नये विज्ञान, रेडियोज्योतिष का जन्म हुआ है।

300 वर्ष से भी पहले, दूरदर्शी (दूरबीन) का आविष्कार गैलिलियो ने किया था। तभी से यह यंत्र ज्योतिर्विदों का सबसे उपयोगी और महत्वपूर्ण उपकरण रहा। दूरदर्शी का आधारभूत सिद्धान्त बहुत सरल है। ग्रह, नक्षत्र आदि के प्रकाश को दूरदर्शी, एक बिन्दु, फोकस, पर संकेन्द्रित करता है। यह कार्य दो तरह से सम्पादित होता है। जिस दूरदर्शी में प्रकाश को मोड़ने या वर्तित करने के लिए कांच के लेंस का उपयोग किया जाता है उसे वर्तनकारी दूरदर्शी कहते हैं। इस प्रकार के सबसे बड़े दूरदर्शी के लेंस का व्यास 40 इंच है और वह विस्कान्सिन में विलियम्स बे की यर्क्स वेधशाला में स्थित है। जिस दूरदर्शी में एक वक्र दर्पण द्वारा प्रकाश को परावर्तित कर फोकस पर संकेन्द्रित करते हैं उसे परावर्ती दूरदर्शी कहते हैं। इस प्रकार के सबसे बड़े दूरदर्शी के दर्पण का व्यास 200 इंच है और वह माउन्ट पैलोमर (कैलिफोर्निया) पर स्थापित है। उसका नाम हेल दूरदर्शी है।

ऐसा विश्वास है कि माउन्ट पैलोमर पर जो दूरदर्शी है उससे बड़ा दूरदर्शी व्यावहारिक नहीं होगा क्योंकि पृथ्वी का वायुमंडल दृश्य को इतना विकृत और धुंधला बना देता है कि हम और अधिक दूर तक नहीं देख सकते। माउन्ट पैलोमर वाले दूरदर्शी से 1960 में एक ऐसी मंदाकिनी (तारों का समुदाय) देखी गयी जिसकी अनुमानित दूरी 6 अरब (6,00,00,00,000) प्रकाश-वर्ष थी।

(प्रकाश-वर्ष वह दूरी है जिसे प्रकाश 1,86,000 मील प्रति सेकंड की रफ्तार से एक वर्ष में तय करता है। यह दूरी लगभग 60 खरब (60,00,00,00,00,000) मील होती है। प्रकाश-वर्षों को मीलों में परिवर्तित करने के लिए 60 खरब को प्रकाश-वर्षों की संख्या से गुणा कीजिए। परन्तु वायुमण्डल की बाधा के कारण पैलोमर वाले दूरबीन से प्रति वर्ष केवल कुछ दर्जन रातों में वास्तविक विशाल दूरियों तक देखा जा सकता है। ब्रह्मांड के अनन्त विस्तार में और अधिक दूरी तक देखने के लिए बिल्कुल भिन्न प्रकार के उपकरण की आवश्यकता है।

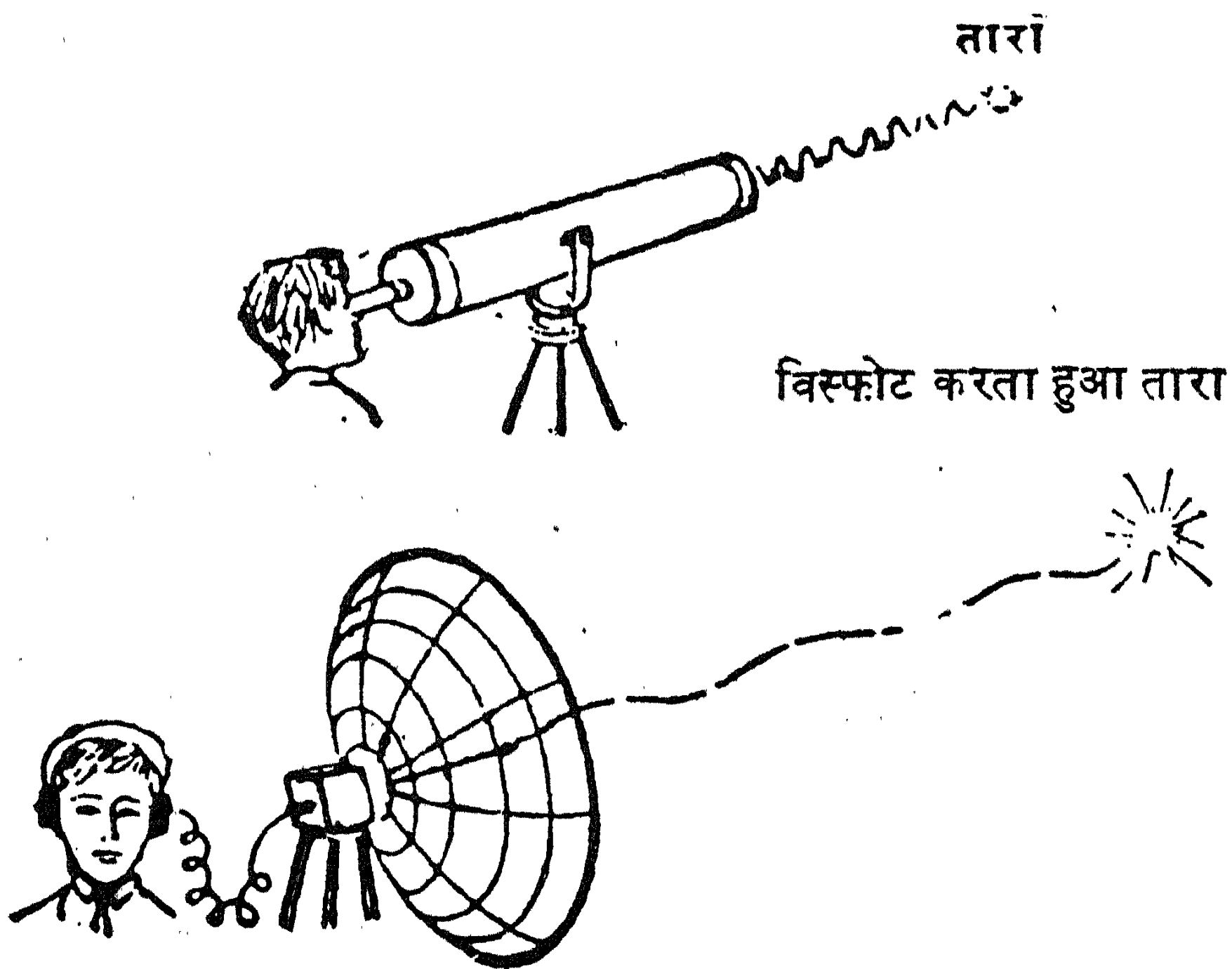
1931 में कार्ल जैन्स्की (1906-1950) ने सर्वथा संयोगवश एक ऐसे उपकरण का आविष्कार कर दिया जिसने 'ब्रह्मांड के प्रेक्षण की खिड़की' को बहुत अधिक बड़ा कर दिया। जैन्स्की एक युवक रेडियो इंजिनियर थे जो होल्मेडेल (न्यू जर्सी) स्थित बेल टेलीफोन प्रयोगशाला में काम कर रहे थे। उनको यह कार्य सौंपा गया था कि वे उस वायुमंडलीय गड़बड़ (स्टेटिक) के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करें जो अटलांटिक के आरपार तथा जहाजों से समुद्रतट वाले रेडियो संचार में बाधा प्रस्तुत कर रही थी। उन्होंने अपने अध्ययन का आरम्भ एक विशाल रेडियो एरियल स्थापित कर किया। लगभग 100 फीट लम्बे और 10 फीट चौड़े लकड़ी के प्लेटफार्म पर उन्होंने पीतल के नलों के कई ढांचे खड़े किए जो आठ बेकार दरवाजों की तरह दिखाई देते थे। सारे ढांचे के नीचे माडल टी फोर्ड के पहिये लगे थे और वह तंत्र एक गोल पथ पर रखा गया था। इस व्यवस्था के कारण सारी रचना के मुख को घुमाकर किसी भी दिशा में करना सम्भव था। इसका उपनाम 'घूमने वाला झूला' पड़ गया था।



जैन्स्की जब एरियल से ईयरफोन (आकर्णक) को सम्बन्धित करते थे तब उन्हें सब दिशाओं से वायुमंडलीय गड़बड़ी सुनाई देती थी। मानव-निर्मित स्रोतों से और विद्युत् तूफानों से आने वाली गड़बड़ी में वे भेद कर सकते थे। परन्तु इन दोनों के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार की गड़बड़ थी जिसे सुनकर उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने उसका वर्णन इस प्रकार किया, 'बहुत कमजोर, बहुत स्थायी और ईयरफोनों में सिसकारी उत्पन्न करने वाला।'।

यह 'सिसकारी' किस वस्तु से उत्पन्न होती है ? यह प्रश्न उनके मन में उठा । परन्तु और अनुसंधान तथा अध्ययन करने पर भी जैन्स्की को इसका उत्तर नहीं मिला । अंत में, उनकी समझ में आ गया कि वायुमंडलीय गड़बड़ी के स्रोत का पता लगाने में उन्हें इतनी कठिनाई क्यों हो रही है । इसका कारण यह था कि वह स्रोत स्वयं गतिशील था । इस स्रोत का मार्ग सूर्य से सम्बन्धित था । वह पूर्व से उदित होता था, पश्चिम में अस्त होता था परन्तु प्रतिदिन वह सूर्य से अधिकाधिक आगे होता जाता था ।

यह सुराग था जिससे रहस्य के उद्घाटन में सहायता मिली । यदि स्रोत सूर्य से आगे चलता है तो वह सम्भवतः कहीं दूर अंतरिक्ष में है और हमारी पृथ्वी की गति के कारण चलता हुआ-सा प्रतीत होता है । इस जानकारी के आधार पर जैन्स्की ने शीघ्र ही मालूम कर लिया कि इस सिसकारी का स्रोत आकाश-गंगा के केन्द्र की दिशा में है । यह समाधान इतना अप्रत्याशित, आश्चर्यजनक तथा महत्त्वपूर्ण था कि रेडियो-ज्योतिष विज्ञान का सूत्रपात हो गया । जैन्स्की के आविष्कार के पूर्व आकाश-मण्डल के बारे में हमारी जानकारी का आधार सूर्य तथा नक्षत्रों से आने वाला प्रकाश था । परन्तु रेडियो ज्योतिष इस तथ्य पर आधारित है कि अंतरिक्ष की बहुत-सी वस्तुएं रेडियो-तरंगों का भी उत्सर्जन करती हैं । (प्रकाश-तरंग और रेडियो-तरंग एक जैसी होती हैं । उनमें केवल यह अंतर है कि उनकी तरंगों की लम्बाई, अर्थात् एक तरंग के शीर्ष से दूसरी के शीर्ष तक की दूरी, समान नहीं होती है । रेडियो-तरंगों की लम्बाई, प्रकाश-तरंगों की अपेक्षा बहुत अधिक होती है । प्रकाशीय दूरदर्शी प्रकाश-तरंगों से काम लेता है

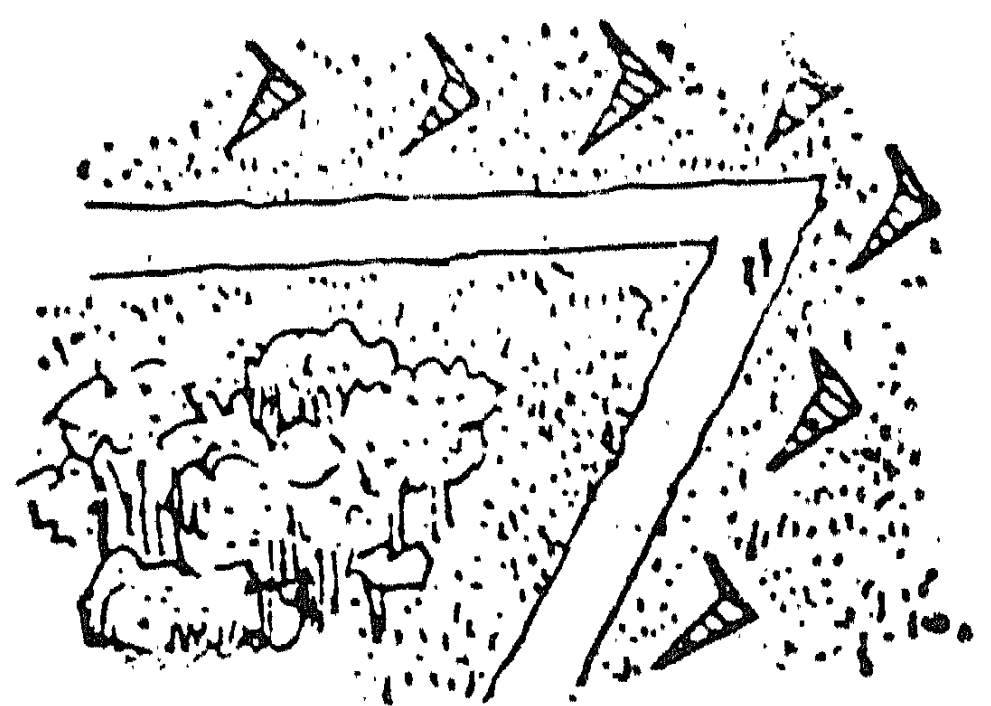
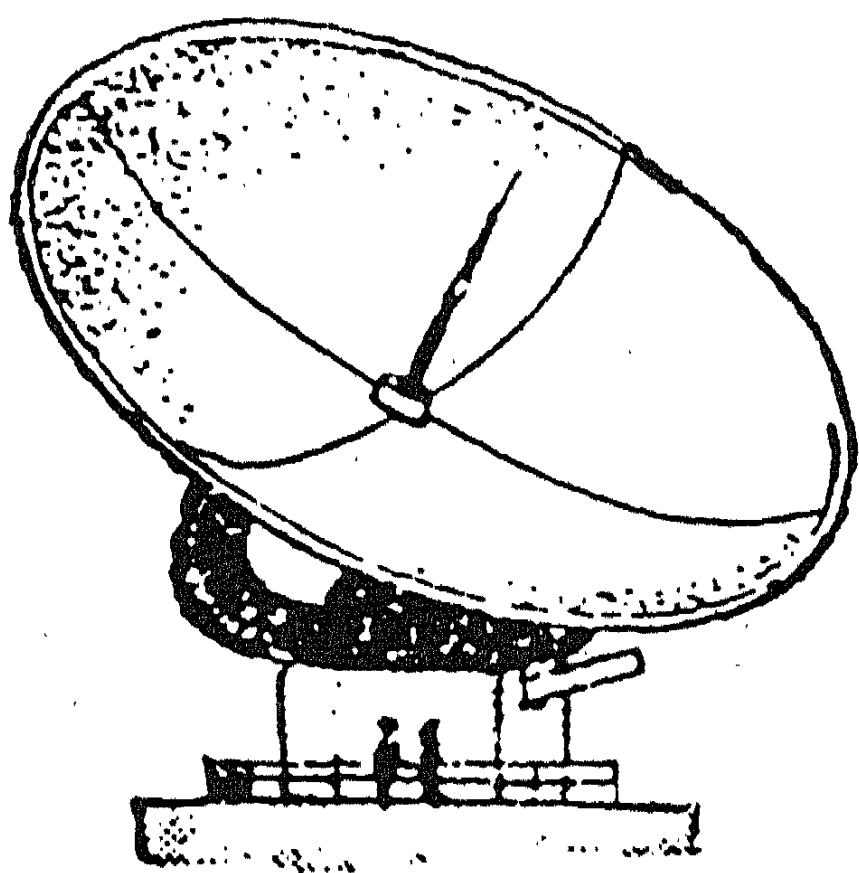




जिनकी लम्बाई एक इंच के लगभग एक लाख भाग के बराबर होती है, परन्तु रेडियो दूरदर्शी रेडियो-तरंगों से काम लेता है जिनकी लम्बाई 100 फीट तक होती है ।)

रेडियो-दूरदर्शी ने ब्रह्मांड के उस बहुत बड़े भाग का प्रेक्षण सम्भव बना दिया है जो पहले हमारी दृष्टि से परे था । खगोलशास्त्री बार्ट वाक ने कहा है, 'हमें वैसा ही विस्मयपूर्ण आनन्द मिलता है जैसा बैल्बोआ को प्रशान्त महासागर के प्रथम दर्शन से मिला था ।'

रेडियो-दूरदर्शी, प्रकाशीय दूरदर्शी से बिल्कुल भिन्न दिखायी देता है । यह प्रायः धातु के एक ऐसे विशाल कड़ाहे की तरह दिखायी देता है जिसका मुख घुमाकर किसी भी दिशा में किया जा सकता है । एक और प्रकार का रेडियो-दूरदर्शी होता है जिसमें जमीन में गड़े, छोटे-छोटे एरियलों की कतार या कतारें होती हैं । आजकल के रेडियो-दूरदर्शी में, जैन्स्की के मूल एरियलों के सिद्धान्त का

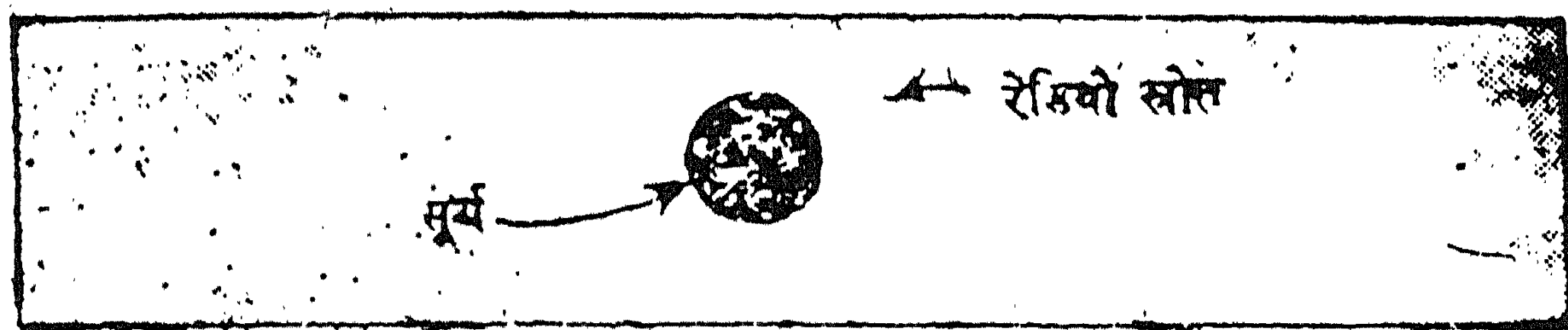


मेल उस नवीन रेडार उपकरण से किया जाता है जिसका निर्माण द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान हुआ था । आजकल काम देनेवाला सबसे बड़ा रेडियो-दूरदर्शी, चलकड़ाह किस्म का है । उसकी प्याली का व्यास 250 फीट है और वह इंग्लैंड के जॉर्डल बैंक नामक स्थान में स्थित है ।

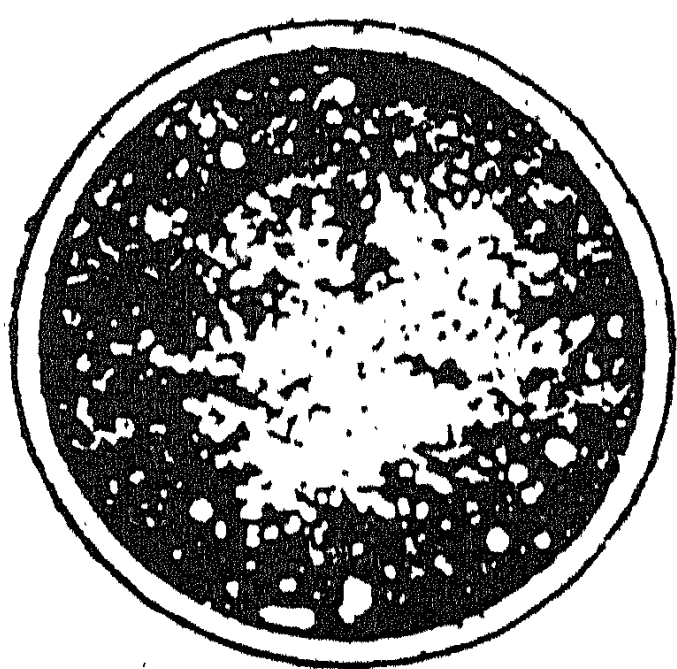
रेडियो दूरदर्शी आकाशमंडल के अध्ययन के लिए अधिक अच्छा नहीं तो नया अवश्य है । अंतरिक्ष में बहुत से रेडियो स्रोतों का पता रेडियो-दूरदर्शी से लगाया गया है परन्तु उन्हें प्रकाशीय दूरदर्शी से देखना सम्भव नहीं हो सका है । इसी तरह बहुत से तारों को, जिन्हें प्रकाशीय दूरदर्शी से देखा जाता है, रेडियो दूरदर्शी से सुना नहीं जा सकता । इस प्रकार रेडियो-दूरदर्शी एक बहुत ही उपयोगी यंत्र सिद्ध हुआ है क्योंकि वह हमें अंतरिक्ष की ऐसी-ऐसी वस्तुओं के बारे में सूचना दे सकता है जो 'अदृश्य' रही हैं ।

सौर परिवार के चन्द्रमा तथा शुक्र, मंगल और बृहस्पति ग्रहों से रेडियो-संकेत

मिल चुके हैं। तारों में से केवल सूर्य ही ऐसा है जिसके रेडियो संकेतों को हम ग्रहण कर सकते हैं। अन्य तारे भी रेडियो संकेत देते हैं परन्तु वे इतने दूर हैं कि हम उनके संकेतों को ग्रहण नहीं कर सकते। सूर्य से आने वाले संकेतों के बारे में एक दिलचस्प तथ्य यह है कि जो इनमें सबसे शक्तिशाली हैं वे सूर्य-मंडल से नहीं आते बल्कि उसके आसपास के परिमंडल से आते हैं। रेडियो ज्योतिषों ने सूर्य के दृश्य भाग से एक करोड़ बीस लाख मील परे से भी संकेत प्राप्त किए हैं।



परन्तु विशालतम रेडियो प्रेषित सुदूर अंतरिक्ष में हैं। तीन महत्वपूर्ण रेडियो स्रोतों की, भिन्न कारणों से अपनी विशेषता है। एक स्रोत है किसी तारे का विस्फोट जिसे सुपरनोवा (अधिनवतारा) कहते हैं। क्रैब नीहारिका नाम के इस स्रोत को सर्वप्रथम चीनी खगोलशास्त्रियों ने 1854 में देखा था। अपने प्रकाशीय दूरदर्शी से उसे हम आज भी देख सकते हैं। उसमें निरन्तर विस्फोट होता रहता है जिससे दीप्त गैसों की प्रचुर मात्रा बाहर निकलती रहती है। दूसरा स्रोत, दो मंदाकिनियों की टक्कर प्रतीत होती है और स्रोत हंस तारा मण्डल में पाया जाता है। तीसरा स्रोत तीव्रगति से चलता हुआ धूल का बहुत धुंधला बादल-सा



क्रैब नीहारिका



हंस तारा मंडल में दो मंदाकिनियों की टक्कर

प्रतीत होता है। यह स्रोत आकाश के काश्यपी क्षेत्र में है। रेडियो दूरदर्शी से जिन हजारों रेडियो स्रोतों का पता चला है उनमें से केवल सौ के लगभग ऐसे हैं जिन्हें प्रकाशीय दूरदर्शी से देखा जा सकता है।

1963 के थंनिम महीनों में रेडियो स्रोतों के एक नये समूह का पता चला। उनकी पहचान अभी तक पूर्ण रूप से नहीं हो सकी है। खगोलशास्त्री उन्हें तारानुमा

वस्तुएं कहते हैं। चूंकि पहले यह माना जाता था कि वे साधारण दूरी पर स्थित तारे हैं। बाद की खोज से मालूम पड़ा कि वास्तव में वे ऐसी मन्दाकिनियां हैं जो हमारी मन्दाकिनी से शायद सौ गुना अधिक उज्ज्वल हैं। सच पूछिए तो ऐसा प्रतीत होता है कि वे ऊर्जा के ज्ञात स्रोतों में सबसे अधिक शक्तिशाली हैं। इससे इस बात के प्रमाण भी मिले हैं कि वे आकार में हमारी मन्दाकिनी का  $\frac{1}{100}$  मात्र

हैं। कुछेक खगोलशास्त्रियों का यह मत बना है कि वे विखण्डनशील मन्दाकिनिया हैं और हो सकता है कि उससे भारी मात्राओं में उत्सर्जित होने वाली ऊर्जा का यही कारण है।

ताजी खोज के आधार पर अब ऐसा माना जाता है कि इन तारानुमा पिण्डों में से कुछेक सबसे शक्तिशाली प्रकाशीय दूरदर्शियों की मार से भी बाहर हैं। सच तो यह है कि ज्ञात पदार्थों में वे शायद सबसे दूरस्थ हैं। तखमीने के मुताबिक उनका हमसे फासला छः से दस अरब प्रकाश वर्षों के बीच है।

ब्रह्माण्ड के बहुत से भागों का अन्वेषण प्रकाशीय दूरदर्शी से इसलिए नहीं किया जा सकता है कि धूल और गैसों के विशाल बादल इन दूरदर्शियों के दृष्टिपथ में बाधा उपस्थित करते हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान एक युवक डच खगोल शास्त्री, हेन्ड्रिक वान डी हल्स्ट; ने इन बादलों के अध्ययन का एक दिलचस्प तरीका बताया। उसे मालूम था कि तारों के बीच वाले स्थान में अधिकांशतः हाइड्रोजन गैस बहुत विरल रूप में फैली होती है। यह इतनी विरल होती है कि जहां पृथ्वी पर उत्पन्न किए गये पूर्णतम निर्वात में भी पाइन्ट (20 औंस) की बोतल में 10 करोड़ परमाणु होते हैं वहां उसी बोतल में बाह्य अंतरिक्ष में केवल एक परमाणु होगा। फिर भी, अंतरिक्ष में हाइड्रोजन के विशाल बादल बिखरे पड़े हैं।

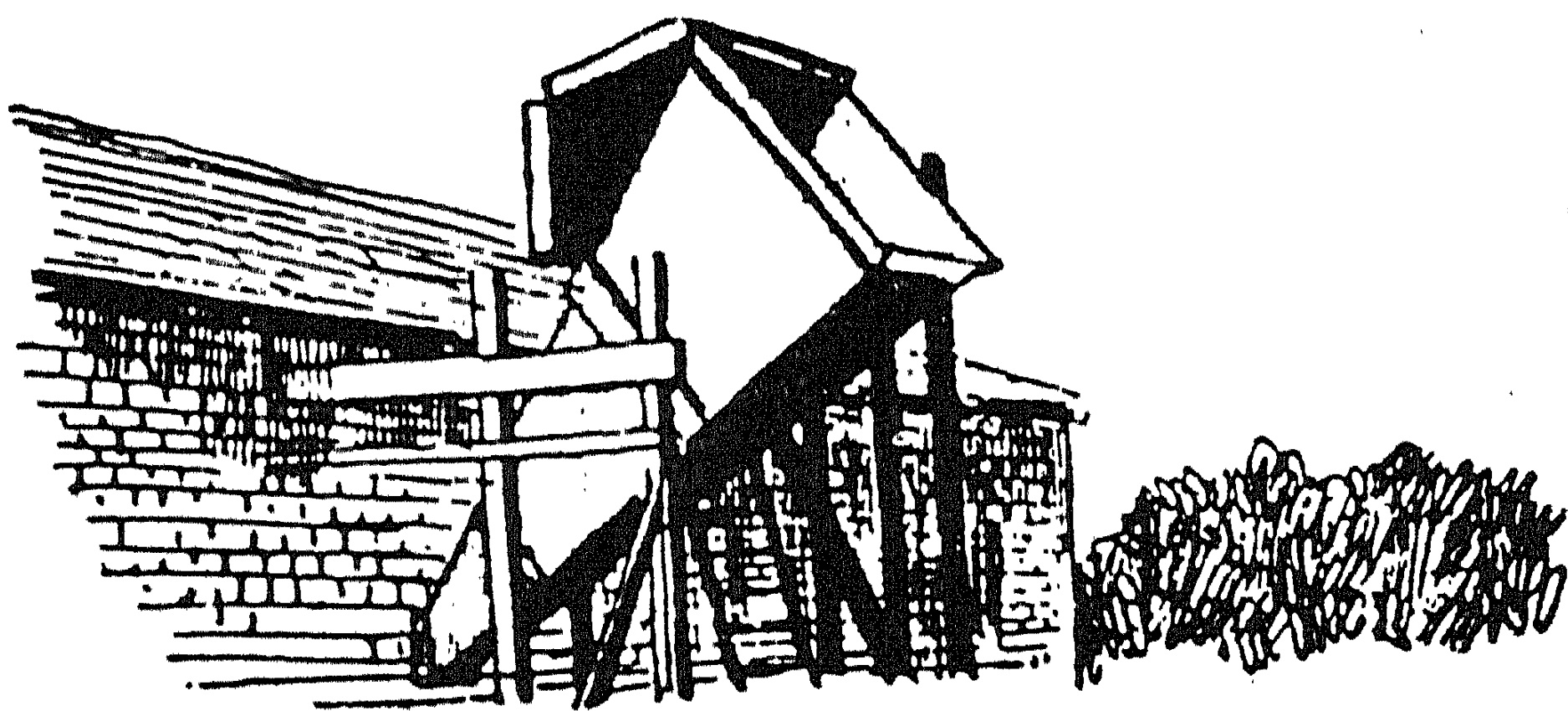
वान डी हल्स्ट ने, आधुनिक परमाणु सिद्धांत को दृष्टि में रखते हुए, सोचा कि अंतरिक्ष में फैले हुए हाइड्रोजन-परमाणु छोटे-छोटे प्रसारण केन्द्रों की तरह कार्य करते होंगे। उसने सोचा कि जब दो हाइड्रोजन परमाणु टकराते होंगे तब उनके अकेले-अकेले इलेक्ट्रान कलावाजी खाते होंगे और रेडियो संकेत प्रसारित होते होंगे। यह मत समझिए कि ये इलेक्ट्रान निरन्तर मारपीट करते रहते हैं। वान डी हल्स्ट ने हिसाब लगाकर मालूम किया कि सामान्यतः 110 लाख वर्षों में हाइड्रोजन परमाणु में एक बार 'झटका' आता है। परन्तु चूंकि ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण पदार्थ का

$\frac{9}{10}$  भाग हाइड्रोजन है और लगभग प्रति 50 वर्ष में हाइड्रोजन परमाणुओं की

टक्कर होती रहती है, 'झटके' इतने काफी होते हैं कि हम तक पहुंच सकने वाले रेडियो संकेत उत्पन्न होते रहते हैं। वान डी हल्स्ट ने यह भविष्यवाणी भी की थी कि हाइड्रोजन से विकिरित रेडियो तरंगों की लम्बाई 21 से० मी० या लगभग

$8\frac{1}{2}$  इंच होगी ।

1951 से पूर्व हाइड्रोजन-बादलों के संकेतों को सुनने के विचार को जांचा नहीं जा सका । उस वर्ष हार्वर्ड विश्वविद्यालय में हैरोल्ड इवन ने एक ऐसा रेडियो-दूरदर्शी बनाया जो एक छोटे से उलटे पिरामिड की तरह दिखायी देता था । उसे 21 से० मी० तरंग लम्बाई पर मिलाया गया । 25 मार्च को 2 बजकर 30 मिनट पर



१९५१ का रेडियो दूरदर्शी

प्रथम हाइड्रोजन-प्रसारण प्राप्त हुआ । यह हमारी मंदाकिनी के केन्द्र की दिशा से आया । प्रसारक ने ग्राफ पर एक क्रमशः ढलती रेखा को अंकित किया । इवन ने लगातार साठ घंटे तक काम किया और यह पक्का करने के लिए कि उन्होंने वास्तव में अंतरिक्ष के हाइड्रोजन प्रसारण को अंकित किया है कि नहीं, वे अपने उपकरण की जांच और व्यवस्था करते रहे । संदेह का कोई स्थान न रहा । ब्रह्माण्ड की संरचना के बारे में उन्हें अजीब और नयी बात मालूम हुई कि इसकी 'इमारती ईंट' या मुख्य सामग्री हाइड्रोजन ही है । यदि अंतरिक्ष में हाइड्रोजन की खोज की जा सके तो अपने ब्रह्माण्ड को समझने के लिए सबसे महत्वपूर्ण कुंजी हमारे हाथ लग जाएगी ।

रेडियो-ज्योतिष बीसवीं शताब्दी के विज्ञान का एक बहुत सफल आविष्कार था । इन्हीं वर्षों के दौरान खगोलशास्त्री नये-नये रोचक विचारों और सिद्धान्तों की घोषण करते रहे । ये सिद्धान्त बहुत कुछ रेडियो-ज्योतिष तथा खगोल के अन्य नये उपकरणों के विकास पर आधारित थे ।

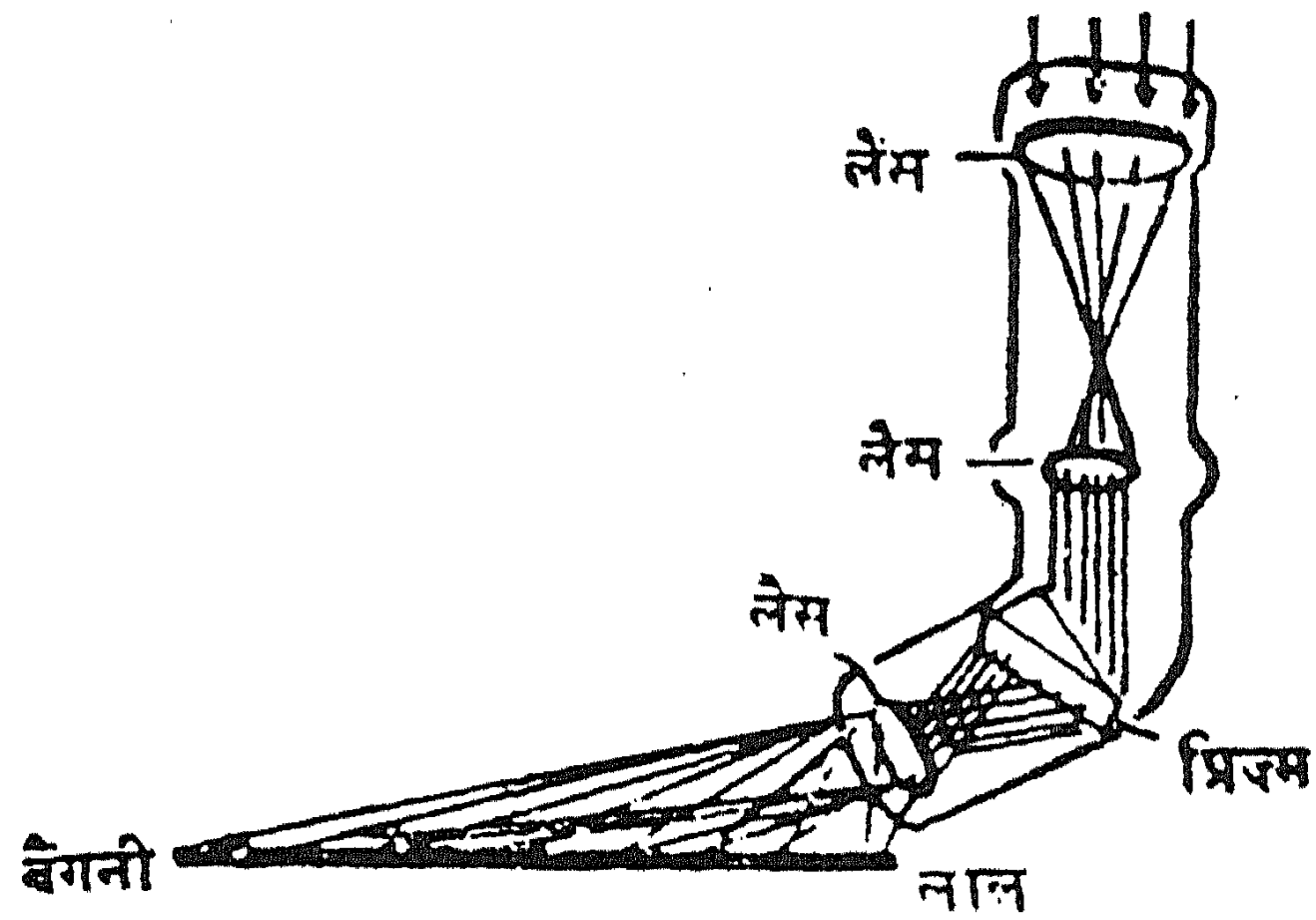
बीसवीं शताब्दी के खगोल की एक अति चकित करने वाली धारणा यह है कि ब्रह्माण्ड का निरन्तर विस्तार हो रहा है । ब्रह्माण्ड के निरन्तर विस्तार में विश्वास उन बातों में से एक है जिसमें खगोलशास्त्रियों के प्रेक्षणों और भौतिकी के सामान्य नियमों पर आधारित सिद्धान्तों के बीच मतैक्य है ।

जिन प्रेक्षणों ने फैलते हुए ब्रह्माण्ड की धारणा को जन्म दिया उनका सूत्रपात

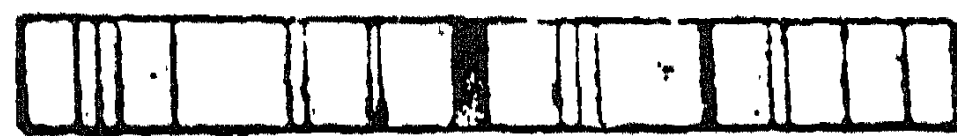


इस शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में उस समय हुआ जब खगोलशास्त्रियों ने अपने दूरदर्शियों के साथ वर्णक्रमदर्शियों (स्पेक्ट्रोस्कोपों) को सम्बन्धित करने की बात सोची। वर्णक्रमदर्शी में कांच का एक प्रिज्म (समपाश्वर्ष) होता है जो प्रकाश किरणावली को फैलाकर इन्द्रधनुष के रंगों—लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला, बैंगनी में विभक्त कर देता है।

वर्णक्रमदर्शी से तीन प्रकार के आधारभूत स्पेक्ट्रम (वर्णक्रम) देखे जा सकते हैं। यदि किसी ठोस, द्रव या अति संपीड़ित गैस को इतना गरम किया जाए कि वह दीप्त हो जाए तो वर्णक्रमदर्शी में रंगों की एक अविच्छिन्न पट्टी दिखायी देती है



और ये रंग एक-दूसरे में विलयित होते जाते हैं। यदि प्रकाश-स्रोत दीप्त गैस हो, जैसे नियात्र नली में; तो वर्णक्रम एक काली पट्टी के रूप में होता है जिसमें थोड़ी-सी चमकदार रंगीन रेखाएं होती हैं। प्रत्येक तत्त्व की वर्णक्रम-रेखाओं का नमूना भिन्न-भिन्न होता है अतः उपस्थित तत्त्व को पहचाना जा सकता है। तीसरे प्रकार का वर्णक्रम तब प्राप्त होता है जब किसी दीप्त ठोस पदार्थ और वर्णक्रमदर्शी के बीच अधिक ठंडी गैस या वाष्प होते हैं। इस हालत में ठंडी गैस अपनी रेखाओं को जज्ब कर लेती है और अविच्छिन्न वर्णक्रम में काली रेखाएं बन जाती हैं जिनसे गैस की रासायनिक रचना का पता लग जाता है।



रेखित वर्णक्रम



अवशोषण वर्णक्रम

अधिकांश तारों का वर्णक्रम इसी अदीप्त-रेखा प्रकार का होता है। तारों के आन्तरिक भाग में गैसों बहुत संपीड़ित और गरम होती हैं और वे अविच्छिन्न वर्णक्रम उत्पन्न करती हैं। जब विकिरण, तारों की बाहरी गैसों की परतों में से गुजरता है तब वहां उपस्थित तत्त्व काली रेखाओं को जन्म देते हैं जिनसे वे पहचाने जाते हैं।

(यद्यपि अधिकांश तारे अदीप्त-रेखा-वर्णक्रम उत्पन्न करते हैं, थोड़े से ऐसे भी हैं जो वैसी ही दीप्त रेखाओं का उत्सर्जन करते हैं जैसी उपरोक्त तीन में से दूसरे प्रकार के वर्णक्रम में पायी जाती हैं।)

हम जब वर्णक्रम की रेखाओं की बात करते हैं तब हम यह मान लेते हैं कि प्रकाश-स्रोत और वर्ण क्रमदर्शी दोनों स्थिर हैं। परन्तु इन दोनों में से कोई भी चलने लगता है तब एक अजीब बात देखी जाती है। रेखाएं अपने पूर्व स्थानों पर नहीं होतीं। यदि स्रोत वर्ण क्रमदर्शी की ओर आ रहा होता है तो रेखाएं वर्णक्रम के बैंगनी छोर की ओर हट जाती हैं। परन्तु यदि स्रोत वर्ण क्रमदर्शी से दूर जा रहा होता है तो वे लाल छोर की ओर हट जाती हैं। फिर, स्रोत जितनी अधिक तेजी से चलता है, रेखाएं उतनी ही अधिक हटती हैं।

वेस्टो एम० स्लिफर (जन्म 1875) ने 1920वें दशक में मालूम किया कि बहुत से तारों और मन्दाकिनियों की रेखाएं लाल छोर की ओर बहुत हटती हैं—यह तथ्य अब लाल-हटाव के नाम से प्रसिद्ध हो चुका है। इससे पता चला कि वे तारे और मन्दाकिनियां हमसे दूर भाग रही हैं और वह भी बहुत तेजी से। 1925 तक उन्होंने लगभग चालीस ऐसी मन्दाकिनियों का पता लगा लिया था जिनसे लाल छोर की ओर हटाव हो रहा था। लाल हटाव की व्याख्या, डाप्लर प्रभाव के पदों में की गई। प्रकाश, ध्वनि या अन्य कोई तरंग जब प्रेक्षक के सापेक्ष चलती है तब उसकी लम्बाई में परिवर्तन होता दीखता है। डाप्लर-प्रभाव बताता है कि यह परिवर्तन क्यों होता है।

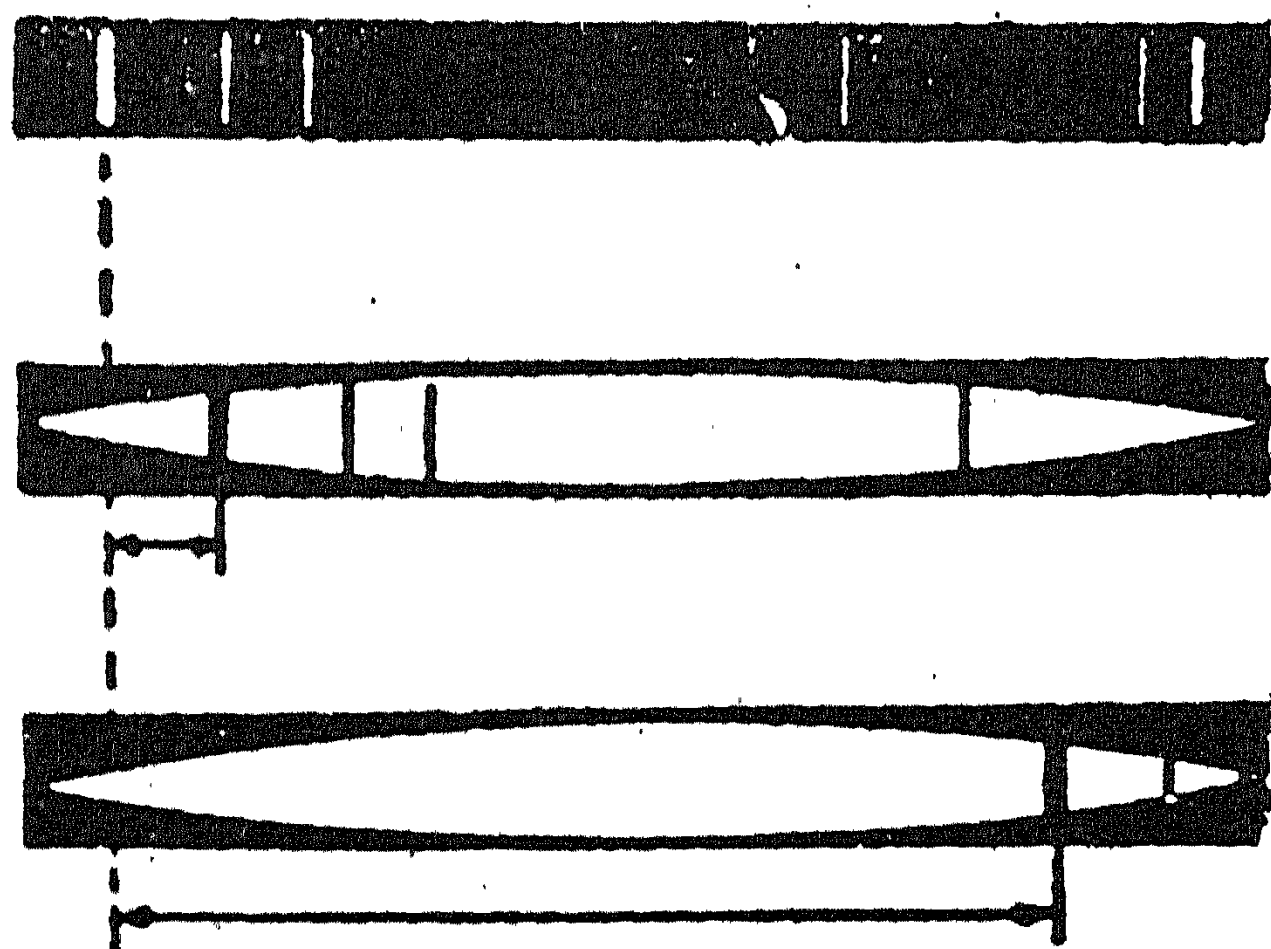
स्थिर

कन्या राशि

220 लाख प्रकाश-वर्ष  
750 मील प्रति सेकण्ड

वासुकि

101 अरब प्रकाश-वर्ष  
38 हजार मील प्रति  
सेकण्ड



डाप्लर प्रभाव को समझने के लिए कल्पना कीजिये कि आप कार में यात्रा कर रहे हैं। एक मोटर गाड़ी आपके पास से हार्न बजाती हुई विरुद्ध दिशा में जाती है। जब मोटर गाड़ी आपकी ओर आ रही थी तब हार्न की आवाज ऊंची प्रतीत हो रही थी और जब वह दूर निकल जाती है तब तारत्व नीचा प्रतीत होने लगता है। सरल भाषा में, जब आप दूसरी मोटर गाड़ी की ओर जाते हैं तब ध्वनि-तरंगों के

शीर्ष जल्दी-जल्दी आप तक पहुंचते हैं या अधिक बार आते हैं। आवृत्ति बढ़ जाती है तो तारत्व भी ऊंचा हो जाता है। परन्तु जब आप उस मोटरगाड़ी से दूर जाते हैं तब तरंग-शीर्ष अधिक ठहर-ठहरकर आपके पास आते हैं और तारत्व घट जाता है।

चूंकि प्रकाश भी तरंगों के रूप में गमन करता है अतः वर्णक्रमदर्शी से देखने पर वही बात उस पर भी घटती है। यदि प्रकाश स्रोत पास आ रहा हो तो प्रकाश-तरंगों की आवृत्ति बढ़ जाती है और वर्णक्रम में रेखाएं बैंगनी छोर की ओर हट जाती हैं क्योंकि उस ओर तरंग-लम्बाइयों की आवृत्ति अधिक होती है। परन्तु यदि स्रोत दूर जा रहा हो तो तरंगों की आवृत्ति कम हो जाती है और रेखाएं वर्णक्रम के लाल छोर की ओर हट जाती हैं।

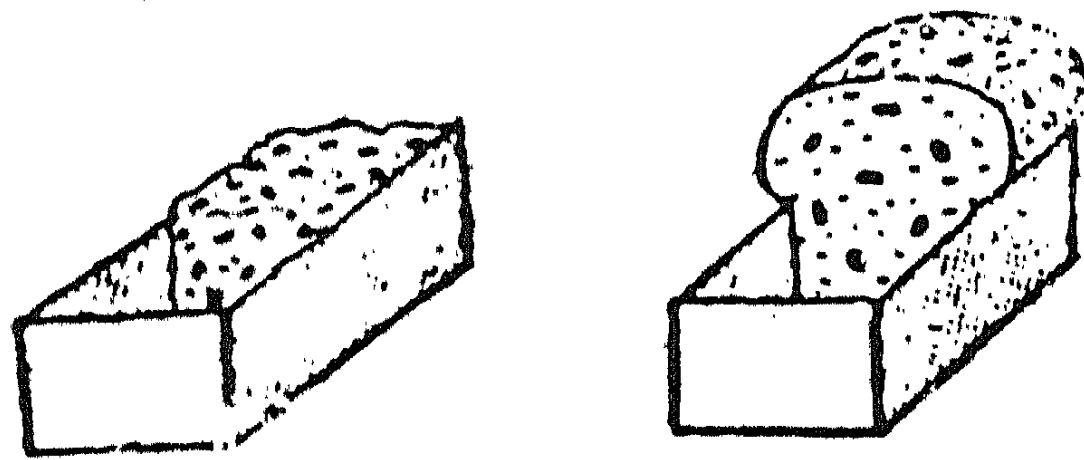
वर्णक्रम की रेखाओं के अपने सामान्य स्थान से लाल छोर की ओर हटने की व्याख्या डॉप्लर प्रभाव के पदों में ही की जा सकती है, अन्य किसी तरह से उसका स्पष्टीकरण बनता नहीं। परन्तु इसी कारण वैज्ञानिकों को इस आश्चर्यजनक निष्कर्ष का सामना करना पड़ा कि प्रायः प्रत्येक मन्दाकिनी, जिसका प्रेक्षण किया जाता है, हमसे दूर भाग रही है और कुछेक तो अत्यधिक वेग से दूर जा रही हैं।

मन्दाकिनियां क्यों हमसे दूर जाती हुई प्रतीत होती हैं? दो वैज्ञानिकों ने, अलग-अलग, इस प्रश्न का उत्तर दिया। अलबर्ट आइन्स्टाइन ने अपने आपेक्षिकता सिद्धान्त के आधार पर एक ऐसा प्रमाण प्रस्तुत किया था जिसके अनुसार ब्रह्मांड का आकार परिवर्तित नहीं हो रहा है; अर्थात्, ब्रह्मांड स्थैतिक है। 1922 में अलेक्जेंडर फ्रीडमैन, आइन्स्टाइन के समीकरणों का अध्ययन कर रहे थे और उन्हें उनमें बीजगणित की एक गलती मिली। जब वह गलती ठीक कर दी गयी तब गणित ने सिद्ध कर दिया कि ब्रह्मांड स्थैतिक नहीं है, जैसा कि आइन्स्टाइन का विश्वास था, बल्कि परिवर्तनशील है; अर्थात्, उसका आकार या तो बढ़ रहा है या घट रहा है। (बाद में आइन्स्टाइन ने कहा कि यह उनके जीवन की सबसे बड़ी गलती थी।) परन्तु यह केवल आधा उत्तर था; अर्थात्, सैद्धान्तिक पक्ष। उसी समय एडविन हबल ने एक दूरदर्शी के साथ जुड़े हुए वर्णक्रमदर्शी का उपयोग करके माउंट विल्सन वेधशाला में मालूम किया कि अधिक दूर वाली मन्दाकिनियों का लाल-हटाव, निकटतर मन्दाकिनियों की अपेक्षा और भी अधिक है। यह उत्तर का शेष भाग था; अर्थात् व्यावहारिक पक्ष।

1928 में हबल ने ब्रह्माण्ड के परिवर्तित होते रहने के सिद्धांत का गठबंधन अपने उन प्रेक्षणों के साथ किया जिनके अनुसार दूर वाली मन्दाकिनियां निकट वाली मन्दाकिनियों की अपेक्षा अधिक तेजी से दूर जा रही हैं। उन्होंने विस्तारशील ब्रह्माण्ड के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और कहा कि ब्रह्माण्ड का आकार प्रति क्षण

बढ़ रहा है और वह अंतरिक्ष में अधिकाधिक फैल रहा है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सब मन्दाकिनियां हमारी मन्दाकिनी से दूर जा रही हैं। प्रत्येक मन्दाकिनी, प्रत्येक दूसरी मन्दाकिनी से दूर जा रही है। यदि जादू के जोर से आप ब्रह्माण्ड के किसी दूसरे स्थल पर पहुंच जाएं तो भी सब मन्दाकिनियां आपसे दूर जाती हुई प्रतीत होंगी।

इस धारणा को हृदयंगम करने के लिए कल्पना कीजिये कि ब्रह्माण्ड मुनक्कों वाली केक है जिसमें आटा तो ब्रह्माण्ड है और मुनक्कों मन्दाकिनियां हैं। जब मुनक्कों वाले आटे को कड़ाहे पर रखते हैं तब सब मुनक्कों एक-दूसरे के पास-पास होते हैं। जब रोटी पकती है तब वह फूलती है और बड़ी होने लगती है और मुनक्कों एक-दूसरे से दूर होने लगते हैं। वे सब किसी एक मुनक्के से दूर नहीं होते हैं बल्कि वे भी एक-दूसरे से दूर हो जाते हैं। आटा (ब्रह्माण्ड) फैलता जाता है और मुनक्कों (मन्दाकिनियों) के बीच की दूरियां बढ़ती जाती हैं।



लाल हटाव दिखाकर वर्णक्रमदर्शी केवल यही नहीं बताता कि ब्रह्माण्ड फैल रहा है बल्कि, हटाव की मात्रा से, यह भी मालूम किया जाता है कि प्रत्येक मन्दाकिनी किस वेग से दूर जा रही है। कुछ मन्दाकिनियां, जो इतनी दूर हैं कि उनके आगे दूरदर्शी से नहीं देखा जा सकता, 38,000 मील प्रति सेकण्ड की रफ्तार से हमसे दूर जा रही हैं। यह प्रकाश की चाल का लगभग पंचमांश है। जितने समय में आप यह वाक्य पढ़ते हैं उतने समय में ये मन्दाकिनियां अंतरिक्ष में 1,50,000 मील और आगे चली गई होंगी। और जब तक यह वाक्य भी पूरा कर लेंगे तब तक ब्रह्माण्ड के व्यास में लगभग 7,00,000 मील की वृद्धि हो चुकी होगी।

फैलते हुए ब्रह्माण्ड और अंतरिक्ष में आगे बढ़ती हुई मन्दाकिनियों की धारणा आश्चर्यजनक है और हमारी कल्पना-शक्ति पर बहुत भार डालती है। आधुनिक खगोल की एक अन्य धारणा हमें बिल्कुल काल्पनिक विज्ञान-कथाओं के क्षेत्र में पहुंचा देती है। इसका सम्बन्ध उन ताजे प्रमाणों से है जिनके अनुसार हमारी पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य ग्रहों पर भी जीवन है।

सामान्यतः अब यह माना जाता है कि हमारा ग्रह (पृथ्वी) अप्रतिम नहीं है। हमारा अनुमान है कि अंतरिक्ष के अन्य असंख्य तारों की परिक्रमा करने वाले बहुत से ऐसे ग्रह हैं। अन्य ग्रहों पर जीवन के बारे में वैज्ञानिक गल्पों में जो कथानक



हुआ करते हैं वे पहली बार गम्भीर वैज्ञानिक अध्ययन के विषय बन रहे हैं। बहुत सम्भव है कि खगोल की भावी उपलब्धियों में से एक इस क्षेत्र से सम्बन्धित हो।

जाइल बैंक (इंग्लैंड) वाले रेडियो-दूरदर्शी के निदेशक सर बर्नार्ड लोवेल ने बताया है कि जीवन के अन्यत्र पाये जाने की क्या सम्भावनाएं हैं। उसका अनुमान है कि हमारी मन्दाकिनी में 5 प्रतिशत तारे ऐसे हैं जिनके ग्रहों पर जीवन-धारण सम्भव है। झूठा न पड़ने के खयाल से उन्होंने अपने अनुमान को घटा कर 5 से एक प्रतिशत कर दिया है। तो, हमारी मन्दाकिनी के 100 अरब तारों में से सम्भवतः एक अरब तारे ऐसे हैं जिनसे ग्रहों पर जीवन है। यदि उनका अनुमान 1,000 में 999 भी गलत हो तो भी हमारी मन्दाकिनी में 10 करोड़ तारे ऐसे बचते हैं जिनके ग्रहों पर किसी न किसी प्रकार का जीवन शायद हो।

यदि यह बात काफी रोमांचकारी नहीं है तो आइये, हम अपनी ही मन्दाकिनी पर नहीं, सम्पूर्ण दृश्य ब्रह्माण्ड पर विचार करें। हम अपनी मन्दाकिनी जैसी करोड़ों मन्दाकिनियों को देख सकते हैं। अतः ब्रह्माण्ड के उस भाग में जिसे हम देख सकते हैं, खरबों ग्रह ऐसे हैं जिन पर जीवन है।

इस मत के पक्ष में और अधिक प्रमाण मेल्विन कैल्विन तथा अन्य वैज्ञानिकों ने पृथ्वी पर गिरे हुए उल्कापिण्डों का अध्ययन कर प्रस्तुत किए हैं। उन पर उन्हें ऐसे फासिलों तथा न्यूक्लीडिक अम्लों के लेश मिले प्रतीत होते हैं जो पार्थिव जीवन के भाग नहीं हैं। (अध्याय 5 देखिये।) इन दोनों चीजों से संकेत मिलता है कि अन्तरिक्ष में भी कहीं न कहीं जीवन है। यदि जीवन अन्यत्र है तो बहुत सम्भव है कि हमारी सभ्यता से अधिक उन्नत सभ्यताएं भी हों और शायद वे हमसे सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न कर रही हों।

नवम्बर 1961 में खगोल, संचार, जीव रसायन और न्यूक्लीय भौतिकी के प्रमुख विशेषज्ञों के एक दल ने, बिना किसी प्रचार के अन्य ग्रहों पर जीवन की उपस्थिति पर विचार किया—अन्य ग्रहों के निवासी हमसे सम्पर्क स्थापित करने के लिए क्या प्रयत्न कर रहे होंगे और हम उनसे कैसे सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं? कुछ विशेषज्ञों का मत था कि हमारी सभ्यता से अधिक उन्नत सभ्यता वाले लोगों को निश्चय ही हाइड्रोजन-प्रसारण की 21 से० मी० तरंग-लम्बाई का महत्व मालूम होगा। अतः एक सुझाव यह दिया गया कि 21 से० मी० से सम्बन्धित तरंग लम्बाई पर, किसी प्रकार का संदेश प्राप्त करने के उद्देश्य से सुना जाए। अंतर्ग्रहीय संचार के लिए दूसरा सुझाव यह है कि अत्यधिक प्रबल और शुद्ध किरणावलियों का, जिन्हें लेसर्स (विकिरण के उत्तेजित उत्सर्जन द्वारा संवर्धित प्रकाश) कहते हैं, उपयोग करके हमारे दूरस्थ पड़ोसियों को प्रकाश-संकेत भेजे जाएं।

रेडियो-ज्योतिष, ब्रह्माण्ड की विस्तारशीलता तथा अन्य ग्रहों पर जीवन के

प्रमाण—ये हैं आधुनिक खगोल की उपलब्धियां। इन उपलब्धियों का अर्थ क्या है इसे महसूस करने का एक सरल उपाय है। किसी स्वच्छ अंधेरी रात में आकाश की ओर देखिये और खगोल-शास्त्रियों ने ब्रह्माण्ड के विषय में जो बातें बतायी हैं उनमें से कुछ की समीक्षा कीजिये।

टिमटिमाते तारों को देखिये। उत्तरी गोलार्ध से दिखायी देने वाला सबसे अधिक चमकदार तारा सिरियस है जो साढ़े आठ प्रकाश-वर्ष दूर है। अन्य जो तारे आपको दिखायी देंगे वे सब हमारी मंदाकिनी में हैं और 1,00,000 प्रकाश-वर्ष तक की दूरियों पर हैं। सम्भव है एक चार्ट तथा दूरदर्शी या दूरबीन की सहायता से आप हमारी निकटतम पड़ोसी मंदाकिनी को देख सकें जो देवयानी (ऐन्ड्रोमेडा) में है और जिसे बड़ी सर्पिल मंदाकिनी कहते हैं। वह छोटा-सा धुंधला धब्बा बीस लाख प्रकाश-वर्ष दूर है।

इसके बाद यह सोचिये कि अंतरिक्ष में ऐसे तारे और मंदाकिनियां हैं जिसमें भीषण हलचल, उथल-पुथल और विस्फोट होता रहता है और जो एक-दूसरे से टकराती रहती हैं। इनमें से प्रत्येक हमारी दुनिया के सबसे शक्तिशाली ट्रान्समीटरों (प्रेषित्रों) से भी हजारों गुना शक्तिशाली रेडियो-प्रसारण-केन्द्र की तरह संकेत देता रहता है।

और तब कल्पना कीजिये फैलते हुए ब्रह्माण्ड की। जिस समय आप आकाश की ओर देख रहे होंगे उस समय अदृश्य मंदाकिनियां हजारों मील प्रति सेकंड की चालों में, अंतरिक्ष में, हमसे दूर जा रही होंगी। अन्त में, आप अपनी कल्पना पर और अधिक जोर डालिए और सुदूर अन्तरिक्ष की अन्य सभ्यताओं की बाबत सोचिये—हो,सकता है उनमें से कुछ हमारी सभ्यता से भी उन्नत हों और हमसे सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न कर रही हों।

□ □